कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

KMGGPGC

तेजस्विनावधीतमस्तु

"आज़ादी का अमृतकालः भारतीय ज्ञान परम्परा से विश्वकल्याण"

खण्ड- 1

2023

संरक्षक

प्रो० (डॉ०) दिव्या नाथ

प्रबंध-संपादक

प्रो० (डॉ०) दीप्ति वाजपेयी

मुख्य-संपादक

डॉ० संजीव कुमार

संपादक

डॉ० मीनाक्षी लोहनी, श्री दीपक कुमार शर्मा, डॉ० रमाकान्ति

डॉ० सतीश चंद, डॉ० ज्ञानेन्द्र कुमार, डॉ० नितिन त्यागी

"आज़ादी का अमृतकाल: भारतीय ज्ञान परम्परा से विश्वकल्याण"

खण्ड-1

संरक्षक

प्रो० (डॉ०) दिव्या नाथ

प्रबंध-संपादक

प्रो० (डॉ०) दीप्ति वाजपेयी

मुख्य-संपादक

डॉ० संजीव कुमार

संपादक

डॉ० मीनाक्षी लोहनी

श्री दीपक कुमार शर्मा

डॉ० रमाकान्ति

डॉ० सतीश चंद

डॉ० ज्ञानेन्द्र कुमार

डॉ० नितिन त्यागी

ISO 9001-2015 certified

कु.मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ0प्र0)

College Recognized under section 2 (f) & 12 (b) of UGC

Text copyright © 2023

कु0 मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

All Rights Reserved

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, transmitted or utilized in any form or by any means electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the copyright owner Author/Editors. Application for such permission should be addressed to the Publisher and Author/ Editors. Please do not participate in or do not encourage piracy of copyrighted materials in violation of the author's rights. Purchase only authorized editions.

Published by:
Mithila Press
Lakshmi Nagar, New Delhi

ISBN: 978-93-84165-98-7

Typeset & Printed by
K. S. Enterprises, New Delhi
#8800553000

भूमिका

भारत की स्वतंत्रता केवल एक राजनीतिक उपलब्धि नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसी ऐतिहासिक घटना थी जिसने भारतीय समाज को अपनी सांस्कृतिक जड़ों, बौद्धिक परंपराओं और मानवीय मूल्यों को पुनः समझने और उन्हें नई दृष्टि से विकसित करने का अवसर प्रदान किया। आज जब भारत स्वतंत्रता के पचहत्तर वर्षों की यात्रा के उपरांत आज़ादी का अमृतकाल मना रहा है, तब यह समय केवल अतीत की उपलब्धियों का स्मरण करने का नहीं, बल्कि भविष्य की दिशा तय करने का भी है। इसी व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत पुस्तक "आज़ादी का अमृतकाल : भारतीय ज्ञान परंपरा से विश्वकल्याण" विशेष महत्व रखती है। यह कृति भारतीय ज्ञान परंपरा की उस समृद्ध विरासत को सामने लाने का प्रयास करती है, जो केवल भारत ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व के कल्याण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान कर सकती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी रहा है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र, योग, साहित्य और कला के विविध रूपों में विकसित यह परंपरा केवल बौद्धिक उपलब्धियों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह जीवन को समझने और उसे संतुलित ढंग से जीने की एक समग्र दृष्टि भी प्रदान करती है। भारतीय चिंतन की मूल भावना मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन, सह–अस्तित्व और समन्वय की रही है। "वसुधैव कुटुम्बकम" और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे आदर्श इस बात के द्योतक हैं कि भारतीय मनीषा ने सदैव संपूर्ण मानवता के कल्याण को अपनी विचारधारा के केंद्र में रखा है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ एक ओर विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है, वहीं दूसरी ओर मानव समाज अनेक जटिल चुनौतियों का सामना भी कर रहा है। पर्यावरणीय असंतुलन, सामाजिक असमानता, नैतिक मूल्यों का क्षरण तथा मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ आज विश्व समुदाय के सामने गंभीर प्रश्न के रूप में

उपस्थित हैं। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल सिद्धांतकृसंतुलन, संयम, करुणा और समन्वयकृमानवता को एक नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें संकलित लेख भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न आयामों को समकालीन संदर्भों में समझने और व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं।

इस ग्रंथ की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न विद्वानों के विचारों का समावेश है, जिससे विषय का बहुआयामी स्वरूप सामने आता है। अलग–अलग क्षेत्रों से जुड़े शोधकर्ताओं और चिंतकों ने भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध पक्षोंकृदर्शन, शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान, समाज और पर्यावरणकृपर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार यह पुस्तक केवल एक विषयगत अध्ययन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह एक व्यापक बौद्धिक संवाद का रूप ले लेती है। पाठक को यहाँ न केवल परंपरा की गहराई का अनुभव होता है, बल्कि यह भी समझ में आता है कि इन विचारों की समकालीन विश्व में क्या उपयोगिता हो सकती है।

आज़ादी का अमृतकाल भारत के लिए आत्ममंथन और आत्मविश्वास दोनों का काल है। यह वह समय है जब राष्ट्र अपनी ऐतिहासिक विरासत से प्रेरणा लेकर भविष्य की नई संभावनाओं का निर्माण कर सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मूल्योंकृ सहिष्णुता, समन्वय, नैतिकता और मानवीय संवेदनाकृको यदि आधुनिक जीवन के साथ समन्वित किया जाए, तो वे न केवल भारत की प्रगति में सहायक हो सकते हैं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी शांति और सहयोग की भावना को सुदृढ़ कर सकते हैं।

इस पुस्तक में संकलित लेख इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में देखे जा सकते हैं। विद्वानों ने अपने–अपने अध्ययन और अनुभव के आधार पर यह दर्शाने का प्रयास किया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर भर नहीं है, बल्कि वह वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन सकती है। इन लेखों के माध्यम से पाठक को यह समझने का अवसर मिलता है कि परंपरा और आधुनिकता के बीच कोई विरोध नहीं है; बल्कि दोनों के समन्वय से ही एक संतुलित और समृद्ध समाज का निर्माण संभव है।

यह विश्वास किया जा सकता है कि यह पुस्तक शोधार्थियों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति रुचि रखने वाले पाठकों को इसमें विचारोत्तेजक सामग्री प्राप्त होगी, जो उन्हें गहन अध्ययन और विमर्श के लिए प्रेरित करेगी। साथ ही यह कृति इस बात को भी रेखांकित करती है कि भारत की बौद्धिक परंपरा में ऐसी सार्वभौमिक दृष्टि निहित है, जो संपूर्ण मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

अंततः यही आशा की जा सकती है कि "आज़ादी का अमृतकाल : भारतीय ज्ञान परंपरा से विश्वकल्याण" शीर्षक से प्रस्तुत यह संकलन पाठकों को भारतीय ज्ञान की गहराई और उसकी वैश्विक प्रासंगिकता से परिचित कराएगा। यह पुस्तक न केवल विचारों का संकलन है, बल्कि एक ऐसे बौद्धिक प्रयास का प्रतीक भी है, जो परंपरा और वर्तमान के मध्य सार्थक संवाद स्थापित करते हुए विश्वकल्याण की दिशा में नए विचारों को प्रेरित करता है।

डॉ. संजीव कुमार
मुख्य संपादक

विषय सूची

1. भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षक/छात्र संबंध 1
डॉ. संजीव कुमार

2. भारतीय प्राच्य ज्ञान के प्रतिमान : वेदांत और विज्ञान 8
प्रोफ़ेसर (डॉ.) दीप्ति वाजपेयी

3. अष्टावक्र गीता में निहित भारतीय ज्ञान परम्परा से विष्वकल्याण 17
मनीषा कुमारी, प्रो0 बसन्त बहादुर सिंह

4. आजादी का अमृतकालः भारतीय ज्ञान परम्परा से विश्व कल्याण 20
सुश्री अलका गुप्ता

5. भारतीय–ज्ञान–परम्परायां योगः स्वास्थ्यच 24
डॉ0 शिखा रानी

6. भारतीय ज्ञान परम्परा में अध्यापक शिक्षा की भूमिका 29
डॉ. सरोज राय

7. भारतीय मनीषा – ज्ञान, विज्ञान और विश्वकल्याण 33
डॉ. नीलम शर्मा

8. भारतीय परिवार प्रणाली : सभ्यता, संस्कार और
सनातन संस्कृति की पाठषाला 40
ओम प्रकाश सिंह

9. वैदिक विरासत और विज्ञानः संस्कृति, संकल्प और समाधान 43
धर्म पाल सिंह

10. भारतीय ज्ञान परंपरा एवं शैक्षिक तकनीकी का प्रभाव 50
सनोज कुमार, डॉ विनोद कुमार कंवरिया

11. योग एवं स्वास्थ्य 54
डॉ0 ममता रानी

12. योग और स्वास्थ्य : विरासत से विकास 59
डॉ0 अजिता सिंह, डॉ0 अनुपम कुमारी

13. भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति जल एवं पर्यावरण संरक्षण 67
डॉ. अश्विनी कुमार सिंह तोमर, हेमलता शर्मा

14. वैदिक धरोहर और विज्ञानः संस्कृति, निर्धारण और समाधान 76
डॉ. राधिका बंसल, हेमलता शर्मा

15. वैदिक संस्कृति में आचार्य नरेंद्र देव के शैक्षिक दर्शन एवं वर्तमान समय में उसकी उपादेयता 85
राजीव कुमार चौहान

16. भारतीय परंपरा में जल एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा 93
डा॰ शालिनी भारद्वाज

17. मूल्यों पर आधारित शिक्षा 98
डॉ0 शुभा सिंह

18. वर्तमान परिपेक्ष्य में भारतीय दर्शन और काव्य 107
डॉ० कोकिल

19. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के क्षेत्र में गीता की प्रासंगिकता 118
डॉ0 शिखा रानी

20. भारतीय परिवार प्रणाली : सभ्यता, संस्कार और सनातन संस्कृति की पाठशाला 125
सुरेन्द्र कुमार, पवन कुमार

21 'सा विद्या या विमुक्तये' की दार्षनिक अवधारणा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 135
डा0 प्रशान्त कुमार, महक सिंह

22. भारतीय जीवन मूल्यों में वैश्विक शांति व सुरक्षा हेतु वसुधैव कुटुंबकम की प्रासगिकता व शिक्षकों की भूमिकाः एक दृष्टिकोण 139
डॉ कविता गुप्ता

23. भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति, जल, पर्यावरण सरक्षण 145
कु0 सरिता

24. योग और स्वास्थ्य : विरासत से विकास 149
श्रीमती नीति शर्मा

25. जनपद हापुड़ की मलिन बस्तियों में स्वच्छ जलः एक चुनौती 152
प्रो० अर्चना गुप्ता, अनुज कुमार

26. भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति, जल एवं पर्यावरण संरक्षण 159
पवन कुमार, सुरेन्द्र कुमार

27. भारतीय ज्ञान परंपराः भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का स्रोत 169
डॉ0 आभा शर्मा

28. भारतीय परिवार प्रणाली–सभ्यता, मूल्य एवं संस्कार 174
डॉ. विनीता, रेनूका राय

29. मुद्राराक्षस नाटक में प्रदर्षित कूटनीति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता 181
डॉ० मुकेश कुमार गुप्ता

30. वर्तमान सामाजिक प्ररिप्रेक्ष्य में वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा की प्रासंगिकता 190
डॉ0 शिखा

1.

भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षक/छात्र संबंध

डॉ. संजीव कुमार
सहायक आचार्य, प्रभारी,
शिक्षक शिक्षा विभाग,
कु.मायावती राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

प्रस्तावना

भारत प्राचीन काल से ही ज्ञान, दर्शन और शिक्षा की महान परंपरा का केंद्र रहा है। यहाँ शिक्षा को केवल जानकारी प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं माना गया, बल्कि इसे मानव जीवन के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास का माध्यम समझा गया है। भारतीय विचार परंपरा में ज्ञान का उद्देश्य व्यक्ति को जीवन के सत्य से परिचित कराना, उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास करना और उसे समाज के प्रति उत्तरदायी बनाना रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक शिक्षक और छात्र के बीच आत्मीय संबंध है। इस संबंध को सामान्य रूप से गुरुदृशिष्य परंपरा कहा जाता है। यह परंपरा केवल ज्ञान के आदान–प्रदान का संबंध नहीं थी, बल्कि यह जीवन मूल्यों, नैतिकता और आध्यात्मिक मार्गदर्शन का भी आधार थी। गुरु केवल शिक्षक नहीं बल्कि मार्गदर्शक, प्रेरक और जीवन के आदर्श माने जाते थे।

प्राचीन भारत में शिक्षा का केंद्र गुरुकुल प्रणाली थी, जिसमें विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। यहाँ शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी बल्कि व्यवहारिक जीवन, नैतिकता, अनुशासन और आत्मनिर्भरता की शिक्षा भी दी जाती थी।

वर्तमान समय में शिक्षा प्रणाली में अनेक परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक तकनीक, वैश्वीकरण और सामाजिक परिवर्तनों के कारण शिक्षक–छात्र संबंध की प्रकृति भी बदल गई है। इसके बावजूद भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मूल्य आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

इस लेख में भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल अवधारणा, गुरु–शिष्य संबंध की विशेषताएँ, प्राचीन शिक्षा व्यवस्था की प्रकृति तथा आधुनिक शिक्षा में उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। इसका विकास वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृतियाँ, पुराण, विभिन्न दर्शनों और शास्त्रों के माध्यम से हुआ है। यह परंपरा केवल धार्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें विज्ञान, गणित, चिकित्सा, साहित्य, राजनीति और सामाजिक विचारों का भी समावेश है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. **समग्र विकास की अवधारणा**–भारतीय शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था। यहाँ शिक्षा को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के संतुलित विकास का साधन माना गया।

   इस दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा केवल बुद्धि का विकास नहीं करती, बल्कि व्यक्ति को नैतिक रूप से सुदृढ़ और सामाजिक रूप से उत्तरदायी बनाती है।

2. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण**–भारतीय चिंतन में ज्ञान को आत्मज्ञान से जोड़ा गया है। यह माना गया कि वास्तविक ज्ञान वह है जो मनुष्य को अपने अस्तित्व और जीवन के उद्देश्य को समझने में सहायता करे।

   इस कारण भारतीय शिक्षा में ध्यान, साधना, आत्मानुशासन और संयम जैसे गुणों पर विशेष बल दिया गया।

3. **नैतिक मूल्यों का महत्व**–भारतीय ज्ञान परंपरा में नैतिकता को शिक्षा का आधार माना गया। सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, सहिष्णुता और सेवा जैसे गुणों को जीवन के लिए आवश्यक बताया गया।

गुरुकुलों में विद्यार्थियों को इन मूल्यों को व्यवहार में अपनाने की शिक्षा दी जाती थी।

4. **अनुभव आधारित शिक्षण**—भारतीय शिक्षा प्रणाली में केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं दिया जाता था, बल्कि विद्यार्थियों को व्यवहारिक अनुभव भी प्रदान किया जाता था।

   वे विभिन्न सामाजिक और आश्रम संबंधी कार्यों में भाग लेते थे, जिससे उनमें श्रम, सहयोग और आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती थी।

5. **संवाद और प्रश्न की परंपरा**—भारतीय ज्ञान परंपरा में जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया जाता था। गुरु और शिष्य के बीच संवाद के माध्यम से ज्ञान का विकास होता था।

उपनिषदों में अनेक स्थानों पर प्रश्नोत्तर के माध्यम से ज्ञान की गहराई को समझाया गया है।

गुरुदृशिष्य परंपरा की अवधारणा

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान अत्यंत सम्माननीय माना गया है। गुरु वह व्यक्ति है जो अज्ञान के अंधकार को दूर करके ज्ञान का प्रकाश प्रदान करता है।

गुरु को केवल ज्ञान देने वाला शिक्षक नहीं बल्कि जीवन का मार्गदर्शक माना गया। शिष्य के व्यक्तित्व के विकास में गुरु की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती थी।

गुरु–शिष्य संबंध के कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं।

1. **श्रद्धा और सम्मान**—शिष्य अपने गुरु के प्रति गहरी श्रद्धा रखता था। यह श्रद्धा केवल औपचारिक नहीं बल्कि आंतरिक विश्वास पर आधारित होती थी।

   गुरु भी अपने शिष्यों के प्रति स्नेह और जिम्मेदारी का भाव रखते थे।

2. **अनुशासन और संयम**—प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में अनुशासन को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। शिष्य को नियमों का पालन करना और संयमित जीवन जीना सिखाया जाता था।

3. **समर्पण और सेवा**—गुरु–शिष्य संबंध में सेवा भावना का महत्वपूर्ण स्थान था। शिष्य गुरु की सेवा करते थे और गुरु उनके विकास के लिए पूर्ण समर्पण के साथ कार्य करते थे।

4. **व्यक्तिगत मार्गदर्शन**—प्राचीन शिक्षा प्रणाली में गुरु प्रत्येक विद्यार्थी की क्षमता और प्रवृत्ति को समझते थे और उसी के अनुसार मार्गदर्शन प्रदान करते थे।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

गुरुकुल प्राचीन भारत की प्रमुख शिक्षा व्यवस्था थी। यह शिक्षा प्रणाली प्रकृति के समीप स्थित आश्रमों में संचालित होती थी।

1. **आवासीय व्यवस्था**—गुरुकुल में विद्यार्थी गुरु के साथ रहते थे। इस व्यवस्था के कारण गुरु और शिष्य के बीच घनिष्ठ संबंध विकसित होता था।

2. **सादगीपूर्ण जीवन**—गुरुकुलों में जीवन अत्यंत सरल और अनुशासित होता था। सभी विद्यार्थी समान जीवन शैली अपनाते थे।

3. **आत्मनिर्भरता**—विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित किया जाता था। वे आश्रम के दैनिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे।

4. **विविध विषयों की शिक्षा**—गुरुकुलों में वेद, दर्शन, साहित्य, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, युद्धकला और संगीत जैसे अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

प्राचीन साहित्य में शिक्षक–छात्र संबंध के उदाहरण

भारतीय ग्रंथों में गुरु–शिष्य संबंध के अनेक प्रेरणादायक उदाहरण मिलते हैं।

1. श्रीकृष्ण और अर्जुन

महाभारत में अर्जुन जब युद्ध के समय भ्रम और शंका से ग्रस्त हो जाते हैं, तब श्रीकृष्ण उन्हें जीवन और धर्म का ज्ञान देते हैं। यह संवाद ज्ञान, कर्तव्य और आत्मबोध की गहरी शिक्षा प्रदान करता है।

2. द्रोणाचार्य और अर्जुन

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को धनुर्विद्या में श्रेष्ठ बनाने के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया। अर्जुन की लगन और गुरु के प्रति समर्पण ने उसे महान योद्धा बनाया।

3. चाणक्य और चंद्रगुप्त

चाणक्य ने चंद्रगुप्त मौर्य को शिक्षा देकर उसे एक सक्षम और दूरदर्शी शासक बनाया। यह उदाहरण दर्शाता है कि गुरु का प्रभाव केवल शिक्षा तक सीमित नहीं होता बल्कि समाज और राष्ट्र निर्माण तक विस्तृत होता है।

शिक्षक–छात्र संबंध के शैक्षिक आयाम

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक और छात्र के संबंध का प्रभाव केवल ज्ञान तक सीमित नहीं था। इसके कई व्यापक आयाम थे।

1. चरित्र निर्माण

शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं बल्कि चरित्र निर्माण भी था।

2. सामाजिक जिम्मेदारी

विद्यार्थियों को समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराया जाता था।

3. नैतिक नेतृत्व

गुरु अपने आचरण से विद्यार्थियों को प्रेरित करते थे और उन्हें नैतिक नेतृत्व के लिए तैयार करते थे।

आधुनिक शिक्षा में शिक्षक–छात्र संबंध की स्थिति

आज शिक्षा का स्वरूप काफी बदल चुका है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा अधिक औपचारिक और संस्थागत हो गई है।

तकनीकी प्रगति के कारण ज्ञान प्राप्त करने के साधन भी बढ़ गए हैं। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल संसाधन और वैश्विक ज्ञान नेटवर्क ने शिक्षा को व्यापक बनाया है।

इसके बावजूद कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

प्रमुख चुनौतियाँ

1. शिक्षा में व्यावसायिकता का बढ़ता प्रभाव
2. शिक्षक और छात्र के बीच व्यक्तिगत संवाद में कमी
3. नैतिक मूल्यों पर कम ध्यान
4. शिक्षा का परीक्षा केंद्रित होना

इन परिस्थितियों में शिक्षा के मानवीय पक्ष को मजबूत करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की समकालीन उपयोगिता

भारतीय ज्ञान परंपरा आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

1. मूल्य आधारित शिक्षा

आज के समाज में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है।

2. समग्र शिक्षा

भारतीय शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को एक साथ महत्व देती है।

3. शिक्षक की प्रेरक भूमिका

शिक्षक को केवल जानकारी देने वाला व्यक्ति नहीं बल्कि मार्गदर्शक और प्रेरक के रूप में देखा जाना चाहिए।

4. सांस्कृतिक पहचान

भारतीय ज्ञान परंपरा हमारे सांस्कृतिक इतिहास और पहचान से जुड़ी हुई है। इसे शिक्षा के माध्यम से संरक्षित करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध शैक्षिक परंपराओं में से एक है। इसका मूल आधार गुरु–शिष्य संबंध है, जिसने शिक्षा को केवल ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया न बनाकर जीवन के विकास का माध्यम बनाया।

इस परंपरा में गुरु और शिष्य के बीच विश्वास, सम्मान, अनुशासन और समर्पण का संबंध स्थापित होता था। गुरुकुल प्रणाली ने इस संबंध को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, किन्तु शिक्षा के मानवीय और नैतिक पक्ष को पुनः मजबूत करने की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़कर शिक्षा को अधिक प्रभावी और सार्थक बनाया जा सकता है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षक–छात्र संबंध आज भी शिक्षा के क्षेत्र में मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ ग्रंथः–

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. भारतीय दर्शन.
2. शर्मा, रामनाथ. भारतीय शिक्षा का इतिहास.
3. अल्तेकर, ए. एस. प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था.
4. भगवद्गीता. गीता प्रेस, गोरखपुर.
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार.
6. पांडेय, गोविंद चंद्र. भारतीय संस्कृति के आधार.

2.

भारतीय प्राच्य ज्ञान के प्रतिमान : वेदांत और विज्ञान

प्रोफ़ेसर (डॉ.) दीप्ति वाजपेयी
संस्कृत विभाग
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

भारतीय प्राच्य ज्ञान के अनुसार धर्म–दर्शन और विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक अदृश्य की व्याख्या करता है, तो दूसरा दृश्य की। भारतीय मेधा ने विज्ञान को धर्म और दर्शन के साथ जोड़कर मानव कल्याण के रूप में प्रयुक्त किया है। धर्म और दर्शन आस्था का विषय है तो विज्ञान तर्क का, किंतु दोनों ही सत्य का मार्ग प्रशस्त करते हैं सभ्यता के आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति, दर्शन और विज्ञान दोनों ही दृष्टियों से विश्व की समस्त संस्कृतियों में अग्रणीय रही है। वैश्विक परिदृश्य में अपनी सूर्योदय आभा फैलाने में आर्यावर्त,दर्शन और विज्ञान इन दो प्रतिमानों के माध्यम से आदिकाल से ही सक्षम रहा है। दर्शन और विज्ञान की सुदृढ़ नीव पर स्थापित भारतीय प्राचीन ज्ञान स्वयं में अनुपमेय है।

'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' अर्थात जब संपूर्ण विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में विलीन था, उस समय भारत में उच्चतम ज्ञान के आलोक से आलोकित, मानव को पशुता से मुक्त कर श्रेष्ठ संस्कार और नैतिकता से परिपूर्ण उत्तम मानव बनाने की क्षमता रखने वाली ज्ञान गंगा से प्रवाहित हो रही थी। निसंदेह भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है, जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्‌भुत समन्वय है। कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाए। प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा अति समृद्ध थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। भारतीय सन्दर्भ में यदि चिन्तन विधाओं पर एक विहंगम दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि, दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ यद्यपि दुःखों की जिज्ञासा से होता है तथापि इसका पर्यवसान समग्र जीवन के श्रेष्ठतम श्रेयस् लक्ष्य 'मोक्ष' की उपलब्धि में होता है। समग्र भारतीय चिन्तन विधा का चरमोत्कर्ष वेदान्त चिन्तन माना जाता हैं। वेदान्त शब्द का तात्पर्य है .वेद का अंत। इन्हें वेदों का अंतिम भाग अथवा वेदों का सार भी का जाता है। जो ज्ञान वास्तविकता की ओर ले जाता है वही वेदांत है।

वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त

वेदान्त दर्शन के प्रमुख सिद्धांत निम्न है .

1. ब्रह्म की अवधारणा

वेदान्त में ब्रह्म की सत्ता को ही वास्तविक सत्ता माना है। आचार्य शंकराचार्य ने कहा है "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।" अर्थात ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है, जगत मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म ही है, अन्य कोई नहीं। ब्रह्म की मूल तत्व है और ब्रह्म के द्वारा ही इस ब्रह्मांड की संरचना होती है। ब्रह्म इस संसार का निर्माण अपनी माया शक्ति द्वारा करता है। शंकराचार्य ने सत्ता की तीन कोटियां बताई है। परमार्थिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता, प्रतिभाषिक सत्ता।

परमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण पूर्णता सत्य है तथा सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापी है। ब्रह्म अनेक जीवो के रूप में प्रकट होता है। ब्रह्म का अस्तित्व देशकाल से परे है। ब्रह्म स्वतः सिद्ध है इसलिए उसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

2. जगत की अवधारणा

शंकराचार्य के अनुसार जगत मिथ्या है क्योंकि जगत परिवर्तनशील है इसका वास्तविक अस्तित्व नहीं है जगत स्वप्नवत् काल्पनिक, मायिक एवं असत्य है किंतु व्यावहारिक दृष्टि से जगत सत्य है क्योंकि इसी जगत में रहकर मनुष्य ज्ञान, कर्म, भक्ति और मोक्ष की प्राप्ति करता है। शंकराचार्य ने जगत को समझने के लिए 3 सत्ताओं का उल्लेख किया जो कि निम्न है।

1. परमार्थिक सत्ता– ब्रह्म
2. व्यावहारिक सत्ता– जगत

3. प्रतिभाषिक सत्ता– स्वप्नादि

3. माया की अवधारणा

आदिकाल से ही परम तत्व अर्थात् परमात्मा की शक्ति विद्यमान है। इसे माया की संज्ञा दी गई है जो कि ना तो सत्य है और ना असत्य है। इसका वर्णन संभव नहीं है। परमात्मा माया की सहायता से जगत का निर्माण करता है जगत में जो विविधता दिखाई देती है वह सत्य नहीं है। सत्य तो केवल परमतत्व है जो जगत की समस्त वस्तुओं में उपस्थित है। ब्रह्म ही जगत की रचना के उपादान का कारण है। वे सभी प्राणी जो माया द्वारा उत्पन्न होते हैं जीव कहलाते हैं।

माया के जाल में फस कर प्राणी या भूल जाता है कि ईश्वर उसका सर्जन करता है जिसके कारण वह स्वयं को एक स्वतंत्र सत्ता मान लेता है और अपने शरीर मन तथा इंद्रियों में सिमट जाता है। इसी अज्ञानता के कारण स्वयं को कर्ता मान लेता है और सकाम कर्म करते हुए पाप तथा पुण्य का भागी बनता रहता है। इसी कारण उसे जन्म और मृत्यु के बंधन में रहना पड़ता है। जब ज्ञान हो जाता है कि उसका संबंध परमात्मा से है तब उसकी अज्ञानता धीरे–धीरे छूटने लगती है वह निष्काम कर्म की प्रवृति की ओर अग्रसर होता है और परमात्मा में लीन हो जाता है।

4. जीव की अवधारणा

शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन के अनुसार प्राणी माया की रचना है। अज्ञानता के कारण प्राणी स्वयं को अपने शरीर का स्वामी समझ लेता है और इंद्रियों द्वारा शरीर जो भी कर्म करता है उसे यह मान लिया जाता है कि अमुक कार्य जीव ने किया है। प्राणी अपनी ज्ञानेंद्रियों की सहायता से बाह्य जगत का ज्ञान अर्जित कर सकता है। जीव और आत्मा में व्यावहारिक अंतर होता है। आत्मा परमार्थिक सत्ता है जबकि जीव व्यावहारिक सत्ता।

जब आत्मा शरीर इंद्रियां मन के आवरण में होती है तब वह जीव होता है। आत्मा एक है किंतु जीव भिन्न–भिन्न शरीरों में अलग–अलग है। इस प्रकार जीव आत्मा का आभास मात्र है। शंकराचार्य का मत है कि आत्मा मुक्त है परंतु इसके विपरीत जीव बंधनग्रस्त है। अपने प्रयासों से जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद जीव आत्मा में लीन हो जाता है।

5. आत्मा की अवधारणा

अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मतत्व ही परमतत्व है। आत्मा अजर और अमर है। माया के कारण आत्मा जीवात्मा के रूप में जीवो का रूप ले लेती है। आत्मा परिवर्तनशील है क्योंकि यह स्थान और समय से बंधी हुई नहीं है। वेदान्त दर्शन के अनुसार आत्मा ब्रह्म दोनों समान सत्य हैं।

6. मोक्ष की अवधारणा

भारतीय दर्शन में मोक्ष को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य बताया गया है आचार्य शंकराचार्य के अनुसार जब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप ब्रह्म में लीन होने के लिए बंधनों से मुक्त हो जाती है तब मोक्ष प्राप्त हो जाता है अर्थात जीव को आत्मज्ञान या ब्रह्म ज्ञान हो जाता है। आचार्य शंकराचार्य ने ज्ञान योग को कर्म योग से बड़ा माना है मोक्ष प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म की आवश्यकता होती है। सकाम कर्म से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। कर्मफल के कारण जीव जीवन मरण के बंधन में बना रहता है और जब तक इस बंधन में जीव रहता है, उसे आत्मज्ञान नहीं हो पाता। निष्काम कर्म वही योगी कर सकता है, जिसे आत्मज्ञान का बोध हो जाता है।

वस्तुतः वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के गूढ़ एवं विस्तृत चितन का अंतिम सार ही वेदांत दर्शन है। शंकर का अद्वैत वेदांत भारतीय चितन धारा का चरमोत्कर्ष है। वेदांत का ब्रह्म इसका कर्ता एवं उपादान, दोनों कारण है। जगत के कर्ता के रूप में ब्रह्म को सगुण रूप देकर उसे ईश्वर की संज्ञा से विभूषित कर आचार्य शंकर ने ईश्वर भक्त लोगों के हृदय को भी स्पर्श किया है।

वेदांत दर्शन के मूल सिद्धांत–

1. ब्रह्मांड ब्रह्म (ईश्वर) द्वारा निर्मित है–

आचार्य शंकर के अद्वैत वेदांत के अनुसार ब्रह्म मूल तत्व है और ब्रह्म से ब्रह्म के ही द्वारा इस ब्रह्मांड का निर्माण होता है और उसी के द्वारा इसमें नित्य दृश्य एवं अदृश्य परिवर्तन होते रहते हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने अंदर के द्रव्य पदार्थ से अपने श्रम से अपने जाल की रचना करती है ठीक उसी प्रकार ब्रह्म इस जगत का निर्माण करता है। ब्रह्म की वह शक्ति जिसके द्वारा वह ब्रह्मांड का निर्माण करता है, उसे शंकर ने माया कहा है। शंकर के अनुसार ब्रह्म अनादि, अनंत, निर्गुण और निर्वयव है, परंतु जब उसमें माया के द्वारा संसार के निर्माण का गुण आरोपित किया जाता है तो वह सगुण

हो जाता है। उपासना की दृष्टि से भी हम उसे सगुण ब्रह्म (ईश्वर) के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, परंतु है वह निर्गुण ही। रामानुजाचार्य ने ब्रह्म और ईश्वर को एक ही रूप में लिया है। उनकी दृष्टि से ईश्वर ही इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय तीनों का कारण है।

2. ब्रह्म की विशिष्टता –

आचार्य शंकर का तर्क है कि इस जगत का निर्माण होता है और नाश भी इसमें तो प्रति क्षण परिवर्तन होता रहता है, इसलिए यह अनित्य है, असत्य है। उनके अनुसार केवल ब्रह्म ही नित्य है, सत्य है। शंकर ने इस जगत की व्यावहारिक सत्ता अवश्य स्वीकार की है। इसकी व्यावहारिक सत्ता स्वीकार किए बिना तो मनुष्य के अस्तित्व और उसके द्वारा ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग और मोक्ष प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। शंकर के विपरीत रामानुजाचार्य ने ब्रह्म और जगत दोनों को सत्य माना है, परंतु यह उन्होंने भी माना है कि ब्रह्म इनमें विशिष्ट है, प्रलय के समय जगत तो सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है परंतु ब्रह्म (ईश्वर) विशिष्ट शेष रहता है।

3. आत्मा ब्रह्म का अंश है–

शंकर की दृष्टि से आत्मा ब्रह्म का अंश है। मूल रूप में इनमें भेद नहीं हैं, ब्रह्म की माया शक्ति के कारण आत्मा ब्रह्म से अलग प्रतीत होती है माया का पर्दा हटते ही आत्मा और ब्रह्म में भेद नहीं दिखाई देता। रामानुजाचार्य ने जीव (आत्मा), अजीव (प्रकृति) और ईश्वर, तीन मूल तत्व माने हैं। उनकी दृष्टि से आत्मा का अलग अस्तित्व है।

4. मनुष्य अनंत ज्ञान एवं शक्ति का स्रोत है–

शंकर का स्पष्टीकरण है कि मनुष्य आत्माधारी है और आत्मा ब्रह्म का अंश है, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है, इसलिए मनुष्य अपने में अनंत ज्ञान एवं शक्ति का स्रोत है, परंतु माया के कारण मनुष्य अपने इस अनंत ज्ञान एवं शक्ति को पहचान नहीं पाता। जो मनुष्य अपनी आत्मा को पहचान लेता है वह सब कुछ जान जाता है और सब कुछ करने में समर्थ होता है। रामानुजाचार्य ने इसी तथ्य को दूसरे रूप में स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि से मनुष्य सत्–असत् का योग है इसलिए अनंत ज्ञान एवं शक्ति को प्राप्त कर सकता है।

5. मनुष्य का विकास उसके संचित, प्रारब्ध और संचीयमान कर्मों पर निर्भर करता है–

भौतिकवादी मनुष्य के विकास का आधार उसकी कर्मेंद्रियों, ज्ञानेंद्रियों और मस्तिष्क को मानते हैं। वेदांत मनुष्य की इंद्रियों और मस्तिष्क में भिन्नता के कारण की खोज में संचित एवं प्रारब्ध कर्मों की तह तक पहुँच गया। वेदांत के अनुसार मनुष्य का विकास संचीयमान कर्म (इस जन्म में किए जाने वाले कर्म) के साथ–साथ उसके संचित कर्म (पूर्व जन्म के संचित कर्म) तथा प्रारब्ध कर्म (पूर्व जीवन के वे संचित कर्म जिनका फल इस जीवन में भोगना है) पर निर्भर करता है। तभी तो इस जीवन में दो समान मनुष्यों के एक ही परिस्थिति में समान कर्म करने पर असमान फल प्राप्ति होती है।

6. मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है–

मुक्ति का शंकर ने कई रूपों में वर्णन किया है। जब मनुष्य ज्ञान के द्वारा इस संसार की असत्यता से परिचित हो इससे विरक्त हो जाता है और सांसारिक सुख–दुःख का अनुभव नहीं करता तो उसे जीवन मुक्त कहते हैं। जीवन मुक्त व्यक्ति सब प्राणियों में अपना स्वरूप देखता है, इसलिए वह भेदभाव नहीं बरतता, सत्कर्म उसके व्यक्तित्व का सहज स्वभाव बन जाता है। शंकर के अनुसार इस जीवन मुक्त से आगे की स्थिति है–आत्म–ब्रह्म में अभेद। इस स्थिति पर पहुँचने पर ही मनुष्य वास्तविक मुक्ति प्राप्त करता है। इसे शंकर ने विदेह मुक्ति कहा ळें शंकर के अनुसार जीवन मुक्ति में मनुष्य को आनंद की अनुभूति होती है और विदेह मुक्ति में परमानंद की अनुभूति होती है। रामानुजाचार्य के अनुसार मुक्ति का अर्थ है–ईश्वर की प्राप्ति।

7. मुक्ति के लिए ज्ञान योग, कर्म योग व भक्ति योग आवश्यक हैं–

शंकर ने अनादि एवं अनंत ब्रह्म को सत्य जानने को विद्या (ज्ञान) और मायामय संसार को सत्य जानने को अविद्या (अज्ञान) कहा है। शंकर का मत है कि जब तक हम कर्म और भक्ति के द्वारा अच्छे जीवन की आकांक्षा करते रहेंगे तब तक हमें वही प्राप्त होता रहेगा, आत्मा–ब्रह्म के अभेद को हम प्राप्त ही नहीं होंगे। इस अभेद को जानने के लिए उन्होंने ज्ञान प्राप्ति पर बल दिया है। इसका अर्थ यह नहीं कि शंकर कर्म के महत्व को स्वीकार नहीं करते थे।

भारतीय धर्म दर्शन और विज्ञान एक दूसरे के पूरक है वेदों की ऋचाएं हो या वेदांत का दर्शन सभी विज्ञान की कसौटी पर पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं सत्य की खोज में दर्शन और विज्ञान दोनों सहगामी मार्ग के समान है। सामान्यतः माना जाता है कि विज्ञान तथ्यों और प्रयोगों पर आधारित है जबकि धर्म आस्था और विश्वास पर। दोनों ही अपार शक्ति का स्रोत है। दर्शन,

धर्म का पथ प्रदर्शक है, जबकि विज्ञान धर्म का ही दूसरा रूप है। विज्ञान व धर्म–दर्शन के परस्पर समान गुणों के कारण ही दोनों को एक दूसरे का पूरक कहा गया है। अल्बर्ट आइंस्टीन एक वैज्ञानिक होने के बावजूद भी यह विश्वास रखते थे कि सृष्टि की रचना इत्तेफाक की बेतरतीब ईटों से नहीं बल्कि पूर्व निर्धारित व्यवस्था के आधार पर हुई है। सृष्टि की रचना के पीछे जो महाशक्ति कार्य कर रही है, वही ब्रह्म या ईश्वर है।

विज्ञान सृष्टि के संचालन को ऊर्जा के संरक्षण का सिद्धांत मानता है, इसके अनुसार ऊर्जा को ना तो उत्पन्न किया जा सकता है और ना ही नष्ट किया जा सकता है। इसका रूपांतरण मात्र ही संभव है। यही हमारी प्राचीन प्रज्ञा भी स्वीकार करती है जिसके अनुसार ईश्वर ही संसार को संचालित करने वाली ऊर्जा है, शक्ति है, नियामक तत्व है वह स्वयंभू है, सनातन है और विभिन्न रूपों में प्रकट है अर्थात यह श्रेष्ठ ब्रह्म रूपी ऊर्जा का रूपांतरण मात्र है। विज्ञान मानता है कि संसार में ऊर्जा का संचरण ऊर्जा स्रोत में होता है, जो स्रोत कभी समाप्त नहीं होता । यह सृष्टि ऊर्जा का ही परिवर्तित रूप है। धर्म ग्रंथों में भी ईश्वर को इसी रूप में परिभाषित किया गया है .

ओइम पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

अर्थात वह परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है क्योंकि यह उस पूर्ण परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण जगत को निकाल लेने पर भी पूर्ण ब्रह्म ही शेष रहता है क्योंकि यह जड़ चेतन समस्त जगत उसी ब्रह्म का रूपांतरण मात्र है । वह परम ऊर्जा विभिन्न रूपों में इधर उधर बिखरी हुई है। ब्रह्म रूप परम शक्ति ही ऊर्जा का स्रोत है जो अनेक रूपों में इस सृष्टि में विद्यमान है और वह स्रोत कभी समाप्त नहीं होता। तद अनुरूप विज्ञान भी मानता है कि जब ऊर्जा का रूपांतरण होता है तो ऊर्जा की कुल राशि स्थिर रहती है, साथ ही ऊर्जा को ना तो बनाया जा सकता है और ना ही नष्ट किया जा सकता है। केवल इसके रूप बदले जा सकते हैं। विभिन्न रूपों में हम ऊर्जा को ऊष्मा, ध्वनि, यांत्रिक क्रियाविधियों के रूप में देखते हैं अर्थात यह ऊर्जा के परिवर्तनशील रूप है। श्रीमदभगवतगीता आत्मा को ऊर्जा का प्रतिरूप बताया गया है तथा उसे कभी नष्ट ना होने वाला माना गया है.

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो. न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

अर्थात आत्मा अजन्मी, नित्य शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह नष्ट नहीं होती। यह पुराने शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण करती है।

इस प्रकार धर्म–दर्शन और विज्ञान दोनों ही ऊर्जा को अनंत और परिवर्तनशील मानते हैं। सूर्य विज्ञान के लिए उपयोगी है तो धर्म के लिए भी आराधना की विषय वस्तु है। सूर्य में एक साथ दो ऊर्जा (प्रकाश और ऊष्मा) प्रदान करता है इसलिए सूर्य को पूजनीय मानकर विभिन्न धर्म ग्रंथों में इसकी स्तुति की गई है तथा इसकी महिमा का वर्णन किया गया है। इस संदर्भ में विज्ञान भी सूर्य को प्रबल ऊर्जा का स्रोत मानता है। खगोल एवं ज्योतिष विज्ञान सूर्य पर आधारित है। दिन रात का चक्र और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी सूर्य पर ही आधारित है। धर्म–दर्शन और विज्ञान समान तथ्य की पुष्टि करते हैं। अंतर मात्र कहने के तरीके में है। धर्म आस्था और विश्वास के माध्यम से उन्हीं तथ्यों की पुष्टि करता है जिन्हें विज्ञान तर्क और प्रयोगों के माध्यम से सिद्ध करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि धर्म–दर्शन हो अथवा विज्ञान, भारतीय प्राच्य ज्ञान में दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में सत्य को अन्वेषित करने का माध्यम है। मन–आत्मा और बुद्धि के द्वारा सत्य को सिद्ध करने वाले धर्म–दर्शन और विज्ञान साधन के रूप में भिन्न प्रतीत होते हैं, किंतु दोनों का साध्य एक ही है। भारतीय प्राचीन ज्ञान इन दोनों प्रतिमानों के माध्यम से आदिकाल से ही विश्व गुरु रहा है और आज भी इस ज्ञान के प्रसार के माध्यम से भारत में विश्व गुरु बनने की क्षमता विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

- आधुनिक चिंतन में वेदांतः डॉ. महेन्द्र शेखावत, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
- गीता प्रबन्धः श्री अरविन्द, अरविन्द आश्रम, पाण्डुचेरी।
- प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यताः डॉ. सत्यप्रकाश शर्मा, साहित्य प्रकाशन, मेरठ।
- प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वः डॉ. आर.एस. वर्मा, संजय पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- भारतीय दर्शन (भाग 1/2): डॉ. राधाकृष्णन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- भारतीय दर्शनः बलदेव उपाध्याय, साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

- भारतीय दर्शन की रूपरेखाः प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, माँगे लाल बनारसी दास बंगलो रोड, आगरा।
- भारतीय संस्कृतिः डॉ. राजकिशोर सिंह, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमिः एल. के. ओड, राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- प्राच्यज्ञान, सभ्यतागत पुरावशेष एवं समसामयिक विश्व, प्रो.दिव्या नाथ, प्रो.दिनेश चंद्र शर्मा, प्रो.किशोर कुमार, प्रो.दीप्ति बाजपेई,नालंदा प्रकाशन, नई दिल्ली
- योगवासिष्ठ के दार्शनिक एवं शैक्षिक सिद्धांत, डॉ दीप्ति वाजपेयी, नवभारत प्रकाशन दिल्ली ।
- Quality Enhancement and Indian Education System: Role of NEP 2020, Divya Nath, Dinesh C- Sharma, Kishor Kumar and Deepti Bajpai, ABS Books Delhi.

3.

अष्टावक्र गीता में निहित भारतीय ज्ञान परम्परा से विश्वकल्याण

मनीषा कुमारी
शोधार्थिनी, शिक्षा संकाय
आर0बी0,एस0 कॉलेज, आगरा–282002

प्रो0 बसन्त बहादुर सिंह
प्रोफेसर एण्ड हेड, शिक्षा संकाय
आर0बी0,एस0 कॉलेज, आगरा–282002

शिक्षा मानव निर्माण की प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव की अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित किया जाता है। प्रत्येक मानव अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक स्वयं के विकास में लगा रहता है। भारतीय शिक्षा दर्शन में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की बात समाहित है। खेल अध्ययन और अध्ययन ही शिक्षा नही हैं, वरन् चिन्तन, मनन, अन्वेषण करके ज्ञान, भाव और कर्म में साम्य भी स्थापित करना हैं। लौकिक ज्ञान के साथ–साथ ब्रह्मज्ञान, ब्रह्माण्ड का ज्ञान तथा आत्म–ज्ञान, अर्जित करना भी शिक्षा है।

भारतीय जनमानस सदा से अपनी संस्कृति, ज्ञान, परम्पराओं व जीवन मूल्यों पर गर्व रहा हैं। भारत संस्कृति व परम्पराओं का धरातल रहा है। मगर अब प्राचीनकाल से चली आ रही समृद्ध भारतीय संस्कृति व ज्ञान परम्पराओं पर आधुनिकता व पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव इस कदर हावी हो रहा है कि लोगों की पारम्परिक उसूलों में बदलाव हो चुका है। शहरों से लेकर, गांव, कस्बों तक शायद ही कोई क्षेत्र बचा हो जहां आधुनिकता के खुमार ने विश्व की श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति व परम्पराओं को अपनी जद में न लिया हो। लेकिन आज पाश्चात्य संस्कृति के खुमार में जहां भारतीय संस्कार व कई परम्पराएँ उपेक्षित हो रही है, वही पश्चिमी देशों के लोग भारत की समृद्ध संस्कृति से जुड़ी कई चीजों व संस्कारों को अपने आचरण में शामिल कर रहे हैं। कोरोना काल में

विश्व के कई देशों ने हमारी धार्मिक, संस्कृति से जुड़ी पूजा पद्धति, हवन, यज्ञ, योग, आध्यात्म व आयुर्वेद आदि चीजों को अपनी जीवनशैली में अपनाकर भारतीय दर्शन के प्रति गहरी आस्था दिखाई।

हमारे महान मनीषियों के अथक प्रयासों व कड़े परिश्रम द्वारा रचे गए वेद, उपवेद, पुराण, उपपुराण, उपनिषद्, शास्त्र व कई प्राचीन ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में हुई है। इन ग्रंथों में समाहित ज्ञान को कई विदेशी विद्वानों ने अंग्रेजी व फारसी सहित कई भाषाओं में अनुवाद करके कई देशों में पहुंचा दिया। संस्कृत में रचित हमारे पवित्र ग्रन्थों व वैदिक मंत्रों में हजारों वर्ष पूर्व दुनिया के कई गूढ़ रहस्यों का जिक्र हो चुका था। अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' के वैज्ञानिक भी भारतीय प्राच्य ग्रंथों के पन्ने खंगाल कर इनके महत्व को अहसास कर चुके हैं।

प्राचीन समय में ज्ञान, सत्य, आहिंसा, शिष्टाचार, आध्यात्म, अखण्डता व संयम का संदेश देने वाले उन आदर्श, संस्कारों व नैतिकता जैसे मूल सिद्धान्तों के दम पर 'विश्व गुरु' के रूप में भारत दुनिया का नेतृत्व करता था। भारत की प्राचीन संस्ष्ति में शक्ति व शांति का संदेश तथा शस्त्र व शास्त्र दोनों पूजनीय रहे हैं।

भारतीय दर्शन सम्पूर्ण जगत से समाद्वत है, जो सम्पूर्ण विश्व को समग्रता से देखता है। भारतीय इतिहास में अद्वैतवाद के सिद्धान्त में ज्ञान का अत्यन्त महत्व हैं। अद्वैतवादियों के अनुसार शिक्षा व्यक्ति की ज्ञान प्राप्ति व अज्ञान निवृत्ति का माध्यम हैं। तथा ज्ञान के स्वरूप की विवेचना करते हुए कहा है कि– "ज्ञान का तात्पर्य केवल मात्र भौतिक पदार्थों की जानकारी नहीं है वरन है, ब्रह्म अथवा आत्मा को जानना ज्ञान है। मनुष्य की आत्मा अनन्त ज्ञान स्वरूप हैं। उसके ऊपर से आवरण का हटाना ही ज्ञान है।"

जीव तथा ब्रह्म दो नहीं अपितु पारमार्थिक रूप से एकमात्र ही हैं अष्टावक्र गीता भी इसी विचारधारा की पुष्टि करती है। भारतीय पौराणिक साहित्य भण्डार में से आध्यात्म का शिरोमणि ग्रन्थ अष्टावक्र गीता हैं। ज्ञान के सन्दर्भ में अष्टावक्र गीता में उल्लेखित उपदेश में कहा गया–

तवैवाज्ञानतो विश्वं त्वमेकः परमार्थतः।
त्वतोन्यो नास्ति संसारी ना संसारी चकश्चन।।१६।।

सार के रूप में कहा जा सकता है कि– जब हम अपनी और संसार (विश्व) की एकात्म को स्वीकार करते है तो हम ज्ञान की एकता का अनुभव करते हैं।

संसार में ज्ञान के समान कुछ भी पवित्र नहीं है, ज्ञान ही मनुष्य की आशंकाओं और जिज्ञासाओं को दूर करता है। अष्टावक्र गीता में कहा गया है कि ज्ञान एक ही परमात्मा का

अखंड ज्ञान है ज्ञान की विविधाताए मात्र सांसारिक श्ष्टिकोण से है। वस्तुतः सारा ज्ञान एक ही सारे ज्ञान का आधार एक ही परम सत्य है जो कि परमात्मा (ब्रह्म) जो मानव ज्ञान की एकता को समझ लेता है वह ब्रह्म से मिल जाता है वह जीवन में आनंदमय बन जाता है तथा अद्वैतवादी विचारधारा के प्राचीन ग्रंथ अष्टावक्र गीता का अध्ययन ज्ञान मनोविज्ञान पर आधारित होने के साथ, मानव के समग्र विकास में, कुशल व उत्तरदायित्व से परिपूर्ण नागरिक तैयार करने में, ज्ञान की एकता के लिए व मानव में सद्मूल्यों के विकास के लिए सहायक हैं। अतः अष्टावक्र गीता में निहित ज्ञान मानव मूल्य विश्व कल्याणकारी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- बिहारी, रमन लाल, "शिक्षा के समाज शास्त्रीय आधार" रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
- दशोरा, नन्दलाल, (2014). "अष्टावक्र गीता", रणधीर प्रकाशन, आगरा।
- लाम्बा, मनोज, "अष्टावक्र गीता", अमित पॉकेट, बुक्स।
- माथुर, एस0एस0 (1997). "शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- सिंह, बाबू जालिमा, (1979). "अष्टावक्र गीता", तेज कुमार प्रेम बुक डिपो, लखनऊ।

4.

आजादी का अमृतकाल: भारतीय ज्ञान परम्परा से विश्व कल्याण

सुश्री अलका गुप्ता
शिक्षणशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक
कानपुर, उ0प्र0

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में **''वसुधैव कुटुम्बकम''** की अवधारणा की प्रासंगिकता।

मानव जीवन की तीन ही प्रमुख आवश्यकताएँ हैं **''रोटी, कपड़ा और मकान''** इसके बादआते हैं ''स्वास्थ्य और मनोरंजन''।

''वसुधैव कुटुम्बकम'' का शाब्दिक अर्थ है कि पूरा विश्व हमारे लिए एक परिवार समान है अर्थात् विश्व में उपलब्ध सभी वह संसाधन जो मानव जीवन के चलायमान (Servive) करने के लिए आवश्यक होते हैं उन पर विश्व में मौजूद समस्त सजीव प्राणियों का समान हक (अधिकार) है और इस मानववादी धारणा का समर्थक है **''वसुधैव कुटुम्बकम''** की अवधारणा।

जब भी किसी चीज के बंटवारे की बात आती है तो बड़ा–छोटा, ऊँच–नीच, जाति–पाँति, रंगभेद, धर्म, राष्ट्रीयता आदि–आदि अनके बिन्दु आते हैं जिसमें कहा–सुनी, बहस की संभावना बनती है क्योंकि यह मानव का मूल स्वभाव है कि वह अपनी कमियों के लिए वकील और दूसरों की कमियों के लिए जज तुरन्त बन जाता है और मानव का ये ही मूल स्वभाव उसे युद्ध और झगड़े के लिए प्रेरित करता है और अधिक से अधिक हमें मिल` के सिद्धांत पर चलने लगता है उसके अन्दर मैं और मेरे की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि वह अपने रिश्ते–नाते, परिवार, समाज की भावना की परवाह किये बगैर स्वंय ही सब समेटना चाहता है। जिसका सबसे ताजा उदाहरण है– यूक्रेन और रसिया का युद्ध। दोनों ही देश हैं मैं बड़ा–तू छोटा के झगड़े में इतना खो चुके हैं कि उन्हें ये भी नहीं दिख रहा है कि निर्दोष नागरिक उनके इस बड़े–छोटे के अहंकार में मारे जा रहे हैं। मेरे अनुसार किसी भी समस्या

का समाधान युद्ध कभी नहीं हो सकता है युद्ध आखिरी विकल्प होता है समस्या को समाप्त करने का।

यहाँ **''वसुधैव कुटुम्बकम''** की संभावना इसलिए भी प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि हम सब एक परिवार हैं मानते ही भावना, शांति, सहयोग, सहानुभूति और करूणा को प्रोत्साहित करता है और पूरे विश्व को हम ये बता सकते हैं कि हम सब एक हैं और सभी इंसान, इंसानियत के धर्म में बँधे हुए हैं। यहाँ समझने वाली बात यह है कि समानता का अर्थ यह नहीं है कि पाँच साल के बालक और पचास साल के वयस्क के बराबर आवश्यकताएँ होंगी? ऐसा बिल्कुल नहीं होगा हर व्यक्ति की 14 मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं उनको ही ध्यान में रखते हुए ही सभी संसाधनों का हमेशा बँटवारा होना चाहिए यानि विविधता को ध्यान में रखते हुए समानता का पालन करना– जैसे यदि अनाज की बात करे तो पाँच साल के बालक को एक पाव अनाज पर्याप्त है दो दिन के लिए और वहीं वयस्क 500 ग्राम या तीन पाव अनाज भी कंज्यूम (उपयोग) कर सकता है दिन भर में। इस प्रकार हमें यह देखना होगा कि प्रत्येक परिवार, समूह, समुदाय, राज्य, देश–विदेश की अलग–अलग परिस्थिति–जन्य अलग–अलग आवश्यकताएँ भी होती हैं जैसे– कुछ राज्यों में पक्के घर बनाएं जा सकते हैं कुछ राज्यों में एक मंजिला घर ही खूबसूरत लगता है और वहाँ दूसरी मंजिल बनाना संभव नहीं होता है तो कुछ राज्यों में बहुमंजिला इमारतें ही बहुतायत में होती हैं इसीप्रकार पहनावे की बात आती है और रोटी, कपड़ा, मकान के दायरे में

यदि हम अपने दश े ा भारत की विश्व के अलग दश े ों से तुलना करें तो पाते हैं कि हमारे देश में डायर्सिटी (विविधता) बहुत अधिकता में है जो हमारे देश की ''अनेकता में एकता'' वाली विशेषता बन जाती हैं और इसी विविधता के कारण हमने पूरी दुनिया में अपनी एक अलग पहचान बनायी है।

हाल में ही नई दिल्ली में आयोजित जी–20 बैठक का मूलसार ही था **''वसुधैव कुटुम्बकम''** इतना ही नहीं बैठक की सबथीम (उपशीर्षक) भी 'वन अर्थ–वन फेमिली–वन फ्यूचर' रखी गयी थी और इतनी डायवर्सिटी (विविधता) होने के बाद भी सभी दश े ों का (55 विकासशील और गरीब देशों) का बैठक में स्थायी सदस्य बनाया जाना इस अवधारणा की प्रासंगिकता (सार्थकता) में चार चाँद लगा देता है। लगभग डेढ़ लाख डेलगटे स विदेशी मेहमानों का हमारे यहाँ आना और हमारी संस्कृति व परिवार का हिस्सा बनना और डिनर के दौरान भारतीय परिधान पहनना इस वन फेमिली अवधारणा को अपनाने का साफ मंतव्य दिखाई देता है। हमारी संस्कृति और विरासत को माननीय मोदी जी दुबारा मेहमानों को स्वागत के दौरान जताया जाना कि ये दुनिया महात्मा गाँधी के तीन सिद्धांत (सत्य, अहिंसा, प्रेम) पर टिकी हुई है। सभी लोग आपस में जुड़े हुए हैं और एक व्यक्ति की भलाई दूसरों की भलाई से जुड़ी हुई है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' का दर्शन इसी स्थिरता का समर्थन करता है।

यह मान्यता, ये भी बताती है कि एक व्यक्ति अपने कार्यों द्वारा पूरे विश्व को प्रभावित कर सकता है विश्व के एक मंच पर अपने विचारों से सहमत कर सकता है व्यक्ति न सिर्फ वैश्विक जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करता है बल्कि दूसरों को भी ऐसा कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है। आज के समय में **''वसुधैव कुटुम्बकम''** 'बेहतर भविष्य का खाका पेश करता है। एकता, सहयोग और आपसी सम्मान को बढ़ावा देकर हम संघर्षो को दूर करने और सुलझाने तथा असमानताओं को कम करने की दिशा में काम कर सकते हैं ये भावना एक ऐसी दुनिया का निर्माण करेगी जो अधिक शांतिपूर्ण, सामंजस्य पूर्ण और समावेशी होगी। ये वाक्य हमें (एक बेहतर दुनिया के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति की अहम भूमिका है।) इस तथ्य का अहसास करवाता है।

आज के आपा–धापी से भरे और आपस में जुड़े इस संसार में, **''वसुधैव कुटुम्बकम''** का संदेश पहले से भी कहीं अधिक प्रासंगिक (सार्थक) है। हमें मानना होगा कि हम एक ऐसे वैश्विक गाँव में रहते हैं जहाँ राष्ट्रों, संस्कृतियों और लोगों के बीच की सीमाएँ तेजी से धुंधली होती जा रही हैं इसलिए इस दर्शन को अपनाकर एक ऐसी दुनिया बनाने का प्रयास करना अनिवार्य हो जाता है, जहाँ सभी के साथ समान रूप से गरिमापूर्ण व्यवहार किया जाता है।

''हमारे धार्मिक ग्रन्थों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि 725 करोड़ मनुष्यों की यदि सम्पूर्ण दुनिया **''वसुधैव कुटुम्बकम''** के सिद्धांत पर चलेगी तो संसार को बड़ी से बड़ी समस्या (आपदा) का भी मुकाबला किया जा सकता है।'' जैसे– कोरोना आपातकाल में सचमुच सारी दुनिया एक परिवार की तरह खड़ी है। सभी देशों को चाहिए इस आपदा से सबक लें, छोटे–छोटे गिले–शिकवों को भुलाकर एक दूसरे की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाएँ। वैचारिक मतभेद भले ही कायम हो परन्तु मनभेदों की कोई जगह अब नहीं होनी चाहिए।

समय के साथ **''वसुधैव कुटुम्बकम''** को भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के प्रतीक के रूप में देखा जाने लगा है, जो करूणा के मूल्यों, विविधता के प्रति सम्मान और दुनिया में शांति और एकता को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। हालिया वर्षो में **''वसुधैव कुटुम्बकम''** को अधिक मान्यता और लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कई संगठनों, सरकारों और व्यक्तियो ं ने ''वसुधवै कुटुम्बकम् की अवधारणा'' का े वैश्विक सहयोग और समझ को बढ़ावा देने के माध्यम के रूप में अपनाया है।

परिवार लोगों के एक ऐसे समूह का नाम है, जो विभिन्न रिश्ते–नातों के कारण भावनात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। ऐसा नहीं है उनमें लड़ाई–झगड़ा नहीं होता या वैचारिक मतभेद नहीं होते, परन्तु इन सबके बावजूद वे एक दूसरे के सुख–दुःख के साथी होते हैं। यह अपनेपन की प्रबल भावना परिवार के सभी लोगों को एक साथ जोड़े रखती है। परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे को धकेल कर नहीं वरन् एक दसू रे का सहारा बनते हुए आग े बढ़ते हैं अगर परिवार के इसी को वैश्विक स्तर पर निर्मित कर दिया जाए अर्थात् विश्व के सभी इन्सानों को एक परिवार समझना ही **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** कहलाता है।

मनुष्य जाति अपनी बौद्विक क्षमता के कारण बाकी सजीव प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है और पृथ्वी के अधिकांश भू–भाग पर मनुष्यों की बस्तियाँ हैं जिन्हें हम देश बुलाते हैं और सभी देशों के नागरिकों को संसाधन, संस्कृति और विचारों के स्तर पर पिरोना ही **''वसुध ैव कुटुम्बकम्''** कहलाता है।

भारतीय संस्कृति बहुत **''समृद्ध''** हैं और इसने हममें से प्रत्येक में महान मूल्यों को शामिल किया है हम लोग इस देश के नागरिक है जो अहम् ब्रम्ह्मस्मि से **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** तक आए हैं। ये ही भारत की मूलभूत भावना है।

जिस दिन पृथ्वी के सभी लोग अपने सारे विभेद भुलाकर एक परिवार की तरह आचरण करने लगेगें, उसी दिन सच्ची मानवता का उदय होगा और **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** का सपना साकार होगा। सभी मनुष्य समान हैं और सभी का कर्तव्य है कि वे परस्पर एक दूसरे के विकास में सहायक बने, जिससे मानवता फलती–फूलती रहे।

आज एक सामान्य व्यक्ति की प्राथमिकता का क्रम परिवार, मोहल्लें से शुरू होता है और देश पर अन्त हो जाता है। देखा जाए तो आधुनिक समय में **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** भारतीय पुराणों में वर्णित एक उक्ति है। **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** की अवधारणा की संकल्पना भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि–मुनियों द्वारा की गई थी जिसका 'उद्देश्य' था पृथ्वी पर मानवता का विकास। इसके माध्यम से मुनियों ने यह संदेश देने की कोशिश की है कि सभी मनुष्य समान है और सभी का कर्तव्य है कि परस्पर एक–दूसरे के जुड़े रहें। यह सार्वभौमिक भाई–चारे को पोषित करता है। भारतीय साहित्य, संगीत और कला में इसके उपयोग के कारण यह वाक्यांश आध ुनिक युग में अधिक व्यापक रूप से जाना जाने लगा है। **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** की प्रासंगिकता और सार्थकता हमें अपने घरों से परे, अपने समुदायों से परे, अपने देशों से परे, अपने गृह से परे जाने और पूरे ब्रह्माण्ड को एक परिवार माने जाने हेतु प्रोत्साहित करती है और पूरे विश्व में सौहार्द, प्रेम, खुशी, आनन्द का विस्तार करती है। परस्पर समझ और साझेदारी को बढ़ाती है और मानवता फलती–फूलती रहती है।

भारतीय संस्कृति बहुत 'समृद्ध' है और इसमें हममें से प्रत्येक में महान मूल्यों को शामिल किया है हम लोग वह हैं जो अहम् ब्रह्मास्मि से **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** तक आए हैं। ये भारत की 'मलू भूत भावना' है। इसी मूलभूत भावना को हम भारतीयों ने अपने खून में रचाया–बसाया है उदाहरण के तौर पर ––

''जी–20 सबमिट के माध्यम से **''सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्''** का संदेश पूरे विश्व को दिया जाना इस बात का प्रतीक है कि परम्परा ज्ञान के संरक्षण व संवर्धन हेतु भारत ने पहला कदम उठा लिया है।''

5.

भारतीय–ज्ञान–परम्परायां योगः स्वास्थ्यच

डॉ0 शिखा रानी
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
कु0मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालयः
बादलपुरम् (गौतमबुध नगरम्)

योगोऽस्माकम् ऋणीणां समीचीना सम्पत्तिरस्ति। योगस्वास्थ्ययोः गहन–सम्बन्धोऽस्ति। यदि स्वास्थ्यं सम्यक् न भवति तर्हि पुरुषार्थ–चतुष्टयस्य सिद्धिर्भवितुं न शक्यते। प्रत्येकं कार्यस्य सिद्धिः शरीरेण भवति। अतः प्रथमं दायित्वं शरीरं प्रति अस्ति। योगेन मानवस्य दूषित–चित्तवृत्तीनां निरोधः भवति। योगः आत्मानुशासनमस्ति। योगः व्याधिमुक्तस्य समाधियुक्तस्य च जीवनस्य संकल्पना अस्ति। योगिनः शरीरम् अग्निमयं भवति। यथा अग्नौ यत्किमपि पतति नष्टं भवति तथैव योगिनः शरीरे न तु रोगो भवति, न मानसिकविकाराः श्वेताश्वतरोपनिषदि कथितमस्ति– ''न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः। प्राप्तस्य योगः अग्निमयं शरीरम्।।1 योगस्य अष्टावङ्.गानि सन्ति, तेषु प्राणायामस्य विशेष–महत्त्वमस्ति। प्राणायामद्वारा अन्येषाम् अङ्.गानां सिद्धिर्भवति आसनतिरिक्तम्। योगः व्यक्तित्वं वामनतः विराट् कर्तुमाध्यात्मिक–विद्याऽस्ति। योगेन शरीरशुद्धिः, इन्द्रियशुद्धिः चित्तशुद्धिः मनशुद्धिः, बुद्धिशुद्धिश्च भवति। तेन शरीरबलम्, आत्मबलं प्राणबलं इन्द्रियबलं मनोबलं संकल्पबलं ब्रह्मबलञ्च वर्धते। वेद–ऋषिः कथयति–यत् 'अस्मा भवतु नस्तनः' अर्थात् अस्माकं शरीरं वज्रसम स्यात्। अस्य सिद्धिर्योगेन भवितुं शक्यते। योगस्य महिमा अनन्तोऽस्ति, अप्रतिमोऽस्ति। ये बालकाः योगं कुर्वन्ति ते बलवन्तः, प्रज्ञावन्तो बुद्धिवन्तः चरित्रवन्तः साहसिनः पराक्रमिणः स्वाभिमानिनः कर्मठाः देशभक्ताः गुरूभक्ताः, मातृ–पितृभक्ताश्च भवन्ति। सम्पूर्णे विश्वे भौतिक–उन्नतिः अर्थात् विज्ञानने बहु प्रगतिः कृता, टेक्नोलॉजी इत्यस्य बहु प्रगतिर्भवति, किन्तु मानसिक–शान्तिः आत्मिकसुखं नास्ति। मानसिक–शान्तेः आत्मिकसुखस्य अपितु सर्वविधसुखस्य प्राप्तिः योगेन एव भवितुं शक्यते। यदि विश्वस्य प्रत्येकं जनः योगं कुर्यात् तर्हि सर्वत्र शान्तिः, प्रसन्नता, पवित्रता प्रगतिश्च भवेत्। कुत्रापि हिंसा, क्रोध, अपराधः अच्छृङ्.खलता न भवेत्। योगेन एव सर्वविधसमस्यानां समाधानं

भविष्यति। अधुना योगऋषिः स्वामी रामदेवः बाबा सर्वान् योगं कारयति। सम्पूर्ण–विश्वे प्रसिद्धोऽस्ति योगेन। सामान्य–मानवात् महामानवोऽभवत्। योगऋषेः सम्पूर्णसाम्राज्य ं योगने

वर्तते। अतः अस्माभिः प्रतिदिनं योगः करणीयः। वयं योगानुगामिनः, वेदानुगामिनः, सत्यानुगामिनश्च भवेम, तदैव राष्ट्रमडलतः विश्वमडल, राष्ट्रकल्याणतः विश्वकल्याणं भविष्यति। योगेनैव 'वसुधैव कुटम्ु बकम्' इत्येषा सकं ल्पना सफला सिद्धा च भविष्यति।

योगोऽत्यन्तोव्यापकोविषयोऽस्ति। वेद–उपनिषद्–पुराण–रामायण–महाभारत–योगसूत्र–इत्यादिषु कोऽपि ईदृशो ग्रन्थो नास्ति यत्र योगस्य उल्लेखो न स्यात्। योग–शब्दस्य व्यतु् पत्तिः युज् धातो': भवति, यस्य तात्पर्यमस्ति जीवात्मपरमात्मनोः मेलनम्। विभिन्नषे ु ग्रन्थेषु योगस्य परिभाषा कृता–महर्षि पतञ्जलिः कथयति यत् 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'[2] अर्थात् चित्ते विद्यमानानां विविधानां चित्त–वृत्तीनां सर्वथा निरोधं कृत्वा चित्ते विलीनीकरणं योगः इति कथ्यत। विष्णुपुराणे योगः संयोग इत्युक्तः जीवात्मपरमात्मनोः।।4 अर्थात ् जीवात्मपरमात्मनोः पणू तिया मेलन ं योगः उच्यते। भगवद्गीतानुसारम्'' सिद्धयसिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग–उच्यते''।[4] अर्थात् दःु ख–सुख–पाप–पुण्य–शत्र–ु मित्र–शीत–उष्णमित्यादिभ्यो द्वन्द्वेभ्यो मुक्तो भूत्वा सर्वत्र समभावेन व्यवहारः करणीयः योगोऽस्ति। योगः कर्मसु कौशलम्।[5] निष्कामभावेन कर्मसु कौशलं योगः उच्यते।

योगस्वास्थ्ययोः घनिष्ठः सम्बन्धोऽस्ति। धर्मस्य अनुष्ठानम्, अर्थोपार्जनम्, दिव्य–कामनया सन्तानोत्पत्तिः मोक्षश्चेतेषाम् चतुर्णां पुरुषार्थानां सिद्धये शरीरस्य स्वस्थता (निरोगता) आवश्यकी अस्ति। यदि शरीरं रोग्रगस्तं स्यात् तर्हि सर्वं व्यर्थं भवति, तत्र सुखं शान्तिः आनन्दश्च कुत्र? कुमारसम्भवे कथितमस्ति – 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम।'6 अर्थात् प्रत्येकं धर्मस्य साधनं मानवशरीरमस्ति। यदि शरीरं स्वस्थं न भवति तर्हि जीवनयात्रा सम्यक्प्रकारेण न चलति। स्वास्थ्यं त्रिविधं भवति–शारीरिक–स्वास्थ्यम्, मानसिक–स्वास्थ्यम्, आत्मिक–स्वास्थ्यञ्च रुग्णतायाः कारणं मानसिक–विकाराः सन्ति।

यः योगं करोति तस्य मानसिक–विकाराणां स्वतः निरोधो भवति। तस्य सम्पूर्णशरीरम् अग्निमयं भवति। कीदशृ ोऽपि रोगः न भवति शरीरे। योगस्य कानिचित् अड्.गानि सन्ति, तानि निरुपितानि सन्ति। तेषां पालनमपि जीवने बहु आवश्यकमस्ति तानि सन्ति–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यानसमाध्योऽष्टावड्.गानि एतानि अड्.गानि योगस्य सहायकतत्त्वानि सन्ति।

यमाः – अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।।[7] 'यम्यन्त े उपरम्यन्ते निवर्त्यन्त े हिंसादिभ्य इन्द्रियाणि यैस्त े यमाः'

अहिंसा – अहिंसायाः अथोऽस्ति–मनसा वाचा कर्मणा च कस्यापि प्राणिनः हिंसा न करणीया अर्थात् पीडनम् न।

सत्यम् – प्रत्यक्षप्रमाणेन, अनुमानप्रमाणेन, शब्दप्रमाणेन च परिनिश्चितं परहितकामनापूर्वं निष्कपटभावेन प्रियं किन्तु ययार्थं कथनं सत्यं भवति।

अस्तेयम् – चौर्यस्य अभावः। कस्यापि वस्तुनः तस्याज्ञया विना न गृहीतव्यम्।

ब्रह्मचयर्म ् – ब्रह्मचयर्स् य तात्पयर्म ् – आत्मसंयमनमस्ति। सततम ं वीयर्र क्षा कामवासनायाः परित्यागः।

अपरिग्रहः – परितः संग्रहस्य प्रयत्नं परिग्रहः, अस्य विपरीतम् आवश्यकतातः अधिकायाः ग्रहणेच्छायाः अभावः। अनासक्त

भावेन ईश्वरस्य शरणे भूत्वा स्वकीयेन पुरुषार्थेन उपलब्धैः सुख–साधनैः अन्येषां दुःखानि निवारणीयानि।

नियमाः – शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः8

भौचम् – शुद्धिः अर्थात् पवित्रता। पवित्रता द्विविधा भवति।
बाह्या आभ्यन्तरी च मनुस्मृतौ कथितमस्ति यत्
अद्भिगात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

सन्तोशः – तुष्टिः इति अर्थः, स्वपार्श्वे विद्यमानैः साधनैः पूर्णः पुरुषार्थः करणीयः। यत्किमपि प्रतिफलं प्राप्यते तेन पूर्णः सन्तुष्टः स्यात्। अप्राप्तस्य इच्छा न करणीया अर्थात् पूर्णपुरुषार्थेन ईश्वर–कृपया च यत्किमपि प्राप्तम्, तस्य तिरस्कारः न करणीयः अप्राप्तस्य तृष्णा न करणीया एव सन्तोषोऽस्ति।

तपः – सुखदुःखादीनां द्वन्द्वानां सहनम् इति अर्थः। (तपो द्वन्द्व सहनम्) अर्थात् सद्–उद्देश्यस्य सिद्धौ यानि कष्टानि, बाधाः, प्रतिकूलता च स्युः तत्सर्वं सहजतया स्वीकृत्य निरन्तरं धैर्येण स्वलक्ष्य ं प्रति वतिर्त व्य ं तपः कथ्यत।

स्वाध्यायः – 'सु–अध्ययनं स्वाध्यायः' अर्थात् उत्तमम् अध्ययनम्। ऋषिभिः प्रतिपादितानां सद्शास्त्राणां पूर्ण–श्रद्धया आस्थया सह अध्ययनं करणीयम्। उत्तमानां ग्रन्थानाम् अध्ययनेन विचारेषु संस्कारेषु च पवित्रता, दिव्यता, दृढता चायाति।

स्व–अध्ययनम् अर्थात् स्वकीयम् अध्ययनम्

ईश्वर–प्रणिधानम् – महर्षिः व्यासः कथयति यत् – तस्मिन् परमगुरौ सर्वक्रियाणामर्पणम्। परमात्मनि सर्वविधसमर्पणम्।

भगवते वयं तदेव समर्पितं कर्तुं शक्नुमः यत् शुभं दिव्यं पवित्रव्म्च स्यात्।

आसनम् – स्थिरसुखमासनम्9 – (2/47)

निश्चलतया सुखपूर्वकव्म्च यद् उपवेशनं भवति तत् आसनम् इति कथ्यत।

प्राणायामः – तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः10। आसने दढ़े सति श्वासस्य प्रश्वासस्य च गतेः विच्छेदः यथाशक्ति (स्थिरीकरणम्) प्राणायामः।

धारणा – ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।11 चित्तस्य (मनसः) शरीरस्य कस्मिंश्चित् भागे स्थापनम् एव धारणा इति कथ्यते।

अर्थात् नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मधू र्ाज्योतौ, भ्रूमध्ये, ब्रह्मरन्ध्रे, नासिकाग्रे अर्थात् कुत्रापि मनस्य निग्रहीकरणं धारणा कथ्यते।

ध्यानम् – तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।12

अर्थात् तत्र धारणायाः प्रदेशे ज्ञानस्य एकरूपता। यथा नद्यः यदा समुद्रे प्रविशन्ति तदा समुद्रेण सह एकाकार ं भवन्ति तथैव ध्यानसमये सच्चिदानन्द–परमेश्वरस्य अतिरिक्त–अन्यविषयस्य स्मरणं न करणीयम्, अपितु अन्तर्यामिणः ब्रह्मणः ज्योतिर्मये शान्तिमये च स्वरूपे मग्नः ध यानमस्ति।

समाधिः – तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।13 अहं ध्याता, अहम ् ईश्वरस्य ध्यानं करोमि यत्र इति बोधः अपि न भवति सा अवस्था समाधिः। केवलम् ईश्वरस्य आनन्दमयस्य शान्तिमयस्य स्वरूपस्य ध्यानं कुर्वन् साधकः आत्मानम् (स्वयम्) विस्मरति, यत्र भगवतः दिव्यानन्दस्य अनुभवो भवति, तदैव स्वरूप–शून्यता अस्ति।

एतेषाम् अष्टा(ानां पालनेन विना कोऽपि मानवः योगी सुखी च भवितुं न शक्नोति।

उपर्युक्तेषु वर्णितेषु अष्टा(ेषु प्राणायामैः आसनैश्च सम्पूर्ण–योगस्य सिद्धिर्भवति। प्राणायामः केवलं श्वासप्रश्वासयोः

क्रियामात्रं नास्ति अपितु वायुना सह प्राणशक्तेः जीवनीशक्तेः उत् ईश्वरीय शक्तेः ग्रहणं भवति। एषा शक्ति सर्वत्र विद्यमाना भवति। या ईश्वरः गॉड, खुदादि अस्ति सा एकैव अस्ति। प्राणायामेन प्राणशक्तिः वर्धिता भवति। शरीरस्य प्राणस्य प्रक्रिया निरन्तरं चलति। प्राणस्य कारणेन देहस्य ब्रह्माण्डस्य च सत्ताऽस्ति। प्राणिक–ऊर्जा एव अस्माकं जीवनशक्तेः रोगप्रतिरोध ाकशक्तेश्चाधारोऽस्ति। प्राणस्य सत्ताविषये कथितमस्ति अथर्ववेदे– प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।14 योग–ऋषिः रामदेवः कथयति यत् न प्राणायामात् परं तपः, न योगात् परं बलं, न योगात् परम ् औषधम्। प्राणायामस्य सिद्धे सति प्रत्याहरस्य सिद्धिः, प्रत्याहारे निरन्तरतया ध ारणायाः योग्यता आयाति तथा धारणया ध्यानस्य, ध्यानस्य सिद्धे सति समाधेः अवस्थायाः

सहज–उपलब्धिः भवति। प्राणायामेन केवलं शरीरे ऑक्सीजन एव न आगच्छति अपितु प्राणशक्तिः उत् जीवनीशक्तिः आयाति।

सर्वविधरोगाणां परिसमाप्तिस्तु योगस्य गौणपक्षोऽस्ति, मरु्य यं लक्ष्यं तु स्वरूपस्य उपलब्धिः उत् परम–सत्यस्य साक्षात्कारोऽस्ति। योगेन शारीरिक–स्वास्थ्यं, मानसिक–स्वास्थ्यम् आत्मिक–स्वास्थ्यन्तु उत्तमं भवत्येव सार्धं मानवः मानवात् महामानवो भवति। यदि विश्वस्य सर्वे जनाः योगं कुर्युः (यद्यपि बहवः जनाः कुर्वन्ति) तर्हि योगेन एकस्य शान्तस्य स्वस्थस्य, संवेदनशीलस्य समद्धृ स्य च राष्ट्रस्य विश्वस्य च निर्माणं भवेत्। अशान्तौ भयं, घृणा, तृ ष्णा, असन्तोषः, अविवेकः, क्रोधः, असंयमः समस्तवासनात्मक–भावाः उत्पद्यन्ते। प्राणायामैः ध्यानने च यदा व्यक्तेः मनः शान्त ं भविष्यति तदा समाजे राष्ट्रे विश्वे च भयं हिंसा, अपराध भ्रष्टाचारश्च समाप्ताः भविष्यन्ति। हिंसायाः अपराधस्य कामोन्मत्ततायाः वैश्वीकरणस्य विकराल–कालस्य अन्तः योगस्य वैश्विक–प्रतिष्ठापनया सम्भवोऽस्ति, अन्यथा तु महाविनाशात् कोऽपि रक्षां कर्तुं समर्थो नास्ति। अतः अस्माभिः प्रतिदिन ं योगः करणीयः।

सन्दर्भाः –

- श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 1/2
- विष्णुपुराणम्।
- भगवदग् ीता 2/48
- भगवदग् ीता 2/50
- कुमारसम्भवम् – 5/33
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 2/30
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 2/32
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 2/47
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 2/49
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 3/1
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 3/2
- पातञ्जलयोगसूत्रम् 3/3
- अथर्ववेदः 11/4/1

6.

भारतीय ज्ञान परम्परा में अध्यापक शिक्षा की भूमिका

डॉ. सरोज राय
सहायक आचार्या–शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं–नागौर राजस्थान

भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय शिक्षा नीति की विशेषता है। इसमें सभी को उर्वरायुक्त शिक्षा प्रदान करके भारत को न्यायसंगत एवं जीवंत ज्ञान से समाज विकास में योगदान देना समाहित है। पुनः एक ज्ञान महाशक्ति के रूप में भारत की पहचान बनाने तथा प्राचीन विश्व गुरु की छवि को कायम रखने में सहायक सिद्ध होगी। भारतीय होने का गर्व और गौरव भारतीय ज्ञान परम्परा से संभव हो पायेगा। भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की मूल भारत की व्यापक ज्ञान परम्परा है। जिसमें व्यापक दृष्टि और समष्टि प्रदर्शित होती है। उपवेद, वेदांग 18 विद्याएं, 64 कलाओं से परिपूर्ण है। भारतीय ज्ञान परम्परा, कोई ऐसा विषय नहीं है जो हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा में समाहित हों। शिक्षा को मात्रा से नहीं गुणात्मकता से मापा जाना चाहिए। केवल ज्ञान देना ही हमारी परम्परा नहीं है, बल्कि आत्म विकास और समग्र ज्ञान का विकास हमारा उद्देश्य रहा है। भारत, संस्कृति, संस्कृत यह तीनों शब्द मात्र शब्द नहीं अपितु प्रत्येक भारतीय के भाव है जैसे–''देवतानां प्रियं धाम तवाप्यस्ति ममापिचा'' अर्थात् यह भारत भूमि देवताओं के साथ–साथ हम सभी की अति प्रिय भूमि है। जैसे–''भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतम् संस्कृतिः तथा।'' अर्थात् भारत की दो मात्र सिरमौर पहली संस्कृत और दूसरी संस्कृति है जो एक–दूसरे के पूरक है। भारतीय ज्ञान परम्परा भाषा, राष्ट्रीय एकता, नैतिकता, अखण्डता एवं आध्यात्मिकता के महत्व को निरूपित करती है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन हेतु भारतीय ज्ञान परम्परा का ज्ञान आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों में आस्था को पुर्नजीवित करने के लिए भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग, पंच महायज्ञ, सोलह संस्कार, भारतीय आयुर्वेद पद्धति, सर्वांगीण विकास को

प्रोत्साहन देने वाली, भारतीय शिक्षा पद्धति वेद, उपनिषद, पुराण की व्यावहारिक ज्ञान परम्परा, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को सम्यक आकार देने वाली अष्टांग योग पद्धति इन सबके माध्यम से भारत को विश्व गुरु का दर्जा प्राप्त है। कोरोना काल जैसे अनुसुलझी त्रासदी के समय भारत ही नहीं बल्कि पूरा विश्व भारत की संस्कृति की उपादेयता को जाना और समझा। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पूर्णरूपेण व्यावसायिक सिद्धान्तों पर आधारित है जबकि प्राचीन ज्ञान परम्परा, नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों में भारतीय ज्ञान परम्परा का अद्वितीय ज्ञान दिया जाता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केन्द्रित है तथा विनम्रता, सच्चाई अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सम्मान जैसे मूल्यों पर बल देती है। वेदों और उपनिषदों के सिद्धान्तों का पालन करते हुए परिवार और समाज, राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों को पूरा करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने न केवल प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत को मान्यता दी है बल्कि इसके लिए प्राचीन भारत के विद्वानों जैसे–चरक, आर्यभट्ट, सुश्रुत, वराहमिहिर मैत्रेयी गार्गी आदि के शैक्षिक विचारों को प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक समाहित करने की तरफ ध्यान भी आकृष्ट किया है। संस्कारों का अपना एक वैज्ञानिक महत्व भी है क्योंकि इसकी वैज्ञनिकता को नासा ने सन् 1987 में ही संस्कृत को कम्प्यूटर के लिए सर्वोत्तम भाषा के रूप में प्रदान की, जिसका कारण संस्कृत भाषा को अंतरिक्ष में संदेश प्रेषण के लिए सबसे उत्कृष्ट माना है। इसरो (ISRO) चीफ श्रीधर सोमनाथ ने कहा कि भारतीय साहित्य संस्कृत में लिखा गया है जो भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रतीक है वह भी दार्शनिक रूप में, इस भाषा में शब्दों को लिखने का जो तरीका है वह विज्ञान के अत्यन्त समीप लेकर आता है जो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अर्थात् सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान परम्परा वैज्ञानिक प्रक्रिया है। चन्द्रयान–3 का लैंडर विक्रम भी एक संस्कृत नाम है, जिसका अर्थ है–''वीरता''।

भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद, वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण और धर्म शास्त्रों का विशेष महत्व है, जो ज्ञान–विज्ञान, कर्म और उपासना एवं अध्यात्म तथा योग आदि समस्त विषयों का मूल स्रोत है। भारतीय ज्ञान परम्परा व्यावहारिक चिनतन पर आधारित है, जो विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत–प्रोत है तथा विश्व समुदाय के प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी है।

भारत संस्कृति और संस्कृत ये तीनों शब्द मात्र शब्द नहीं, अपितु प्रत्येक भारतीय के भाव है। भारतीय परम्परा के संरक्षण के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा आवश्यक है। केवल परम्परा के बजाय ज्ञान हस्तांतरण की एक सुव्यवस्थित प्रणाली और प्रक्रिया है, क्योंकि वैदिक साहित्य वेद, उपवेद सभी भारतीय ज्ञान प्रणाली का हिस्सा है। समग्र शिक्षा के साथ–साथ बहुविषयक शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा नीति का हिस्सा है क्योंकि हमारे यहां जीवनपर्यन्त शिक्षा का महत्व रहा है। विद्यार्थियों में मानसिक सृजनात्मक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक शक्तियों का विकास

किया जाना भारतीय ज्ञान परम्परा का मुख्य उद्देश्य रहा हैं अध्यापन शिक्षा शिक्षक बनाने की प्रक्रिया पर आधारित है, जिसमें विद्यालयी अध्यापक तैयार करने पर बल दिया जाता है इसके लिए अध्यापक शिक्षा के लिए विद्यालयी सम्बद्धता आवश्यक है ताकि शिक्षा सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक बन पाए। क्योंकि भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरू का स्थान त्रिदेव से ऊपर है तथा वेदों में आचार्य को वाचस्पति, वसुपति, भूपत, ज्ञान निधि, मनुर्भव, दूरदर्शी प्रसन्नचित आदि गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक माना गया है।

बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों भारतीय ज्ञान परम्परा के अंतर्द्वंद में हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना आवश्यक है, क्योंकि समावेशी शिक्षा व्यवस्था भारतीय ज्ञान परम्परा के बिना नहीं चल ही नहीं सकती। अतः हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में भारतीय ज्ञान परम्परा का समावेशन करना अत्यन्त आवश्यक होता जा रहा है। जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियां भारतीय ज्ञान परम्परा की मजबूत नींव पर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सके।

शिक्षा व्यवस्था में किये जा रहे बुनियादी बदलाव के केन्द्र में निश्चित तौर पर शिक्षक होने चाहिए। भारतीय ज्ञान परम्परा के रूप में नयी शिक्षा नीति 2020 निश्चित तौर पर प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों को समाज के सर्वाधिक सम्माननीय और श्रेष्ठ सदस्य के रूप में पुनःस्थान देने में सहायक होगी। शिक्षा और शिक्षक ही हमारी भावी पीढ़ी को सही मायने में आकार देगी। नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परम्परा को समाहित करने से शिक्षकों को सक्षम बनाने के लिए हर संभव मार्ग प्रशस्त करने की योजना ही भारतीय ज्ञान परम्परा के माध्यम से नई शिक्षा नीति आजीविका, सम्मान, मान मर्यादा स्वायत्तता सुनिश्चित कर सकती है साथ ही गुणवत्ता नियन्त्रण और जवाबदेही भी सुनिश्चित हो सकेगी। इस नीति का उद्देश्य श्रेष्ठ नागरिक का विकास करना है जिनमें करूणा, सहानुभूति, तदनुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मकता कल्पना शक्ति, नैतिक मूल्यों का समावेश हो जिसके शिक्षक ही श्रेष्ठ विकल्प है जो परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में योगदान कर पायेगी। शिक्षकों और अभिभावकों को प्रत्येक विद्यार्थी की विशिष्ट क्षमता की स्वीकृति और पहचान करके संवेदनशील बनाने की योजना इस शिक्षा नीति के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा और शिक्षक की भूमिका भारतीय शिक्षण संस्थाओं में अपनी सत्ता कायम रखने में सशक्त होगी तथा स्वस्थ समाज का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होगी। शिक्षक प्राचीन ग्रन्थों व परम्पराओं का अध्ययन करके भारती संस्कृति को समृद्ध बनाकर भारत को सुप्तावस्था से जगाकर पुनः विश्व गुरू की पदवी प्राप्त करने में भारतीय ज्ञान परम्परा पुर्नजीवित होगी।

संदर्भ ग्रंथ–सूचीः–

- सरोज, शिव सिंह, सिंह, विद्या बिन्दु, सिंह, रमा (2017) ''भारतीय वाङ्मय में धर्म और संस्कृति'' के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- शर्मा, के.सत्या (2005) ''सांस्कृतिक विरासत व शिक्षा'' बाल भवन एंग्लो एकेडमी, उदयपुर, राजस्थान।
- पाण्डे, विशम्भरनाथ (1996) ''भारत और मानव संस्कृति'' प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।
- शर्मा, हरद्वारी लाल (1992) ''संस्कृति–विज्ञान की रूपरेखा'' मानसी प्रकाशन, मरेठ, उत्तरप्रदेश।
- श्रीवास्तव, कन्हैयालाल, चौबे झारखण्डे (1990) 'मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- शर्मा, रामगोपाल (1979) ''सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास'' पंचशील प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान।
- सिंह, सुखवीर ''भारतीय संस्कृति के मूल तत्व'' साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक, मरेठ, उत्तरप्रदेश।

7.

भारतीय मनीषा – ज्ञान, विज्ञान और विश्वकल्याण

डॉ. नीलम शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर

भारतीय मनीषा धर्म–दर्शन, ज्ञान विज्ञान के सूक्ष्म चिंतन का मूल है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्राणीमात्र के कल्याण हेतु सतत जागरुक और चिन्तनशील भारतीय मनीषा सर्वव्यापक, सर्वस्पर्शी और सर्वकल्याणकारक रही है। भारतीय मनीषियों ने समस्त ज्ञान विज्ञान का विवेचन समग्रता की दृष्टि से किया है जो सत्यं शिवं सुन्दरम् की अवधारणा पर आधारित है तथा जिससे प्राणिमात्र के जीवन का सन्तुलित एवं पूर्ण विकास संभव है। भारतीय मनीषियों ने अपनी अद्भुत विशाल प्रज्ञा एवं सूक्ष्म दृष्टि से ऐहिक और पारलौकिक दोनों ही पक्षों पर सूक्ष्म एवं गहन चिंतन से विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है । अति प्राचीन काल से ही सकल विश्व को अपनी ज्ञान प्रभा से आलोकित करके विश्व गुरु के गरिमामय आसन पर अभिषिक्त भारत की ज्ञान परम्परा अति समृद्धि रही है ।

भारतीय ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है। जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। इन मनीषियों का सम्पूर्ण चिन्तन संस्कृत वाङ्मय में सुरक्षित है जिसके अनुशीलन एवं आश्रयण से लौकिक एवं पारलौकिक लक्ष्य को प्राप्त करते हुए मानव मात्र का कल्याण संभव है।

'भारत' शब्द दो शब्दों 'भा. रत' से मिलकर बना है। 'भा' का शाब्दिक अर्थ 'प्रकाश' तथा 'रत' का अर्थ संलग्न है। अतः जो सदैव ज्ञान के प्रकाश से आलोकित है या ज्ञान की रोशनी से चमत्कृत है, वही भारत है। भारतीय संस्कृति अपने जीवन–दर्शन, मूल्यों, आदर्शों ज्ञान विज्ञान के विकास क्रम एवं मूल तत्त्वों के कारण अत्यन्त विशिष्ट है । भारतीय मनीषा ज्ञान और दर्शन के लिए विश्व प्रसिद्ध है। ज्ञान अत्यन्त पवित्र है। ज्ञान से ही सभी रहस्यों का अनावरण होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है –

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" श्रीमद्भगवद्गीता 4/38

ज्ञान का लक्ष्य सूचना पाना ही नहीं होता अपितु ज्ञान विज्ञान धर्म दर्शन में विश्व कल्याण की प्रतिभूति है। ज्ञान दर्शन का अरुणोदय काल वैदिक काल से ही भारतीय ज्ञान परम्परा लोकमंगल हितैषी रही है । जब संपूर्ण विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटक रहा था तब संपूर्ण भारत के मनीषी ऋषि उच्चतम ज्ञान का प्रसार कर रहे थे ।

सम्पूर्ण वैदिक वांग्मय में विश्व कल्याण एवं लोक कल्याण की भावना निहित है । विश्व कल्याण के लिए वेदों में कहा गया है कि विश्व बंधुत्व और विश्व कल्याण के लिए आवश्यक है परस्पर मित्रवत् रहे एवं एक दूसरे के सुख–दुःख में सहायक हों ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । यजुर्वेद 36/18

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । यजुर्वेद 36/18

समाज देश और राष्ट्र की सर्वविध समुन्नति के लिए विचारसाम्य और आपसी सामंजस्य अभीष्ट है । चारों वेदों में सामनस्य , सहृदयता एकत्व को ही विश्व कल्याण के लिए आवश्यक माना गया है–

1. सं गच्छध्वं सं वदध्वं

   सं वो मनांसि जानताम् ध ऋग्वेद 10/191/2
2. समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ध ऋग्वेद 10/191/3
3. समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति। ऋग्वेद – 10/191/4

अर्थात् हम सभी साथ मिलकर चलें । संगठित रूप से कोई बात करें और हम सभी के मन सांमनस्य युक्त हो। हमारी मन्त्रणाएँ स्वभाव, समितियाँ सभी एक विचार वाली हों। हम सभी के मन और चित्त समान हों सभी निर्णय समष्टिगत हों और सभी सह–अस्तित्व की भावना से ओत–प्रोत हों।

चारों वेदों में सुख और शान्ति के अनेक मंत्र हैं। सुप्रसिद्ध शान्तिमन्त्र में कहा गया है कि विश्व में सर्वत्र शान्ति हो । घुलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, सभी देवगण शान्त हो। ये सभी मनुष्य मात्र को शान्ति प्रदान करें। सर्वत्र शान्ति का प्रसार हो । प्रत्येक मनुस्य सुखशान्ति से रहे ।

ओइम द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः,
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतय : शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिब्रह्म शान्तिः

सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि

ओइम शान्तिः शान्तिः शान्तिः । यजुर्वेद 36/17

शान्ति मन्त्र के द्वारा स्वयं और विश्व के समस्त जीव जन्तुओं और प्राणियों के जीवन में शांति के लिए प्रार्थना की गई है ।

विश्वबन्धुत्व और विश्व कल्याण की भावना भारतीय मनीषियों की संकुचित दृष्टि के स्थान पर वसुधैव कटुम्बकम् की उदारवादी भावना से प्रेरित है । –

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम ६ हितोपदेश 1/69

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । यजुर्वेद 32/8

यहाँ सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब मानते हुए समस्त प्राणियों के प्रति कल्याण, सुख एवं आरोग्य की भावना है

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामया ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु

मा कश्चित्दुःख भाग्भवेत् ।।

यहाँ समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा में और समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा को देखने तथा सभी के साथ समभाव से रहने का उपदेश है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ओइम श्रीमद्भगवद्गीता 6/29

यही सर्वात्म बुद्धि है, जिससे सर्वभूतहित रति उत्पन्न होता है इसीलिए भारतीय चिन्तन में सभी के कल्याण की कामना है–

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु

सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु । विक्रमोर्वशीयम् 5/25

भारतीय मनीषियों ने दर्शन, व्याकरण, विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, खगोल, अर्थशास्त्र, संगीत, भाषाविज्ञान आदि विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों में कीर्तिमान की स्थापना कर मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है । बोधायन, आर्यभट्ट,चरक सुश्रुत , वराहमिहिर, कणाद, गौतम, कपिलमुनि, नागार्जुन, पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, कौटिल्य भरतमुनि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारतभूमि पर

जन्म लेकर अपनी विलक्षण मेधा से भारतीय ज्ञान परम्परा की समृद्धि से सम्पूर्ण विश्व को अतुल्य योगदान दिया है ।

भारतीय मनीषियों की लोक कल्याणकारी भावना ही दार्शनिक चिन्तन के रूप में प्रतिफलित हुई । भारतीय दर्शन का आरंभ ही विविध दुःखों और कष्टों से संत्रस्त जीवों के कल्याण के लिए हुआ है

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।

दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ओइम सांख्यकारिका 1

समस्त भारतीय दार्शनिक चिन्तन का मूल लक्ष्य परम आनन्द की प्राप्ति , आत्म तत्व का साक्षात्कार है जहां कोई दुःख, अशांति न हो। उस परम स्थिति का स्वरूप एवं उसकी प्राप्ति के लिए सभी दर्शनों में भिन्न–भिन्न मार्ग बताए गए हैं । अवैदिक दर्शन चार्वाक बौद्ध जैनदर्शन का भी लक्ष्य दुःखों से मुक्ति है । वैदिक दर्शनों में सांख्य, योग, न्याय , वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत दर्शन में क्रमश : चिन्तन का उत्कर्ष रूप मिलता है। भारतीय दर्शन मानव की समस्त जिज्ञासाओं का समुचित समाधान करता है एवं उसे परमतत्व की प्राप्ति का मार्ग बताता है । प्राचीन भारत में शिक्षा की अवधारणा भी थी– "सा विद्या या विमुक्तये," विष्णु पुराण 1/19/41

भारतीय मनुष्यों की अद्भुत धरोहर योग दर्शन एक अध्यात्म विद्या है । यह एक पूर्ण विज्ञान है और स्वस्थ जीवन जीने की शैली है । योग दर्शन जहां चेतना के उच्च स्तर को जागृत करने का माध्यम है वहीं स्वास्थ्य लाभकारी भी है । योग वह अवस्था है जिसमें अपनी आंतरिक शक्तियों को विकसित करके आनंद की प्राप्ति हो । महर्षि पतंजलि ने चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा है– "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः", योगसूत्र 1.1

जब चित्त की समस्त वृत्तियॉ अभ्यास और वैराग्य आदि साधनों से मन में लय को प्राप्त हो जाती हैं और मन दृष्टा के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है वह स्थिति योग कहलाती है। वर्तमान समय में भ्रमवस योग को आसन एवं प्राणायाम तक ही सीमित मान लिया जाता है किंतु योग दर्शन केवल आसन या प्राणायाम नहीं है। यह मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक कल्याण में सहायक है । इस योग साधना के लिए महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग का प्रतिपादन किया है। यह अष्टांग योग मनुष्य मात्र के कल्याण लिए है। वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व में योग का महत्व एवं प्रयोग अत्यधिक बढ़ गया है ।

वर्तमान संदर्भों में आयुर्वेद का महत्व अत्यधिक बढ़ा है। आश्चर्य जनक रूप से आयुर्वेद द्वारा उन रोगों की चिकित्सा सफलतापूर्वक की गई जिसे अत्याधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा भी ठीक नहीं कर पाई। योग–प्राकृतिक चिकित्सा के साथ–साथ आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों को जीवन में अपनाने की आज नितांत आवश्यकता है। नियमित योग–प्राणायाम–ध्यान को

अपनाने एवं आयुर्वेदिक जीवन शैली एवं आहार से हम सदैव स्वस्थ रह सकते हैं। कोरोना महामारी, पर्यावरण प्रदूषण की भयावहता, प्रदूषित जलवायु, अंसयमित व तनावपूर्ण जीवन शैली व तथा कथित आधुनिक जीवन में आयुर्वेद की उपादेयता और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है। एक चिकित्सा पद्धति के रूप में आयुर्वेदीय चिकित्सा विधि सर्वांगीण है। आयुर्वेद चिकित्सा का मूल आधार व्यक्ति का शारीरिक तथा मानसिक संतुलन है। दिनचर्या, ऋतुचर्या, आहार–विहार व जीवन शैली, पंचमहाभूत, त्रिदोष, शरीर शोधन के साथ साथ सरल चिकित्सा सिद्धान्तों ने आयुर्वेद को सर्वग्राह्य एवं उपादेय बना दिया है। व्यावहारिक रूप से आयुर्वेदिक औषधियों के कोई दुष्प्रभाव देखने को नहीं मिलते। महर्षि काश्यप महर्षि चरक एवं महर्षि सुश्रुत द्वारा रचित आयुर्वेद के ग्रन्थ सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रमाणिक होने के साथ–साथ आयुर्वेद के आधारस्तम्भ हैं ।

विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ ऋग्वेद है। वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान निहित है। वेदों से ही आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, वेदांगों से गणित, खगोल विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी, शिल्प विज्ञान आदि का उत्तरवर्ती विकास हुआ। बोध ायन ने शुल्वसूत्र में वृत्त एवं त्रिभुज के फल का सिद्धांत प्रतिपादित किया, जो रेखा गणित में प्रचलित पाइथागोरस प्रमेय से सादृश्य रखता है ।

आर्यभट्ट ने आर्यभट्टीयम में परिधि–व्यास–अनुपात का मूल्य निर्धारण किया जो एक स्थिरांक है, आधुनिक युग में इसे पाई च के नाम से जाना जाता है । वराह मिहिर ने बृहत्संहिता में भूगोल उल्का विज्ञान वनस्पति विज्ञान कृषि, अभियांत्रिकी, जंतु विज्ञान आदि विषयों का प्रतिपादन किया है ।

भास्कराचार्य ने गृह नक्षत्रों की गणना, ज्यामितीय एवं त्रिकोणमितीय सिद्धांतों का उल्लेख किया है। ब्रह्मगुप्त , बटेश्वर, मुंजाल, आर्यभट्ट द्वितीय, भास्कर द्वितीय एवं नीलकंठ ने अपने ग्रन्थों में गणितशास्त्र को विकसित किया।

महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में परमाणुवाद का सिद्धांत दिया । महर्षि कणाद के ही पीलुपाक सिद्धांत से आधुनिक भौतिकी में ापदमजपब जीमवतल व िहेंमे विकसित हुई हैं।

आर्यभट्ट ने पांचवीं शताब्दी में ही सर्वप्रथम प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है और तारे स्थित हैं। हजारों वर्षों पूर्व सूर्यसिद्धांत ग्रंथ में गुरुत्वाकर्षण का सविस्तार विवेचन है। भास्कराचार्य ने 1150 ईस्वी में सिद्धांत शिरोमणि में गुरुत्वाकर्षण का विवेचन किया है। बौद्धायन के शुल्वसूत्र में ज्यामिति का प्रारंभिक विकास वर्णित है। गणित में शून्य की अवध ारणा दाशमिक प्रणाली संस्कृत वाङ्मय की देन है। वाचस्पति मिश्र ने स्व ग्रंथ तात्पर्यटीका में त्रि आयामी रेखागणित का विवेचन किया है ।

आचार्य सुश्रुत की सुश्रुत संहिता शल्य चिकित्सा का प्रथम ग्रंथ है। भारत के आचार्य सुश्रुत को प्रथम शल्य चिकित्सक माना जाता है। हाल ही में चंद्रयान–3 की सफलता पर इसरो के प्रमुख एस सोमनाथ ने कहा है कि "वैमानिकी, समय की अवधारणा, ब्रह्मांड की संरचना, गणित, धातु विज्ञान और विमान आदि के वैज्ञानिक सिद्धांत सर्वप्रथम वेदों में पाए गए थे।" Hindustan Times 25/05/23

भारतीय मनीषा एवं ज्ञान विज्ञान की प्रशंसा करते हुए वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा है कि "हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं जिन्होंने हमें गिनना सिखाया जिसके बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी ।"

भारतीय मनीषियों और ऋषियों ने ज्ञान विज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षों का उद्घाटन किया है। भारत की मनीषा भारत भूमि जैसी ही विराट और विशाल है जिसमें मानव जीवन के इहलौकिक और पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों के अनन्तान्त बिंदुओं पर सूक्ष्म चिंतन किया गया है। भारतीय मनीषियों और ऋषियों ने अपनी विश्व कल्याणकारी भावना और दृष्टि से ज्ञान विज्ञान के बहुमुखी और विविध क्षेत्रों को उद्घाटित किया है जो आधुनिक काल में नवीन अन्वेषणों एवं चिन्तन का मूल स्रोत है। ऐसा कोई क्षेत्र भारतीय आचार्यों से परे नहीं रहा जो आज पूर्णतः नवीन खोज के रूप में माना जा सके। किन्तु हमारी स्थिति उस कस्तूरी मृग के समान है जिसे स्वयं की सुगन्ध का ज्ञान नहीं है । भारतीय ज्ञान सम्पदा का विदेश में व्यापक दोहन हो रहा है और वे निरन्तर प्रगति पर हैं किन्तु हम भारतीय अपने ही महान पूर्वजों, आचार्यों और ऋषियों तथा उनकी ज्ञान सम्पदा से परिचित नहीं है या उसे ही श्रेष्ठ मानते हैं जिस पर पाश्चात्य जगत् की मोहर लगी हो। हमें अपनी अद्भुत विशाल ज्ञान सम्पदा का परिचय प्राप्त करना होगा उसे जानना, समझना और संजोने की आवश्यकता है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी भारतीय ज्ञान परम्परा पर अत्यधिक बल दिया गया है। सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान, धर्म दर्शन एवं चिन्तन का मूल भारतीय मनीषा अतुल्य एवं अद्भुत है।

संदर्भ ग्रंथावलीः–

- ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, (वाचस्पतिमिश्रकृत सांख्यतत्त्वकौमुदी एवं पं. शिवनारायण शास्त्रीकृत सारबोधिनीटीकोपेत), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2001
- ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्योपेत) (1–6 भाग). अनु. रामगोविन्द त्रिवेदी, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, 1991
- कालिदास, विक्रमोर्वशीयम् व्या. परमेश्वरदीन पाण्डेय एवं अवनिकुमार पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2012
- धरणी ढुङ्गेल, योग दर्शन में स्वास्थ्य विज्ञान, ज्ञान भारती पब्लिकेशन, दिल्ली, 2017

- नारायणपण्डित, हितोपदेश, (गुरुप्रसादशास्त्रीकृत संस्कृतटीकोपेत). अनु. सीताराम शास्त्री. सम्पा. बालशास्त्री. व चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2010
- मिश्र आद्या प्रसाद , भारतीय मनीषा संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, 2006
- यजुर्वेदसंहिता (वाजसनेयिमाध्यन्दिन शुक्लयजुर्वेदसंहिता). अनु. राल्फ टी.एच ग्रिफिथ. सम्पा. सुरेन्द्रप्रताप. नाग पब्लिशर्स, दिल्ली 1990
- विष्णुपुराण. गोरखपुर : गीताप्रेस, 2001
- संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान का इतिहास, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, 2018
- श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्यसहित) (अनु०) श्रीहरिकृष्ण दास गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर, 2009

8.

भारतीय परिवार प्रणाली : सभ्यता, संस्कार और सनातन संस्कृति की पाठशाला

ओम प्रकाश सिंह
शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र, शिक्षक शिक्षा विभाग
डी0 एस0 कॉलेज अलीगढ, उ0प्र0।
(डॉ० भीम राव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा)

भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ केवल पुरातन ज्ञान को परोसना नही है। सनातन जीवन दृष्टि को युगानुकूल परिभाषा में पुनर्भाषित करते हुए आज के समय में लागू करने का नाम "भारतीय ज्ञान परंपरा है। केवल परंपरा की चर्चा करोगे तो परंररा नही हुई। परंपरा सतत चलती है,निरंतर, बिना बाधा अखंड एक पीढी से दूसरी पीढी में अत्यंत सहजता से ली और दी जाती है। परंपरा अनायास वातावरण के संस्कार से, अन्दर से मुकुलित होती है, सहज संस्कारों से चलती है। परंपरा सातत्य का नाम है। यह शाश्वत, सनातन हिन्दू धर्म अनेक वर्षो के आघातों, आक्रमणों और राजनैतिक परतंत्रता के बाद भी जीवित इसलिए है क्योंकि यहाँ के घर–घर में, गाँव–गावँ में कोटी कोटी परिवारों ने अद्वेत सिद्धांत को अपने जीवन में उतारकर परंपरा से अपने पुत्र/पुत्री के संस्कार दिया है। भारत में समाजिक मूल्यो ंऔर सनातन संस्कृति की विरासत को सहेजने में परिवार व्यवस्था ने महत्वपूर्ण व्यवस्था निभाई है। तेजी से बढ रहे भौतिकतावाद ने एकल परिवार व्यवस्था के चलन को बढावा दिया है जिससे कहीं ना कहीं इस व्यवस्था को बढावा को चोट अवश्य पहुंची है, फिर भी भारत ने अपनी परिवार व्यवस्था को सदियों बाद भी जीवित रखा हुआ है।

भारतीय मान्यताओं, परिवार मानव की प्रथम पाठशाला और माता प्रथम गुरू है। संस्कृ ति किसी भी देश और समुदाय की आत्मा होती हैं संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कार का बोध होता है जिसके सहारे वह अपने आदर्शो, जीवन मूल्यों आदि का निर्धारण होता हैं संस्कार, सुधार, परिस्कार, शुद्धि, सजावट आादि। आज के युग में सभ्यता और संस्कृति को एक दूसरे का पर्याय समझा जाने लगा है जिससे अनेक भ्रान्तियाँ पैदा हो गयी है। लेकिन वास्तव में सभ्यता और संस्कृति अलग–अलग होती हैं।

सभ्यता का सम्बंध हमारे जीवन के ढंग से होता है यथा – खान पान, रहन–सहन, बोल– चाल आदि जबकि संस्कृति का सम्बंध हमारी सोच, चिंतन और विचारधारा से होता है। संस्कृति का क्षेत्र कही अधिक व्यापक और गहन होता है। सभ्यता का अनुकरण किया जा सकता है लेकिन संस्कृति का अनुकरण नही किया जा सकता है।

सभ्यता और संस्कृति के क्रियाकलाप अलग अलग हैं और जुडे हुए भी हैं। सभ्यता में मनुष्य के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, प्रौद्यौगिकीय व दृश्य कला रूपों का प्रदर्शन होता है जो जीवन को सुखमय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभातें है। जबकि संस्कृति में कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य और मानव जीवन को सुखमय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत के पास बौद्धिक अनुसंधान एवं मूल ग्रंथों के धरोहर की एक अत्यंत समृद्ध परंपरा रही है जो सदियों पुरानी है। भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और घर्म तथा भोग और त्याग का अद्‌भुत समन्वय है।

ऋगवेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक भौतिक आध्यात्मिक और बैद्धिक मूल्यों पर केन्द्रित होकर विनम्रता, सत्यता अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा प्रणाली ज्ञान, परंपरा और प्रथाएं मानवता को प्रोत्साहित करती थी। भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जैन, काशी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा यहाँ कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे।

प्राचीन काल से ही हमारा देश उच्च मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट वैज्ञानिक परंपराओं का देश रहा है। भारत की ऐसी संस्कृति रही है कि भारत ने दुनिया को अलग–अलग भू भाग के रूप में माना ही नही है।

अयं निजः परो वेतिः गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थात् यह मेरा है, यह उसका है, ऐसी सोच संकुचित चित वाले व्यक्यिों की होती हैं इसके विपरीत उदारचित्त वाले लोगों के लिए तो सम्पूर्ण धरती ही एक कुटुम्ब (परिवार) के समान है। महाउपनिषद् के इस सिद्धांत के अनुसार सारी दुनिया को एक परिवार के रूप में मान्यता देने वाला एक मात्र देश भारत है। आज पश्चिमी सभ्यता वाले सभी देश भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपनाने और जानने पर जोर देने लगे है। भारत की परंपराओं को आज विश्व अपना रहा है।

पश्चिमी संस्कृति में परिवार का इतना विशाल और उदार रूप नही है। यह भारतीय संस्कृति में ही है जो परिवार को इतना महत्वपूर्ण माना जाता है और गोत्र के द्वारा अपने परिवार की रक्त शुद्धता की पहचान अक्षुण्ण रखी जाती है। जातीय एवं जनजातीय समाज

में ऐसा कोई भी परिवार नही मिलेगा जिसका विशिष्ट गोत्र नही होता होगा। यह पाश्चात्य संस्कृति में दिखायी नही देता। बिना परिवार के व्यक्ति का कोई अस्तित्व नही है, जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी गतिविधियाँ परिवार में ही होती हैं। विश्व के लोगों में परिवाार की महत्ता बताने के लिए प्रत्येक वर्ष 15 मई को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा "अंराष्ट्रीय परिवार दिवस" मनाने की घोषणा की है।

कोरोना महामारी ने संयुक्त परिवारों की अवधारणा को मजबूत किया है। लोगों के अनुभवों से पता चलता है कि लॉकडाउन में संयुक्त परिवारों में बिना किसी परेशानी के खुशियों का माहौल था तो वही एकल परिवारों में उदासी थी उन्हें एक एक दिन गुजारना मुश्किल हो रहा था।

निष्कर्षः

भारतीय ज्ञान परम्परा वैज्ञानिक और व्यवहारिक चिन्तन पर आधारित है जो विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत है। दुनिया भर में भरतीय परिवार भारत की महानता और यहां की बन्ध ुत्वपूर्ण सामाजिक संरचना के परिचायक रहे हैं। भारतीय संस्कृति व सभ्यता विश्व की सर्वाधि ाक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति व सभ्यता है।मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज का निर्माण परिवारों से मिलकर होता है। समाज एवं जीवन के लिए जरूरी शिक्षा, संस्कार, संस्कृ ति और सभ्यता परिवार में रहकर ही मिलती है। अर्थात् परिवार एक विद्यालय की तरह कार्य करता है, और उस परिवार के माता पिता और बडे भाई बहन एक दूसरे के गुरू होते हैं। इसलिए भारतीय परिवार प्रणाली को सभ्यता, संस्कार और सनातन संस्कृति की पाठशाला कहा जाता है।

संदर्भः–

फ्रोमः https://hi.wikipedi.org

फ्रोमः https://www.unionbankofindia.co.in

फ्रोमः https://www.bhaskar.com

फ्रोमः https://www.agniban.com

फ्रोमः https://www.hindusthansamachar.in

फ्रोमः https://www.amarujala.com.

9.

वैदिक विरासत और विज्ञान: संस्कृति, संकल्प और समाधान

धर्म पाल सिंह
(प्रवक्ता)
विवेकानन्द कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अलीगढ, उ0प्र0

संस्कृति और विज्ञान का संबंध मानव इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। संस्कृति मानव समाज की मौलिक अवधारणाओं, भावनाओं और सामाजिक संरचना का प्रतीक है। विज्ञान, तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण करता है। यह दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि संस्कृति, विज्ञान के उपलब्धियों को व्यापक रूप से अपनाती है और विज्ञान भी संस्कृति में निहित विचारधाराओं और धार्मिकता के प्रति समझ विकसित करती है।

वैदिक विचारधारा भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण और अमूल्य धरोहर है, जिसका विज्ञान के साथ अटूट संबंध है। वैदिक साहित्य में भारतीय दर्शन, जैसे कि योग, आयुर्वेद, अंक ज्योतिष, और अन्य ग्रंथ, विज्ञान और तकनीकी जगत के कई पहलुओं को पूर्वाग्रहित किया है। वैदिक विचारधारा ने प्राचीन भारतीय समृद्धि के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे न सिर्फ आध्यात्मिक विकास हुआ है, बल्कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी अद्वितीय योगदान दिया है। वैदिक विचारधारा के सिद्धांत और दर्शनों ने विज्ञान को भारतीय संदर्भ में अध्ययन करने का माध्यम प्रदान किया है और भारतीय वैज्ञानिकों को अपनी प्राचीन धरोहर को समृद्ध करने के लिए प्रेरित किया है।

यह लेख वैदिक संस्कृति की महत्वपूर्ण धारणाओं, संकल्प की महत्वता, और विज्ञान के साथ उनके समाधान के प्रति चर्चा करेगा। हम विज्ञान के माध्यम से कैसे वैदिक सिद्धांतों का अध्ययन कर सकते हैं और उन्हें आधुनिक समस्याओं के समाधान में कैसे प्रयोग कर सकते हैं।

संस्कृति और विज्ञान का संबंधः

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न विधियों, प्रविधियों, उपकरणों, रीति–रिवाजों तथा प्रथाओं को जन्म दिया है। ये सब पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। इन सब के योग को संस्कृति कहते है। दूसरे शब्दों मे, ''संस्कृति हमारे द्वारा सीखा गया वह व्यवहार है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है।"''संस्कृति किसी समूह के कार्य करने तथा विचार करने की समस्त रीतियों को कहते है।''(बोगार्डस)

किसी भी वस्तु के बारे में जानकारी ग्रहण करके उसे सही तरीकों से लागू करना एवं किसी भी वस्तु का सही अवलोकन एवं उसका विश्लेषण करना ही विज्ञान कहलाता है। ''हमारी ज्ञान अनुभूतियों की अस्त–व्यस्त विभिन्नता को तर्कपूर्ण विचार प्रणाली बनाने के प्रयास को विज्ञान कहते हैं।''(आईन्स्टीन)

संस्कृति और विज्ञान दोनों मानव समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संस्कृति, हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के मूल्य हैं और विज्ञान हमारे तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण उन्नति का प्रतीक है। संस्कृति का अध्ययन विज्ञान को हमारे समाज में समझाने में मदद करता है, जिससे हम समाज की समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए विज्ञान का सही उपयोग कर सकते हैं। संस्कृति का अध्ययन विज्ञान को मानवता के मूल मूल्यों और नैतिकता के साथ जोड़कर, एक सशक्त और सामर्थ्य समाज की नींव रखता है, जिससे समृद्धि और सामर्थ्य की दिशा में प्रगति होती है।

विज्ञान, संस्कृति के प्रति महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमारे समाज और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह नई–नई तकनीकों की खोज और उनके उपयोग से जुड़ी जानकारी प्रदान करती है, जिससे हमारी जीवनशैली में सुधार होती है। विज्ञान के माध्यम से हम नए और बेहतर उपाय ढूंढ़ते हैं, जो स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण के क्षेत्र में हमारे सामाजिक वातावरण और आर्थिक स्थिति में सुधार करते हैं। इसके अलावा विज्ञान हमारे संस्कृति के साथी रूप में काम करती है, जिससे हमारी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने में मदद मिलती है।

भारतीय संस्कृति और विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारतीय धर्म संस्कृति अपने आप में विज्ञान है। वैदिक ग्रन्थ की रचना, गहन–चिन्तन और वैज्ञानिक आधार पर की गयी है। अगर इस दृष्टिकोण से देखें तो यहां के ऋषि–मुनि बड़े वैज्ञानिक थे। प्राचीन वैदिक ग्रन्थ, शोध ग्रन्थ की कृति के रूप में स्थापित था। यही नहीं आधुनिक विज्ञान की जननी भारतीय धर्म विज्ञान ही है, जो अरब देशों से होते हुए पश्चिमी देशों तक पहुंची और वहां से आधुनिक विज्ञान का स्वरूप ग्रहण करके प्रतिष्ठित हुई। (डीआरडीओ फेमस साइंटिस्ट डॉ. अनन्त नारायण भट्ट)

भारतीय संस्कृति में तुलसी की पूजा का बहुत महत्व है। आज कैंसर एवं तमाम प्रकार की गम्भीर बीमारियों में तुलसी की बहुत उपयोगिता है। भारतीय संस्कृति में नमस्कार करने के पीछे भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, इससे न सिर्फ हम सामने वाले के मन में बसते हैं, बल्कि उंगलियों के आपसी दबाव की वजह से हमारे मस्तिष्क में संवेदनशीलता पैदा होने से स्मरण शक्ति मजबूत होती है। भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा आज की इस जीवन पद्धति के कारण बढ़ रहे संकटों के लिए रामबाण है। (डॉ. अविनाश प्रताप सिंह)

पृथ्वी गोल है हम इसे आधुनिक विज्ञान की खोज मानते हैं, जबकि वैदिक ग्रन्थ में यह उल्लेख स्पष्ट और प्रमाणिक तथ्य के साथ उपलब्ध है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा भी विश्व की उन पांच भाषाओं में से एक है। संस्कृत भाषा के उच्चारण में न केवल स्पष्टता है, बल्कि मानसिक बीमारियों का इलाज भी सम्भव है। भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं में तमाम ऐसी बातें हैं जिनका वैज्ञानिक महत्व है।(डीआरडीओ फेमस साइंटिस्ट डॉ. अनन्त नारायण भट्ट)

वैदिक विचारधारा का परिचयः

वैदिक संस्कृति का महत्व भारतीय इतिहास और संस्कृति के विकास में अत्यधिक है। यह संस्कृति भारतीय सभ्यता की मूल और आधार है और वेदों, उपनिषदों, और महाभारत जैसे प्रमुख ग्रंथों के माध्यम से आदिकाल से आज तक जीवंत है। वैदिक संस्कृति ने धार्मिकता, दर्शन, कला, और विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। यह संस्कृति आदर्श जीवन की महत्वपूर्ण मूल्यों का प्रतीक है और भारतीय सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है, जिसका महत्व आज भी बहुत अधिक है।

वैदिक विचारधारा भारतीय साहित्य और धार्मिक ग्रंथों में प्रमुख थी, और इसकी कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

वेदों का महत्व : वैदिक संस्कृति का मूल आधार वेदों पर आधारित था, जिन्हें धर्म, दान, यज्ञ, और तपस्या के माध्यम से आदर्श बनाया गया था।

ब्राह्मण ग्रंथ : इस संस्कृति के अनुसार, ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञों और धार्मिक कार्यों के विविध प्रतिष्ठान और विधियाँ दी गई थीं।

यज्ञ, और ध्यान : वैदिक संस्कृति में ध्यान और मनन का महत्व था, जिसका उदाहरण ध्यान और तपस्या में दिया गया।

गुरु–शिष्य परंपरा : वैदिक संस्कृति में गुरु–शिष्य परंपरा का महत्वपूर्ण स्थान था, जिसमें ज्ञान का स्रोत सद्गुरु ही थे।

धर्म और कर्मः इस संस्कृति में धर्म और कर्म के माध्यम से आदर्श जीवन का मार्गदर्शन किया गया था।

संतान और परंपराः पारंपरिक वैदिक विचारधारा में वंश परंपरा का महत्व था और पुराने ग्रंथों को पुनरावलोकन का भी महत्व था।

इन विशेषताओं के साथ, वैदिक संस्कृति ने भारतीय समाज में धर्म, दर्शन, कला, और साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला और भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया।

वैदिक विचारधारा और विज्ञान का संबंध विचार के साथ भारतीय संस्कृति में बहुत मजबूत था। वेदों में विज्ञान, गणित, आगमन, खगोलशास्त्र और औषधि शास्त्र जैसे विज्ञान के प्रमुख दिशाओं के बारे में ज्ञान मिलता है। यह माना गया कि ब्रह्मांड और प्राकृतिक घटनाओं के पीछे वैज्ञानिक नियम हैं। वैदिक समय में ध्यान, तपस्या, और आध्यात्मिक अध्ययन के माध्यम से विज्ञान का अध्ययन किया जाता था और यह संस्कृति, विज्ञान के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

संकल्प और समाधानः

वैदिक संस्कृति में संकल्प का महत्व अत्यधिक था। संकल्प का अर्थ है कि व्यक्ति को अपने जीवन के उद्देश्य और लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से जानने और समझने की आवश्यकता है, ताकि वह उनकी प्राप्ति के लिए संघर्ष कर सके। संकल्प की शक्ति के माध्यम से वे अपने धार्मिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समर्पित रहते थे। इसे संकल्प शक्ति के रूप में माना जाता था, जो व्यक्तियों को उनके आदर्शों और मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध करती थी, और इसके माध्यम से उन्होंने अपने जीवन को सफलता और सुख की दिशा में मार्गदर्शन पाया।

वैदिक संस्कृति के मूल सिद्धांत और समाधान भारतीय समृद्धि और आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण थे। इसमें धर्म का महत्व था, जिसमें कर्म, ध्यान, और भक्ति के माध्यम से आदर्श जीवन का मार्गदर्शन किया गया। समाज में समाजिक और आर्थिक न्याय के माध्यम से समृद्धि का सिद्धांत प्राचीन वैदिक समाज ने आगे बढ़ाया। वैदिक समय के ऋषियों और महापुरुषों ने आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार किया और समस्याओं के समाधान के लिए मार्गदर्शन प्रदान किया। इस संस्कृति का संवर्धन करने के लिए संकल्प, तपस्या, और सेवा की महत्वपूर्ण भूमिका थी, जो समस्याओं के समाधान में मदद करती थीं।

संस्कृति और विज्ञान के संयोजन के फायदे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इसका प्रमुख लाभ यह है कि विज्ञान संस्कृति के अद्वितीय अनुभवों और धार्मिक मूल्यों को समझने में मदद करता है, जिससे एक समृद्ध संस्कृति का निर्माण होता है। विज्ञान के माध्यम से हम अपने ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रंथों को विश्वास और अध्ययन के लिए और भी प्रयोगशील बना सकते हैं, जिससे विज्ञान और परंपरागत ज्ञान के संगम पर नए दरवाजे खुल सकते हैं। यह संयोजन भारतीय समृद्धि के पथ पर एक सकारात्मक कदम है, जो आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को संयुक्त करके भविष्य के लिए एक बेहतर समाज की ओर बढ़ाता है।

आधुनिक युग में वैदिक विचारधारा का महत्वः

आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी में वैदिक विचारधारा के प्रयोग से एक महत्वपूर्ण संयोजन हो रहा है। वैदिक संस्कृति में ध्यान, तपस्या, और आध्यात्मिक अनुशासन की महत्वपूर्ण भूमिका थी, जिनका उपयोग आधुनिक जीवन में स्थायित्व और मानसिक शांति के लिए किया जा रहा है। ध्यान और योग के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान हो रहे हैं। वैदिक गणित और खगोलशास्त्र के अद्वितीय तत्वों का अध्ययन आधुनिक गणित और खगोलविज्ञान में भी मदद कर रहा है। इस प्रकार, वैदिक विचारधारा के सिद्धांत आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि – ईंधन के लिए हरे पौधों को काटना पाप है और अपराधी को उचित दंड देना चाहिए।

पानी के तालाबों और उनके तटबंधों के आसपास वृक्षारोपण का उल्लेख भी धर्मग्रंथों में मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में निम्नलिखित छंदों में गाँव के तालाबों के स्वामित्व और प्रबंधन का उल्लेख है। पानी के तालाबों और पेड़ों के संबंध पर टिप्पणी करने वाले सबसे पहले विद्वान वराहमिहिर हैं जिन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ब्रहत्संहिता में जलाशयों के निर्माण के लिए विस्तृत तकनीकी निर्देशों का वर्णन किया है। किनारों पर पेड़ों की छाया के बिना, जलाशय मजबूत और आकर्षक नहीं हैं; इसलिए झीलों और तालाबों के किनारे बगीचे लगाने चाहिए।

आसपास के क्षेत्रों के निवासियों के कई लाभों के लिए इन क्षेत्रों में औषधीय और पोषण की दृष्टि से लाभकारी पेड़ लगाने की सलाह दी जाती है। इनमें अर्जुन (टर्मिनलिया अर्जुन), वात (बरगद, फाइकस बेंघालेंसिस), आम (मंगिफेरा इंडिका), पीपल (फिकस रिलिजियोसा), निचुल (नौक्लिया ओरिएंटलिस), जम्बू (साइजियम क्यूमिनी), वाचा (स्वीट फ्लैग; एकोरस कैलमस) नीप शामिल हैं। (मित्राग्यना परविफोलिया), ताल (बोरासस फ्लेबेलिफर), अशोक (सारका अशोका), मधुक (मधुका इंडिका) और बकुल (मिमुसॉप्स एलेंगी)। अस्तित्व और आर्थिक कल्याण के लिए पेड़ों की केंद्रीयता ने उनके संरक्षण की आवश्यकता पैदा की, जिसे पवित्रता की अवधारणा के माध्यम से हासिल किया गया था। हड़प्पा संस्कृति के पुरातात्विक अवशेषों से यह स्पष्ट है कि ईसा पूर्व तीसरी या चौथी सहस्राब्दी में भी पेड़ों को बहुत सम्मान दिया जाता था और उनकी पूजा की जाती थी। वैदिक ग्रंथ इस बात का स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि सर्वोत्तम उपयोग के साथ–साथ वनों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों को कैसे बनाए रखा जाए। विभिन्न रूपों में पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता प्राचीन काल से ही विकास का मुद्दा रही है। पर्यावरण को शुद्ध करने, वनस्पति के स्वस्थ विकास में मदद करने और प्राकृतिक

संसाधनों को संरक्षित करने के लिए दैनिक कार्यों के एक अभिन्न अंग के रूप में यज्ञ (अग्नि अनुष्ठान) की महान परंपरा को अपनाया गया था।

यज्ञ का विज्ञान और आज इसकी प्रासंगिकता और प्रभाव को इस पत्रिका में लेखों की अलग श्रृंखला में शामिल किया जाएगा। वैदिक शिक्षाओं के कारण ही भारतीय समाज में पृथ्वी के प्रति माँ के समान आदर का भाव व्यापक है। मजबूत और व्यावहारिक सिद्धांतों को वैदिक ग्रंथों में धार्मिक मानदंडों या सामाजिक कर्तव्यों के रूप में डिजाइन किया गया था, जो भारतीय जनता के मनोवैज्ञानिक ढांचे के अनुरूप थे ताकि समृद्ध जैव विविधता और राजसी सुंदरता के साथ प्रकृति के स्वस्थ पोषण में जनता की पूरी भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और पारिस्थितिकी तंत्र के कुशल रखरखाव के संदर्भ में निम्नलिखित इसे चित्रित करते हैं– 1. औषधीय पौधों/पेड़ों (वनौषधि) और अन्य वनस्पतियों (वनस्पति) को देवी और देवताओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और सामूहिक रूप से जंगल देवी के रूप में बुलाया जाता है।अरण्यनि, वेदों में यह बहुमूल्य संस्थाओं के रूप में इन पेड़ों और पौधों की देखभाल, पोषण और सुरक्षा को प्रोत्साहित करता है।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को अपने बहुआयामी, जीवन और वैज्ञानिक प्रबंधन दृष्टिकोण, बचपन से दिए गए विभिन्न कौशल और ज्ञान के कारण दुनिया भर में सम्मानित किया गया था। वैदिक साहित्य में उन्नत वैज्ञानिक तकनीकों का वर्णन है, जो कभी–कभी हमारी आधुनिक तकनीकी दुनिया में उपयोग की जाने वाली तकनीकों से भी अधिक परिष्कृत होती हैं। आधुनिक धातुविज्ञानी दिल्ली के 22 फुट ऊंचे लौह स्तंभ के तुलनीय गुणवत्ता वाले लोहे का उत्पादन करने में सक्षम नहीं हैं, जो प्राचीन काल से लोहे का सबसे बड़ा हाथ से गढ़ा हुआ ब्लॉक है। वैदिक ब्रह्मांड विज्ञान, ज्योतिष, अंतरिक्ष अनुसंधान, ग्रह और आकाशगंगाएँ, औषधीय विज्ञान और सर्जरी, परमाणु सिद्धांत, थर्मोडायनामिक्स, ऊर्जा अवधारणाएं, पर्यावरण प्रबंधन और कई खोजें और नवाचार वैदिक साहित्य का हिस्सा हैं।

निष्कर्षः

वैदिक विचारधारा और विज्ञान का एकत्रगमन एक महत्वपूर्ण और संगठनिक प्रक्रिया है, जिसमें पारंपरिक भारतीय ज्ञान का मूल्यांकन किया जाता है और उसे आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जांचा जाता है। वैदिक धार्मिक ग्रंथों में अनगिनत धारणाएं हैं जो आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ मिलकर समस्याओं के समाधान में मदद करती हैं। योग, ज्योतिष, अयुर्वेद और प्राकृतिक जीवनशैली के तत्व आधुनिक समय में स्वास्थ्य और विज्ञान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से हम भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को समझने और आधुनिक ज्ञान के साथ जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे नए और समृद्धिपूर्ण दिशाओं की ओर एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ा सकते हैं।

वैदिक संस्कृति ने हमें अनमोल धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान की विरासत दी है, जिसमें धारणाएं और धार्मिक मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह संस्कृति हमारे समाज के संकल्प को पोषण देती है और समाधान के लिए आध्यात्मिक दिशा प्रदान करती है। साथ ही, आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वैदिक संस्कृति के सिद्धांतों का महत्व है, जो समस्याओं के समाधान में मदद करते हैं। हम अपने धार्मिक विरासत को आधुनिक विज्ञान के साथ मिलाकर समस्याओं के समाधान की दिशा में कदम बढ़ा रहे हैं, जो हमारे समाज के विकास और सामंजस्य के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान का स्रोत है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः–

- द्विवेदी, डॉ कपिलदेव (2000), वेदों मे विज्ञान' विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, भदोही।
- गुप्ता, एम. एल. व शर्मा डी. डी. (2003) ''भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिंह, जे. पी. (2005) ''आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं परिवार का उद्विकास'', पब्लिकेशन्स हाल ऑफ़ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- मिश्र, विद्या निवास (2009) ''भारतीय संस्कृति के आधार'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- जैन, डॉ. मुकेश (2022), भारतीय ज्ञान परंपरा व शोध, पी.आर. त्रैमासिक पत्रिका, ISSN 2583.2948.
- महेन्द्र, रामचरण जी, (1999), वेद कथांक, वेदों में पर्यावरण रक्षा।

10.

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं शैक्षिक तकनीकी का प्रभाव

सनोज कुमार
रिसर्च स्कॉलर
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ विनोद कुमार कंवरिया
सह–आचार्य
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शिक्षा के माध्यम से सामान्य ज्ञान प्राप्त करने तर्क और निर्णयो की शक्ति विकसित करना है। शिक्षा के द्वारा समाज के लोगों को परिपक्व बनाया जाता है। शिक्षा को ही समाज का दर्पण कहा जाता है। शिक्षा के विवेक के माध्यम से ही खराब समय में सही दिशा में निर्णय लिए जाते हैं। शैक्षिक तकनीकी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में ज्ञान तथा कौशल को प्रदान करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। शैक्षिक तकनीकी की प्रक्रिया के माध्यम से शिक्षण सहायक सामग्री उपलब्ध करने में सहायक होती है शिक्षण में दृश्य–श्रव्य सहायक सामग्री के प्रयोग से शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं को जीवन्त, रोचक, स्थाई तथा उपयोगी बनाया जाता है। शिक्षा के विकास में शैक्षिक तकनीकी सेल के उत्पादन के रूप में प्रयोग किया जाता है। शिक्षा में तकनीक वह प्रक्रिया है, जिसके प्रयोगात्मक शिक्षण के क्षेत्र की अड़चनो को आसानी से तकनीकी विज्ञान के माध्यम से हल किया जा सकता है। शिक्षा के विकास के लिए तकनीकी विज्ञान समाज में इतना समृद्ध तथा शक्तिशाली होता जा रहा है कि इसके प्रयोग बिना इसका अध्ययन किए छात्राध्यापकों का शिक्षण संबंधी ज्ञान और प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान तथा कौशल अधूरा समझ जाते हैं। शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षा के विकास तथा क्षेत्र में पुराने अवधारणाओं में वर्तमान समय के संदर्भ के साथ अभूतपूर्व परिवर्तन करके उसे एक नवीन स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। शिक्षा वह प्रक्रम है जो किसी समाज में सदैव चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मनुष्य समाज में अपनी जन्मजात शक्तियों का विकास तथा

कला–कौशल में वृद्धि और व्यवहार में परिवर्तन करता है और इस प्रकार से समाज को सभ्य, सुसंस्कृति तथा योग्य नागरिक बनाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। शिक्षा सामाजिक सुधार के लिए व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में उपस्थित समस्याओं, कुरीतियां, गलत परंपराओं के प्रति सचेत होकर उनकी आलोचना करें और समाज में परिवर्तन करती है। शिक्षा के द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्तियों को जागरूक करके उसमें प्रगति का आधार बनती है। शिक्षा समाज की एक ऐसी मुख्य धारा है जो समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को समाज में समाहित और सक्रिय भागीदार बनाने के लिए शिक्षा ही एक मातृ माध्यम होती है।

शैक्षिक तकनीकी की विशेषता– शिक्षा से मनुष्यो के भीतर अच्छे–अच्छे विचारों तथा आइडियाओ का निर्माण करती है तथा मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रस्तुत करती है। सभ्य समाज का निर्माण करने में शिक्षा की बहुत बड़ी भूमिका और बेहतर समाज बनाने में होती है। शिक्षा के माध्यम से इंसानों में सोचने और सही तरह से कार्य करने की शक्ति का विकास होता है। शैक्षिक उद्देश्यों के द्वारा व्यावहारिक उद्देश्यों को सीखने की परिस्थितियों में परिवर्तन किया जाता है। शैक्षिक तकनीकी के माध्यम से शैक्षिक संगठनों, प्रशासन तथा प्रबन्ध की रूपरेखा प्रस्तुत करने में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा सिखाने वाले विद्यार्थियों की विशेषताओं, क्षमताओं तथा गुणो का विश्लेषण करने में मदद करती है। शैक्षिक तकनीकी के द्वारा पाठयवस्तुओं को प्रस्तुत करने की विधियों, साधनों तथा सामग्री की रचना करती है। शिक्षा हमें समाज के प्रति अपना दायित्व को पूरी तरह से निभाने के लिए प्रेरित करती है। शैक्षिक तकनीकी के विकास के फलस्वरुप शिक्षक विधियों में नयी–नयी तकनीकी का विकास हुआ है तथा इसके प्रयोग से शिक्षा पर विज्ञान तथा तकनीकी के प्रभाव को प्रदर्शित करती है।

शैक्षिक तकनीकी का समाज में महत्व– इसका सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व तथा उपयोगिता है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति लाने का कार्य इसी के माध्यम से किया जा रहा है। शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षण विधियां को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इसका महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इसके माध्यम से शिक्षण विधि के सिद्धांतों को परिवर्तित किया जा सकता है। तकनीक शिक्षा के द्वारा सीखने के सिद्धांत सरल तथा उपयोगी माने जाते हैं तथा यह सिद्धांत शिक्षण विधियों की समस्याओं को कुछ हद तक आसान बना देती है। शैक्षिक तकनीकी के माध्यम से शिक्षण की प्रक्रियाओं को अधिक उपयोगी, प्रभावशाली तथा सार्थक बनाया जा सकता है। शैक्षिक तकनीकी के द्वारा अध्यापकों के कार्य क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। शैक्षिक तकनीकी के उपयोग से अध्यापकों का दृष्टिकोण और कार्य करने का नजरिया बहुत तेजी से बदल गया है।

उद्देश्य–

1. शैक्षिक तकनीकी के द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करना उनको व्यावहारिक रूप से परिभाषित करना तथा उन्हें लिखना सिखाया जाता है।
2. शैक्षिक तकनीकी के माध्यम से सीखने की विधियों और प्रविधियों को क्रम अनुसार बदलकर अधिक आधुनिक तथा प्रभावशाली बनाया जाता है।
3. तकनीकी कला के द्वारा शिक्षण अधिगम और मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार करना और उसको विद्यार्थियों के व्यवहार के अनुसार सरल तथा उपयोगी बनाया जाता है।
4. इस विज्ञान का उद्देश्य कक्षा–कक्ष तथा शिक्षण विधियों को स्पष्ट, सरल तथा वैज्ञानिक बनाना होता है
5. तकनीकी कला से अध्यापकों के व्यवहारो को वस्तुनिष्ठ और मनोवैज्ञानिक बनाना होता है।
6. इसके माध्यम से शिक्षा, प्रशासन तथा संगठनों की समस्याओं का वैज्ञानिक तरीका से अध्ययन किया जाता है।
7. शैक्षिक तकनीकी का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन की जटिल तथा गंभीर समस्याओं का निराकरण करके समाज का विकास किया जाता है।
8. शैक्षिक तकनीकी की मदद से अध्यापक एक प्रबंधक के रूप में विद्यार्थियों के बहुत बड़े तथा दूर–दराज के समूह को कम समय व कम व्यय पर अच्छी शिक्षा प्रदान कर सकता है।
9. शैक्षिक तकनीकी से नई शिक्षा उपकरणों, विधियों और मशीनों के प्रयोग से शिक्षण को व्यवहारिक, सार्थक और प्रभावपूर्ण बनाने के क्षेत्र में कार्य किया जाता है।
10. इस प्रयोगिक विधि के माध्यम से अभिकर्मित अध्ययन द्वारा व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्याओं को हल किया जाता है तथा विद्यार्थियों में स्वयं अध्ययन करने की आदत डाली जाती है।
11. शैक्षिक तकनीकी के प्रयोग से शिक्षा में अनुसंधान एवं शोध कार्य आसानी से किये जाते हैं।
12. तकनीक विज्ञान के माध्यम से राष्ट्रीयस्तर तथा अन्तर्राष्ट्रीयस्तर पर शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है।

निष्कर्ष–

हम कह सकते हैं कि शैक्षिक तकनीकी वह तकनीक है जिसके माध्यम से शिक्षण कार्य को आसन तथा उपयोगी बनाया जा सकता है। इसके द्वारा शिक्षा को सामाजिक विकास के

लिए प्रयोग करके शिक्षा को उपयोगी बनाया जा सकता है। यह तकनीक विद्यार्थियों को स्वयं से कार्य करना तथा सीखने को बढ़ावा देती है। इस विज्ञान विधि के माध्यम से अधिगम की प्रक्रिया को अधिक सरल और सशक्त बनाती है। शिक्षा को बहुत सी सफलताओं का द्वार कहा जाता है क्योंकि कड़ी मेहनत करके विद्यार्थी कोई भी लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। शिक्षा वह शस्त्र है जो आप सभी को एक बेहतर इंसान बनाती है और विभिन्न कौशल सिखाती है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को समाज मे अपना निर्माण करने के लिए सक्षम और रुचिया पैदा करती है। शिक्षा वह विधि है जो किसी विषय के बारे में कुछ भी न जानने से शुरू होकर पूरी तरह से नई जानकारी पर आधारित होती है। शिक्षा ज्ञान का विस्तार करती है और नये ज्ञान के लिए अच्छा शक्ति जाग्रति करती है। शिक्षा से सामाजिक एवं राष्ट्रीय से एकता का भी विकास और देश का आधुनिकीकरण किया जा सकता है।

संदर्भ सूचीः–

- कुलश्रेष्ठ, डॉ. एस.पी. तथा डॉ. ए. के., शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, रीडर इन एजुकेशन, शिक्षण –प्रशिक्षण विभाग, डी.ए.वी. (पो. ग्रे.) कॉलेज, देहरादून
- सिंह, अरुण कुमार, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, पूर्ववती निर्देशक, मनोविज्ञान शोध एवं सेवा संस्थान, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- अग्रवाल, जे.सी. तथा गुप्ता, एस., शैक्षिक तकनीकी, Shipra Publications] H-O-:LG 18-19] Pankaj Central Market] Patparganj] I-P-EÛt-Delhi-110092
- शर्मा, डॉ. आर. ए. तथा चतुर्वेदी, डॉ. शिखा, शिक्षा विभाग, उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ, (उत्तर प्रदेश)
- सनोज कुमार,(2017)रू लघु शोध कॉलेज आफ एजुकेशन बिलासपुर, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुध नगर, उत्तर प्रदेश
- White W.F. (1969): Tactis for Teaching the Disadvantages

11.

योग एवं स्वास्थ्य

डॉ0 ममता रानी
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
महालक्ष्मी कॉलिज फॉर गर्ल्स, गाजियाबाद

उत्तम स्वास्थ अपने आप में एक लक्ष्य है जिसे पाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति हर सम्भव प्रयास करता है। सदैव स्वस्थ एवं निरोगी रहने की प्रवृत्ति ही मनुष्य को सुखी एवं प्रभावशाली जीवन व्यतीत करने में सहायक होती है। मनुष्य उत्तम स्वास्थ के साथ ही परिवार, समाज तथा राष्ट्र के कल्याण, आर्थिक विकास तथा उत्थान में अपना योगदान दे सकता है। इस विषय में अरस्तु का कथन बिल्कुल सही उदाहरण है कि ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास है।'' यह कथन स्वयं को स्वस्थ रखने की उपयोगिता को भी दर्शाता है। स्वयं को स्वस्थ बनाने के लिये योग को जीवन में अत्यन्त आवश्यक है जब तक व्यक्ति योग को नियमित रूप से अपनी दिनचर्या में शामिल नही करेगा तब तक वह स्वयं को कदापि स्वस्थ नहीं रख पायेगा।

स्वास्थ्य

आधुनिकता के इस युग में स्वास्थ्य केवल चर्चा का विषय बनकर रह गय है इस पर गम्भीरता से कोई क्रियात्मक कदम नहीं उठाया जा रहा है। व्यक्तिगत रूप से मनुष्य स्वास्थ्य की ओर उतना ध्यान नहीं देता जितने की आवश्यकता होती है। अस्वस्थ होने पर ही मनुष्य का ध्यान इस ओर आता है। आज के युग में स्वास्थ्य से से पहले सम्पत्ति, ज्ञान, शक्ति, सुरक्षा तथा सम्मान आदि को स्थान दिया जाता है। इसी को ध्यान में रखते हुये ही स्वास्थ्य को मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया तथा विश्व स्तर पर एक अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये ''सभी के लिये स्वास्थ्य का नारा'' भी दिया गया।

स्वस्थ मनुष्य प्रसन्नचित, साहसी, बलवान तथा कार्य में सफलता प्राप्त करने वाला होता है, इसके विपरीत अस्वस्थ व्यक्ति दुःखी, चिन्तित, आलसी, कमजोर, निष्क्रिय, समाज में होते

हुये भी उसकी कोई भागीदारी नहीं होती है। वह समाज में एक भार के रूप में होते हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का सबसे प्रथम व सर्वोपरि तथ्य स्वास्थ्य की ओर सचेत रहना है उसका प्रथम दायित्व स्वयं के प्रति यही है कि वह अपने शरीर को निरागी रखे।

योग

योग संस्कृत शब्द 'युज' से बना है जिसका अर्थ है 'मिलन'। योग के अभ्यास में 'शरीर' और 'मन' को अनुशासित या प्रशिक्षित करना शामिल है।

योग में कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण है और यह मन की जागरूक और सकारात्मक स्थिति से दैनिक मुद्दों, निरंतर चिंताओं और स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने में मदद करता है। योग के माध्यम से, व्यक्ति सचेतनता विकसित करता है, मस्तिष्क की शक्ति में सुधार करता है, ठीक होना शुरू करता है, मानसिक और भावनात्मक रुकावटों को खोलता है, शरीर को गति देता है और लचीलेपन को प्रोत्साहित करता है, श्वास में सुधार होता है।

योग न केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि यह रिश्तों को बेहतर बनाने में भी मदद करता है क्योंकि यह व्यक्ति को अधिक दयालु, जागरूक, दयालु और शांत बनाता है। यह सद्भाव पैदा करता है और एक–दूसरे के बीच प्यार बढ़ाता है।

योग के नियमित अभ्यास से व्यक्ति अपनी भावनाओं पर बेहतर नियंत्रण विकसित करना शुरू कर देता है और एक अनुशासित और खुशहाल जीवन जीता है। योग शक्ति और सहनशक्ति में सुधार करता है, मांसपेशियों को टोन करता है, प्रतिरक्षा बनाता है और व्यक्ति को योगिक जीवन जीना सिखाता है।

एक अभ्यास के रूप में योग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, विकास और उपचार के लिए कई लाभ प्रदान करता है। योग जोड़ों के दर्द और मांसपेशियों या पीठ के दर्द को कम करने में अद्भुत काम करता है। यह रक्तचाप के स्तर को कम करने में मदद करता है, मस्तिष्क की कार्यक्षमता, हृदय की कार्यप्रणाली और फेफड़ों की क्षमता, मांसपेशियों की ताकत, संतुलन और लचीलेपन और भी बहुत कुछ में सुधार करता है।

यह पूर्णतः निश्चित है कि जब भी हम प्रकृति के नियमों की अवहेलना करते हैं तो उसका परिणाम हमें किसी भी आपदा, महामारी या उच्च किसी प्रकार से भुगतना होता है। भौतिकवाद के इस युग में हम सभी के लिये यह समझ लेना अति आवश्यक है कि आज का समाज एक तरफ अभूतपूर्व वैभव तथा भौतिक सुख तथा दुःखों से क्षणिक निवृत्ति प्राप्त किये हुये है तो वहीं मनुष्य का जीवन अविवेकशील बुद्धि के कारण कष्टकारक हो गया है उसके शरीर को विभिन्न रोगों ने अपना स्थायी निवास बना लिया है जैसे– अनिद्रा, उच्च रक्तचाप

तथा हृदय रोग आदि। इन सभी रोगी को अपने शरीर से स्थायी रूप से दूर करने का एकमात्र उपचार योग द्वारा सम्भव है।

योग एक तकनीक है जिसके द्वारा मनुष्य एक उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकता है। स्वास्थ्य का तात्पर्य स्वः में स्थित हो जाना है जो कि योग के द्वारा ही सम्भव है। योग को लेकर मानव जाति में विभिन्न प्रकार के भ्रम की स्थिति बनी हुई है। योग केवल विभिन्न आसनों व श्वास के नियंत्रण की क्रिया तक ही सीमित नहीं है यह एक स्व–चेतना व स्व–अनुभूति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण जाति का कल्याण हो सकता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसको अपनाकर मनुष्य को जीवन की गुणवत्ता का ज्ञान होता है तथा उसे आत्मबोध की प्राप्ति होती है।

योग व स्वास्थ्य के मध्य पारस्परिक निर्भरता

योग तथा स्वास्थ्य एक दूसरे से सम्बन्धित माने गये हैं इनकी मध्य सम्बन्ध की व्याख्या भिन्न–भिन्न शब्दों में की जाती रही है। गीता के अनुसार, ''योग के अभ्यास के द्वारा ही स्वास्थ्य संवर्धन किया जा सकता है। योग एक स्थिति है जिसको प्राप्त कर लेने पर ही वास्तविकता की अनुभूति होती है।

योग को अपनाना केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानसिक दृष्टि से भी लाभकारी है। स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को भी योग द्वारा दूर किया जा सकता है। इसका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय विशेष से नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण मानव कल्याण के लिये उपयोगी है। गहरी समीक्षा करने के उपरान्त योग के तत्व अनेक संस्कृतियों में भी देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिये नमाज अदा करने के लिये की गयी मुद्रायें, कुरान की आयतों के प्रभाव, ईसाई सम्प्रदाय में सेवा और मंत्र के विचार योग से सम्बन्धित हैं। यह एक अलग बात है कि इसका सर्वाधिक विकास केवल भारतवर्ष में हुआ है। योग शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए असंख्य लाभ प्रदान करता है। जिनमें मुख्य रूप से–

1) तनाव कम करना– तनाव कई शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का एक प्रमुख कारण है। योगाभ्यास से 'कोर्टिसोल' नामक तनाव हार्मोन में कमी आती है और श्सेरोटोनिनश नामक आनंददायक हार्मोन में वृद्धि होती है। योग तनावग्रस्त तंत्रिकाओं को आराम और शांति प्रदान करता है। योग आसन, प्राणायाम और ध्यान नकारात्मक विचारों से ध्यान हटाकर वर्तमान क्षण पर केंद्रित करने में मदद करते हैं। यह अवसादग्रस्त लक्षणों और चिंता को कम करता है।

2) अनिद्रा से बचाव– योग 'मेलाटोनिन' के स्राव में मदद करता है – एक हार्मोन जो नींद लाने और अच्छी गुणवत्ता वाली नींद दिलाने में मदद करता है। योग आसन और

प्राणायाम के अभ्यास से, मन शांत हो जाता है और विश्राम की स्थिति में पहुंच जाता है जो अंततः मन और शरीर को सोने के लिए तैयार करता है।

3) एकाग्रता में वृद्धि– फोकस और एकाग्रता दो ऐसे पहलू हैं जिन्हें बनाए रखने के लिए लोगों को संघर्ष करना पड़ता है, चाहे वह काम पर हो या घर पर। मन की लगातार बकबक से ध्यान और फोकस हमेशा भटकता रहता है। मन में विचार हमेशा दौड़ते रहते हैं, एकाग्रता विभाजित हो जाती है और स्थिरता प्राप्त करना कठिन होता है। योग आसन, प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास से, व्यक्ति एक–केंद्रित फोकस विकसित करना और अपने विचारों, शब्दों और कार्यों के प्रति सचेत रहना सीखता है। जब कोई जागरूकता विकसित करता है, तो व्यक्ति सतर्क रहता है और वर्तमान में मौजूद रहता है, जिससे फोकस बढ़ता है और उत्पादकता बढ़ती है।

4) आत्मबोध का ज्ञान– डिजिटल दुनिया में, हर कोई लाइक, कमेंट और प्रशंसा के रूप में बाहरी दुनिया से मान्यता चाहता है। दूसरे लोगों की राय का हमारे बारे में हमारी धारणा पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। योग हमें खुद से प्यार करना, स्वीकार करना और सम्मान करना सिखाता है। योग आसन के अभ्यास से व्यक्ति अपनी आत्म–शक्तियों और कमजोरियों के बारे में जागरूकता विकसित करना सीखता है। यह व्यक्ति को अपने बारे में अधिक आश्वस्त बनाता है और आत्म–सम्मान बढ़ाता है।

5) शारीरिक ऊर्जा में वृद्धि– योग आसन के अभ्यास के बाद व्यक्ति को थकान महसूस नहीं होती है और न ही थकावट का अनुभव होता है। व्यक्ति निष्क्रिय से सक्रिय हो जाता है और ऊर्जावान महसूस करता है। योग व्यक्ति को अधिक सक्रिय बनाता है और आलस्य को कम करता है।

6) इंद्रियों पर नियंत्रण– योग के सबसे महत्वपूर्ण लाभों में से एक यह है कि यह क्रोध ा को नियंत्रित करने में मदद करता है और व्यक्ति को अधिक शांत और तनावमुक्त बनाता है। योग मानसिकता को व्यापक बनाता है, रुकावटों को खोलता है और व्यक्ति को अधिक सहानुभूतिपूर्ण और दूसरों की भावनाओं को समझने वाला बनाता है। इससे जागरूकता बढ़ाने में मदद मिलती है जिससे गुस्सा कम होता है और व्यक्ति किसी विशेष स्थिति के प्रति शांत और संयमित दृष्टिकोण अपनाता है। योग एक अनुभवात्मक विज्ञान है और अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को इसका नियमित अभ्यास करना पड़ता है। एक बार जब आप अभ्यास शुरू कर देंगे, तो आप सभी स्तरों पर परिवर्तन देखेंगे और समग्र विकास का अनुभव करेंगे।

निष्कर्ष

हम एक तेज–तर्रार और डिजिटलीकृत दुनिया में रह रहे हैं। सफल होने का दबाव, समय सीमा को पूरा करना, उच्च गुणवत्ता वाला काम करना और अनियमित कार्यशैली ने

लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर असर डाला है। इसके आलोक में, संतुलन बनाना, जागरूकता विकसित करना और स्वस्थ आदतों का पालन करना समय की मांग बन गया है। योग को अपने जीवन में शामिल कर कोई भी इसे हासिल कर सकता है। आम गलतफहमी के विपरीत, योग कोई धर्म नहीं बल्कि जीवन जीने का एक तरीका है। योग केवल मुद्राओं और आसनों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें प्राणायाम, क्रिया, ध्यान या ध्यान, सांस लेने का काम, दिमाग से रहना और स्वस्थ आहार का पालन करना भी शामिल है। योग उन लोगों के लिए बेहद महत्वपूर्ण है जिनका लक्ष्य मन पर काबू पाना, अपनी भावनाओं को स्वस्थ तरीके से प्रतिबद्ध करना और स्वस्थ और लचीला शरीर पाना है।

योगाभ्यास करने से अवसाद, चिंता, तनाव और अनिद्रा जैसी अनेक मानसिक समस्याओं में कमी आती है इसके विविध अभ्यासों से संतुलन, स्वास्थ्य और शरीर और मन में सहजता उत्पन्न होती है, तनाव का कैंसर, हृदय रोग, डायबिटीज ओर अन्य कई बीमारियों से सम्बन्ध ा को देखते हुए योग से तनाव का प्रबंधन न सिर्फ भावनात्मक स्थिति को बेहतर बनाने के लिये आवश्यक है बल्कि बहुत सारे रोगों का भावी बोझ भी समाप्त किया जा सकता है, इसका अभ्यास करने से अनेक भावनात्मक जटिलताएँ सुलझ सकती हैं। योग के अभ्यास से नशे की आदत समाप्त होकर स्वास्थ्य के प्रति संरक्षण का भाव विकसित होता है।

सन्दर्भ सूचीः–

- पाण्डेय, प्रो० रेवतीरमण (2005). समग्र योग, कला प्रकाशन, वाराणसी।
- सरस्वती, स्वामी दिव्यानन्द (1999). वेदों में योगविद्या योगधाम, आर्यनगर, ज्वालापुर, हरिद्वार; यौगिक शोध संस्थान, ज्वालापुर–हरिद्वार
- उपाध्याय, पद्मभूषण आचार्य बलदेव (2001). भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर वाराणसी।
- शास्त्री, डा० विजयपाल (2006), योग विज्ञान प्रदीपिका, नई दिल्ली–110059, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस।
- स्वामी गम्भीरानन्द, स्वामी विवेकानन्द साहित्य द्वितीय खण्ड ज्ञान योग, पृष्ठ 21–32
- स्वामी गम्भीरानन्द, स्वामी विवेकानन्द साहित्य कर्म योग में, पृष्ठ 14
- अरूण प्रताप सिंह, योग और स्वास्थ्य, निमित्त ई–पत्रिका।
- रीतू रानी (2015), उपनिषदों में योग का स्वरूप, मेघा, पंचम संस्करण, पृष्ठ 85–89
- डॉ0 इन्दू डुडवे (2021), स्वामी विवेकानन्द दर्शन के अनुसार योग के विभिन्न आयाम, नेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी एण्ड संस्कृत रिसर्च, खण्ड–1 (38), पृष्ठ 36–37
- प्रताप नारायण मिश्र, स्वास्थ्य और योगासन।

12.

योग और स्वास्थ्य : विरासत से विकास

डॉ0 अजिता सिंह
प्राचार्य, बी0टी0सी0 विभाग
आई. आई. एम. टी. कॉलेज, अलीगढ़

डॉ0 अनुपम कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग
आई. आई. एम. टी. कॉलेज, अलीगढ़

सर्वे भवन्तु सुखिनः सवेसन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पशयन्तु मा कश्च्दि दुःख भागभवेत्।।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। भारतीय नागरिक सर्वकल्याण की भावना रखता है। समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं तथा आदर्शों को दृष्टिगत रखते हुए युवा नागरिकों का विकास विभिन्न प्रकार के तत्वों (शिक्षा, योग, स्वास्थ्य, संस्कार, संस्कृति, कला, साहित्य और दर्शन आदि) का ज्ञान वैदिक वाड.मय प्रणाली द्वारा प्रदान किया जाये। प्राकृतिक बालक तथा प्रगतिशील एवं विकसित समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों के बीच की खाई होती है। इस खाई को पाटने का कार्य वैदिक ज्ञान द्वारा किया जा सकता है। यह ज्ञान भी शिक्षा से मिलेगा जो वैदिक वाड.मय एक भाग है। जॉन डी0वी0 ने शिक्षा का अर्थ भी– जीवन अथवा विकास बताया है। यह ज्ञान औपचारिक शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा दोनों रूप से प्राप्त होता है। **The whole of the environment is the instrument of man's education in the widest sense. But in that environment certain factors are distinguinishable as being more particularly concerned; the home, the Church, the press, The Vocation; public life, amusement and hobbies."

-Sir God Prey Thomson

भारतीय शिक्षा संस्कृति का उद्देश्य चरित्रवान व गुणवान नागरिकों का निर्माण करना जिससे वे सुन्दरता का दर्शन करके जीवन को आनन्दपूर्वक व्यतीत कर सकें। इसलिए वहाँ शिक्षा प्रणाली में बालकों के व्यक्तित्व को अधिक महत्व देते हुए उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। जिससे उनमें स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य के साथ–साथ चरित्र तथा सौन्दर्य भावना विकसित हो सके। यह तभी सम्भव है जब हमें वैदिक संस्कृति, विरासत संस्कार शिक्षा का ज्ञान होगा।

सुबह हो या शाम रोज कीजिये योग निकट ना आयेगा आपके कोई रोग।

ध्यान का बीज बोयें और मन की शान्कि का फल पायें। योग संगीत की तरह है। शरीर की लय, मन की मधुरता और आत्मा के सद्भाव मिलकर जीवन को एक सुर में पिरोते हैं। अतः आत्मा से जुड़ने के लिये योग जरूरी है। योग आत्मा से होकर आत्मा की ओर आत्म की यात्रा (यानी स्वयं से होकर, स्वयं की ओर, स्वयं की यात्रा) है। योग एक अनुशासन है। यह चित्त और वृत्तियों का निरोध है। भारतीय संस्कृति विश्व में एक ऐसी संस्कृति है। जो अपने भीतर कई सारे महत्वों को समाई हुई है। हमारे देश भारत की संस्कृति को देश के साथ–साथ विदेशों में भी अच्छा–खासा महत्व और सम्मान का स्थान प्राप्त है। इस महत्वी भारतीय संस्कृति में ऐसे कई महत्वपूर्ण और अनमोल योग छिपे हुए हैं। जिनके प्रयोग से इन्सान अपने मानसिक तथा शारीरिक विकारों सम्पूर्ण रूप से दूर कर सकता है। आज हम भारतीय संस्कृति में उपलब्ध ऐसे ही अनमोल साधन के बारे में बात करते हैं। जिसे हम सामान्य भाषा में योग (योगा) के नाम से जानते हैं। हम सभी योग का महत्व इसी बात से लगा सकते हैं, कि हमारे देश भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने लोगों को अपने जीवन का हिस्सा बनाने तथा अपने स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिये प्रेरित किया है।

योग एक महत्वपूर्ण क्रिया है, जो न सिर्फ हमें एक स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक शरीर प्रदान करता है, बल्कि हमें तमाम तरह के रोगों से दूर करता है, योग हमारी भारतीय संस्कृति का भी एक प्रमुख हिस्सा है, योग की महत्ता को बड़े–बड़े विद्वान और योग गुरुओं ने बताया है कि यह मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक तीनों रूपों से काफी महत्वपूर्ण है। योग न सिर्फ मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर की एकता को संगठित करता है। बल्कि यह मनुष्य के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने का काम करता है। योग से मनुष्य का मन शान्त रहता है। जिससे उसका ध्यान केन्द्रित करने में उसे मदद मिलती है। दरअसल योग का सच्चा सार ही हमारी जीवन शक्ति को ऊपर उठाने के आस–पास ही घूमता है। यह हमारे शरीर को मानसिक, शारीरिक दोनों तरीकों से स्वस्थ रखता है। हमारे जीवन में योग का लक्ष्य है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं से उठाकर खुद के जीवन में उच्चतम अवस्था प्राप्त करने में मदद करना है। योग से न सिर्फ हम खुद को शारीरिक रूप से स्वस्थ रख सकते हैं बल्कि इसकी सहायता से हम स्वयं को शारीरिक रूप के साथ–साथ मानसिक रूप से भी बेहतर रूप से

स्वस्थ रह सकते हैं। योग का कोई धर्म नहीं है। योग जीने की एक कला है। जिसका लक्ष्य स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास करना है। मनुष्य का अस्तित्व शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक है और योग इन तीनों की सन्तुलित विकास और बढ़ोत्तरी मदद करता है। यदि हम सभी को मानसिक रूप से भी पूर्णतः स्वस्थ होना है। तो हमें योग के महत्व को समझते हुए योगा करना होगा और सभी के लिए योगा का प्रचार–प्रसार आदि करना होगा। मानसिक स्वास्थ्य को साधने के लिए योग से बेहतर कुछ भी नहीं है। सभी बीमारियों का उपचार योग और जीवन शैली में निहित है। योग से बड़ा कोई ऐश्वर्य नहीं, योग से बड़ी कोई सफलता नहीं, योग से बड़ी कोई उपलब्धि नहीं, योग से बड़ी कोई दौलत नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में एक नये स्तर के सन्तुलन और क्षमता को प्राप्त करना ही योग है। योग वह प्रकाश है। जो एक बार जला दिया जाये। तो कभी कम नहीं होता। जितना अच्छा हम सभी अभ्यास करेंगे, वो उतनी ही उज्जवल होगी। मैं योग को बहुत प्यार करता हूँ या करती हूँ क्योंकि यह न केवल यह हमारे शरीर के लिये कसरत है। बल्कि हमारी स्वास भी है। जो अत्यधिक तनाव को मुक्त करने में मदद करता है। योग सचमुच हमें दिन की दिनचर्या के लिये तैयार करता है। इसीलिए योग से हमारी संस्कृति का विकास होगा और यही हमारी विरासत है। इसी को संरक्षण करते हुए आगे इसका प्रचार–प्रसार हम सभी को मिल करके करना चाहिए। अभ्यास चीजों को आसान बना देता है और योग के माध्यम से ज्ञान और ज्ञान के माध्यम से प्रेम आता है और प्रेम से परमानन्द की प्राप्ति होती है। यही हमारी वैदिक ज्ञान परम्परा है। जब हम सांस लेते है, भगवान से शक्ति ले रहे होते हैं। जब आप सांस छोड़ते हैं तो उस सेवा को दर्शाता है जो आप दुनिया को दे रहे हैं बाहर क्या होता है उसे आप हमेशा कन्ट्रोल नहीं कर सकते हैं, लेकिन अन्दर क्या होता है उस आप हमेशा कन्ट्रोल कर सकते हैं। योग सिर्फ कसरत नहीं है– बल्कि अपने आप पर काम करने के बारे में हैं। योग से सिर्फ रोगों, बीमारियों से छुटकारा ही नहीं मिलता बल्कि यह सबके कल्याण की गारन्टी भी देता है। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के अनुसार ''योग के भ्रमों की समाप्ति का बहुत बड़ा कारण है।'' – डेविड विलियम्स के अनुसार ''जब तक आपने अभ्यास नहीं किया हो, सिद्धान्त बेकार है। अभ्यास करने के बाद, सिद्धान्त जाहिर है।

योग मूलतः अत्यन्त सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक आधात्मिक अनुशासन है, जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य लाने पर केन्द्रित है। यह स्वस्थ जीवन जीने की एक कला और विज्ञान है। 'योग' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'युज' से हुई है, जिसका अर्थ है 'जोड़ना' या 'एकजुट होना'। 'योग शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घं' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार योग शब्द का अर्थ हुआ–समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' 'युज संयमने धातु से निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा। योगिक ग्रन्थों के अनुसार योग के अभ्यास से व्यक्तिगत चेतना का सार्वभौमिक चेतना के साथ मिलन होता है। जो मन

और शरीर, मनुष्य और प्रकृति के बीच पूर्ण सामंजस्य का संकेत देता है। व्यक्ति अस्तित्व एकता का अनुभव करता है। उसे योग में कहा जाता है, उसे योग ही कहा जाता है, जिसने मुक्ति, निर्वाण या मोक्ष नामक स्वतंत्रता की स्थिति प्राप्त कर ली है। योग का उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार है, मुक्ति की स्थिति' (मोक्ष) या स्वत्रंता (कैवल्य) की ओर ले जाने वाले सभी प्रकार के कष्टों पर काबू पाने के लिए। जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वत्रंता के साथ रहना, स्वास्थ्य और सद्भाव योग अभ्यास का मुख्य उद्देश्य होगा। योग एक आंतरिक विज्ञान को भी संदर्भित करता है। जिसमें विभिन्न तरीकों का समावेश है। जिसके माध्यम से मनुष्य इस मिलन का एहसास कर सकते हैं और अपने भाग्य पर महारत हासिल कर सकते हैं। योग, जिसे व्यापक रूप से 2700 ई0पू0 की सिन्धु घाटी की सभ्यता का अमर सांस्कृतिक परिणाम माना जाता है, ने मानवता के भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान दोनों ने खुद को साबित किया है। बुनियादी मानवीय मूल्य योग साधना की पहचान है। योग हमारे शरीर में तनाव हार्मोन को कम करता है और साथ ही एंडोर्फिन और जीएबीए (गामा–एमिनोब्यूट्रिक एसिड) जैसे लाभकारी मस्तिष्क रसायनों को बढ़ाता है। ये अच्छा महसूस कराने वाले रसायन चिंता को कम करने मूड को बेहतर बनाने में मदद करते हैं जो मनुष्य को स्वस्थ रहने में काफी सहायता मिलती है। यह एक शान्तिपूर्ण शरीर और मन को प्राप्त करने के लिये शारीरिक और मानसिक विषयों को एक साथ लाता है, तनाव और चिन्ता को प्रबन्धित करने में मदद करता है और आपको तनावमुक्त रखता है। यह लचीलेपन, मांसपेशियों की ताकत और बॉडी टोन को बढ़ाने में भी मदद करता है। यह स्वसन, ऊर्जा जीवन शक्ति में सुधार लाने या विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। योग के महत्व को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन का संविधान 7 अप्रैल 1948 को लागू हुआ जिसे अब विश्व स्वास्थ्य दिवस के रूप में माना जाता है। आधुनिक काल में योग का विकास महर्षि महेश योगी ने, योगविद्या का प्रचार–प्रसार सम्पूर्ण विश्व में किया जो उनके द्वारा प्रतिपादित भावातीत ध्यान सम्पूर्ण विश्व में एक आन्दोलन के रूप में चला। स्वास्थ्य की दृष्टि को देखते हुए स्वस्थ जीवन के लिये सन्तुलित आहार बेहद जरूरी है। विशेषज्ञों की सलाह है कि एक दिन में कम से कम तीन सेहतमन्द पौष्टिक भोजन खायें। रात के खाने को हल्का रखने की कोशिश करें। अपने खाने में फल, सब्जियां, साबुत अनाज, दालें, प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थ शामिल होने चाहिए। मानव शरीर पांच तत्वों से बना होता है; मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और शून्य। इन्हें पंचमहाभूत या पंचतत्व भी कहा जाता है। ये सभी तत्व शरीर के सात प्रमुख चक्रों में बंटे हैं। सात चक्र और पांच तत्वों का सन्तुलन ही हमारे तन–मन को स्वस्थ रखता है। योग एक मानस शास्त्र है। जिसमे मन को संयत करना ओर पाश्विक वृत्तियों से खींचना सिखाया जाता है। जीवन की सफलता, किसी भी क्षेत्र में संयत मन पर भी निर्भर करती है। मनः संयम का अभिप्राय किसी एक समय में किसी एक ही वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना वर्तमान में आसनों की पारम्परिक संख्या प्रतीकात्मक 84 है। लेकिन विभिन्न ग्रन्थ अलग–अलग चयनों की पहचान करते हैं, कभी–कभी इनका वर्णन किये बिना

उनके नाम सूचीबद्ध करते है। भारत के कुछ हिस्सों में तिरुबलाई कृष्णमाचार्य (18 नवम्बर 1888–28 फरवरी 1989) को आधुनिक युग का जनक भी माना जाता है। ये एक योगशिक्षक, आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। आसन योग के विकास पर उनके व्यापक प्रभाव के लिये अक्सर उन्हें ''आधुनिक युग का जनक'' कहा जाता है। अतः योग साधना मानवीय चेतना का विज्ञान है, उच्च स्तरीय मनोविज्ञान है। जो हमारे जीवन के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ाता है। शरीर व मन को विश्राम देता है तथा जीवन को आरोग्यता से उच्चतर चेतना की ओर अग्रसर करता है। स्वस्थ मानव का निर्माण करता है। स्वस्थ जीवन के लिये योग विश्राम को प्रोत्साहित करे रक्तचाप को कम करके हृदयगति में सुधार, प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने और पाचन की प्रक्रिया में सुधार करके तनाव हार्मोन के शारीरिक प्रभावों को कम करता है। योग अवसाद, अस्थमा, चिन्ता और थकान के लक्षणों को कम करने में भी मदद करता है। स्वास्थ्य शब्द का अर्थ निरोगिता और आरोग्य से होता है। इस प्रकार योग और स्वास्थ्य का (शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य, भावनात्मक स्वास्थ्य) आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। योग चार प्रकार के होते हैं– राज योग, कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग। योग के द्वारा जीव को ब्रह्म से मिलन होता है। इसीलिए उसे चित्त की इस एकाग्रता को योग कहा गया है। योगदर्शन की चित्तवृत्ति निरोध की परिभाषा का समर्थन हुआ है। योग के ग्रन्थों में सबसे प्राचीन व प्रमाणित ग्रन्थ महर्षि पतंजलि कृत्य योगसूत्र के प्रथम अध्याय 'समाधिपाद' में योग को परिभाषित किया है– योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः। कुछ विद्वान पूरब से पश्चिम तक के इस सफर में योग के हमसफर रहे– स्वामी विवेकानन्द (12 जनवरी 1863 – 4 जुलाई 1902): आधुनिक योग का इतिहास शुरू होता है। 1893 में शिकागों में आयोजित धर्म संसद के साथ। 19वीं सदी के अंत में आधुनिक योग अमेरिका पहुँचा। अतः दैहिक, मानसिक, सामाजिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ होना (समस्या–विहीन होना) ही स्वास्थ्य है। किसी व्यक्ति की मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से अच्छे होने की स्थिति को ही स्वास्थ्य कहते हैं।

योगविद्या में, शिव को पहले योगी या आदियोगी और पहले गुरु या आदिगुरु के रूप में देखा जा सकता है। कई हजार साल पहले, हिमालय में कांतिसरोवर झील के तट पर, आदियोगी ने अपना गहन ज्ञान पौराणिक 'सप्तऋषियों' या 'सात ऋषियों' में डाला। ऋषियों ने इस शक्तिशाली योग विज्ञान को एशिया, मध्य सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पहुँचाया पूर्वी, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका। आधुनिक विद्वानों ने दुनियाभर में प्राचीन संस्कृतियों के बीच पाये जाने वाले करीबी समानताओं पर गौर किया है और आश्चर्यचकित है। हालांकि, यह भारत में था कि युग प्रणाली को अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति मिली। अगस्त्य, सप्तऋषि जिन्होंने यात्रा की थी भारतीय उपमहाद्वीप ने इस संस्कृति को मूल योगिक जीवन शैली के आधार पर तैयार किया है। योगिक उद्देश्यों और योग साधना करने वाली आकृतियों के साथ सिन्धु घाटी सभ्यता की कई मौहरे और जीवास्म अवशेष भारत में योग की उपस्थिति

का संकेत देते हैं। अवशेषों की संख्या प्राचीन भारत में योग की उपस्थिति का सुझाव देती है और देवी माँ की मूर्तियों के चिन्ह, मौहरें तंत्रयोग के सूचक हैं। योग की उपस्थिति योग परम्पराओं, सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक और उपनिषदिक विरासत, बौद्ध और जैन परम्पराओं, दर्शन, महाभारत और रामायण के महाकाव्यों, शैवों की आस्तिक परम्पराओं, वैष्णवों और तांत्रिक परम्पराओं में उपलब्ध है। जब योग का अभ्यास गुरु के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में किया जाता है और इसके आध्यात्मिक मूल्य को विशेष महत्व दिया जाता था। वैदिक काल में सूर्य को सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। इसी प्रभाव के कारण 'सूर्य नमस्कार' की प्रथा का अविष्कार बाद में हुआ होगा। महान ऋषि महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्रों के माध्यम से योग की तत्कालीन मौजूदा प्रथाओं, इसके अर्थ, सिद्धान्त, स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव और इससे सम्बन्धित ज्ञान को व्यवस्थित और संहिताबद्ध किया और साहित्य के माध्यम से इस क्षेत्र के संरक्षण और विकास के लिये बहुत बड़ा योगदान दिया। भगवत गीता योगसूत्र आदि पर व्यास की टिप्पणियाँ अस्तित्व में आयीं हैं। भारत के दो महान धार्मिक शिक्षकों – महावीर स्वामी और बुद्ध को समर्पित की जा सकती हैं। पांच महान वृत्तों की अवधारणा– महावीर द्वारा पंच महाव्रत– बुद्ध द्वारा अष्टांगिक मार्ग – को योग साधना की प्रारम्भिक प्रवृत्ति के रूप में माना जा सकता है। आज भी लोग गीता में योग की बतायी गयी विधियों का पालन करके शान्ति पाते हैं। व्यास कृत योग सूत्र पर अत्यन्त महत्वपूर्ण भाष्य भी लिखा गया था। महान आचार्यत्रय–आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य–की शिक्षाएँ प्रमुख थीं। जिसमें सूरदास, तुलसीदास, पुरंदरदास, मीराबाई की शिक्षाओं का महान योगदान है। हठयोग परम्परा के नाथ योगी जैसे–मत्स्येंद्रनाथ, गोरक्षनाथ, कौरंगीनाथ, आत्माराम सूरी, घेरंडा आदि।

1700 – 1900 के बीच में जिन महान योगाचार्यों–रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, परमहंस योगानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि ने राजयोग के विकास में योगदान दिया। इस समय वेदान्त, भक्ति योग, नाथयोग या हठयोग फला–फूला।

वर्तमान में हर किसी को स्वास्थ्य के सरंक्षण, रख–रखाव और संवर्धन के लिए योग प्रथाओं के बारे में विश्वास है। स्वामी शिवानंद, श्री टी.कृष्णमाचार्य, स्वामी कुवलयानंद, श्री योगेन्द्र, स्वामी राम, श्री महर्षि अरविन्द, महर्षि महेश योगी, आचार्य रजनीश, पट्टाभिजोइस, बीकेएस, योगाचार्य डॉ0 दिनेश कुमार (विट्स प्लानी राजस्थान) जैसी महान हस्तियों की शिक्षाओं से योग पूरी दुनिया में फैल गया है।

योग किसी विशेष धर्म, विश्वास प्रणाली या समुदाय का पालन नहीं करता है; इसे हमेशा आंतरिक कल्याण की की तकनीक के रूप में देखा गया है। जो कोई भी संलग्नता के साथ अभ्यास करता है, वह इसके लाभों को प्राप्त करता है। भले ही उसकी आस्था, जातीयता या संस्कृति कुछ भी हो। योग के पारम्परिक स्कूलः योग के ये विभिन्न दर्शन, परम्पराएँ, वंश और गुरु शिष्य परम्पराएँ योग के विभिन्न पारम्परिक स्कूलों के उद्भव का कारण बनती हैं। ज्ञान–योग, भक्ति–योग, कर्म–योग, ध्यान–योग, पतंजलि–योग, कुंडलिनी–योग, हठ–योग,

मंत्र–योग, लय–योग, राज–योग, जैन–योग, बौद्ध–योग आदि। स्कूलों के अपने सिद्धान्त और अभ्यास हैं। जो योग के अन्तिम उद्देश्यों की ओर ले जाते हैं। स्वास्थ्य और कल्याण के लिये योग अभ्यासः व्यापक रूप से प्रचलित योग साधना (अभ्यास) हैंः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि या संगम, बंध और मुद्रा, षट–कर्म, युक्ता–आहार, युक्त कर्म, मंत्र जप आदि। वीकेएस अयंगर योग की शैली के संस्थापक थे जिसे ''अयंगर योग'' के नाम से जाना जाता है और उन्हें दुनिया के अग्रणी योग शिक्षकों में से एक माना जाता है। योग के अनुसार गुरु के निर्देशन में काम करना अति आवश्यक है।

वर्तमान समय में, योगशिक्षा कई प्रतिष्ठित योग संस्थानों, योग महाविद्यालयों, योग विश्वविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में योग विभागों, प्राकृतिक चिकित्सा महाविद्यालयों और निजी ट्रस्टों और समाजों द्वारा प्रदान की जा रही है। अस्पतालों, औषधालयों, चिकित्सा संस्थानों और चिकित्सीय प्रतिष्ठानों में कई योग क्लीनिक, योग थैरेपी और प्रशिक्षण केन्द्र, योग की निवारक स्वास्थ्य देखभाल इकाइयां, योग अनुसंधान केन्द्र आदि स्थापित किये गए हैं। योग की भूमि भारत में विभिन्न सामाजिक रीति–रिवाज और रीति–रिवाज पारिस्थितिक संतुलन के प्रति प्रेम, विचार की अन्य प्रणालियों के प्रति सहिष्णुता और सभी रचनाओं के प्रति दयालु दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। सभी रंगों और रंगों की योग साधना को सार्थक जीवन और जीने के लिए रामबाण माना जाता है। व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह के व्यापक स्वास्थ्य की ओर इसका उन्मुखीकरण, इसे सभी धर्मों, नस्लों और राष्ट्रीयताओं के लोगों के लिए एक योग्य अभ्यास बनाता है।

2008 में, यूटा विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने कार्यात्मक चुंबकीय अनुनाद इमेजिंग (एमआरआई) द्वारा नियंत्रण विषयों और योग अभ्यासकर्ताओं के बीच दिखाया कि योग अभ्यासकर्ता में एमआरआई के दौरान दर्द सहनशीलता अधिक थी और दर्द से सम्बन्धित मस्तिष्क गतिविधि कम थी। अध्ययन दर्द प्रतिक्रियाओ और सम्बन्धित तनाव को विनियमित करने में योग के महत्व को दर्शाता है। यदि वजन और मोटापा, मधुमेय, उच्च रक्तचा, स्केमिक हृदय रोग को दूर करना हो तो योग को सहायक पाया गया है। किसी योग विशेषज्ञ द्वारा प्रतिदिन सुबह एक घण्टे लगातार तीन महीनों तक योगासन और प्राणायाम के प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप शरीर के वजन, बॉडी मास इंडेक्स और कमर कूल्हे के अनुपात में कमी आयी। इस प्रकार अनेक प्रकार के योगों द्वारा कई प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है।

निष्कर्षः

रूप में कह सकते हैं कि दुनियाभर में लाखों–करोड़ों लोग योग के अभ्यास से लाभान्वित हुए हैं, अपने आप को उन्होंने स्वस्थ किया है। जिसे प्राचीन काल से प्रतिष्ठित योग गुरुओं द्वारा संरक्षित और प्रसारित किया गया है। योग का अभ्यास फल–फूल रहा है और हर दिन और अधिक जीवन्त होता जा रहा है। योग से ही हम आत्मप्रशिक्षण करते हैं। जिससे निरन्तर आत्मनिरीक्षण और धर्म–ग्रन्थों का स्वाध्याय व्यक्ति को बेहतर बनाने में मदद करेगा।

कर्म के फल को ईश्वर प्राणीधान को समर्पित करने का अभ्यास विनम्रता और सेवा की भावना विकसित करने में मदद करता है। योग का अभ्यास स्वास्थ्य के सभी आयामों, यानि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक, क्रियात्मक, चारित्रिक और आध्यात्मिक के लिए फायदेमंद है और साथ ही प्रकृति के साथ सद्भाव को बढ़ावा देता है और पर्यावरण के संरक्षण में मदद करता है। प्रेम, सहयोग, संस्कार, संस्कृति, योग, शिक्षा, दर्शन, समर्पण, विरासत का सरंक्षण, विकास, प्रसार, विविधता में एकता आदि को वैदिक वांड.मय के अध्ययन के द्वारा जनकल्याण में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना जाग्रत करता है। इसीलिए योग और स्वास्थ्य से ही हमारी विरासत का विकास होगा। जिससे हमारा देश फिर से विश्वगुरु कहलायेगा। गौतम बुद्ध के अनुसार ''हर व्यक्ति अपना स्वास्थ्य खुद ही बनाता है। स्वस्थ शरीर ही हमारे लिए सबसे बड़ा उपहार है। स्वास्थ्य ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है।''

आहार से व्यवहार, पानी से वाणी और योग स्वस्थ शरीर निर्धारित होता है, स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, वफादारी सबसे बड़ा सम्बन्ध है, एहसास हमें तब होता है जब हम अपने स्वास्थ्य को खो देते हैं, अच्छे स्वास्थ्य को हम खरीद नहीं सकते पर यह एक अत्यन्त मूल्यवान बचत खाता हो सकता है और यह तभी होगा जब हम नियमित रूप से योग करेंगे अतः योग और स्वास्थ्य में बहुत बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है जो भारत के विकास में योगदान के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, एन0आर0 स्वरूप सक्सेना, संजय कुमार, आर लाल बुक डिपो।
- गॉर्डन, लोरेंजो ए., मॉरिसन, एरोल वाई., मैकग्रोडर, डोनोवन ए., (2008), '' टाइप 2 मधुमेह के रोगियों में लिपिड प्रोफाइल और ऑक्सीडेटिव तनाव संकेतक पर व्यायाम थेरेपी का प्रभाव'', बीएमसी वैकल्पिक चिकित्सा।
- हठ योग प्रदीपिका (2013), पंचम सिंह (सं.) देव पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली एलेनोर, सी. (1989)।
- डॉ0 ईश्वर वी, बसवरद्दी मोरारजी देसाई (2015)।
- योग कैसे काम करता हैः दैहिक योग का परिचय। फ्रीपर्सन प्रेस. जॉर्ज, एफ. और स्टीफन, बी. (1993)।
- https://blog.mygov.in > editorial
- https://testbook.com > question-ans...
- https://www.mpgkpdf.com > 2022/05
- https://hi.m.wikipedia.org> wiki

13.

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति जल एवं पर्यावरण संरक्षण

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह तोमर
असिस्टेंट प्रोफेसर
विवेकानंद कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

हेमलता शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
विवेकानंद कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, अलीगढ, उत्तर प्रदेश

सृष्टि में केवल जन ही नहीं है उसमें जल जंगल जमीन और जानवर भी है। भारतीय चिंतकों में इन सभी की रक्षा की चिंता की है लेकिन वैदिक प्रार्थनाओं से ध्यान में आता है कि– भारतीय जीवन शैली अपने मूल स्वरूप में प्रकृति का पर्यावरण से हमेशा सुसंगत रही है।

यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को देव तुल्य स्थान प्राप्त है भारतीय संस्कृति में वेदों पुराणों धार्मिक ग्रंथो को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आदिकाल से ही सूर्य, चंद्रमा, धरती, नदी, पर्वत, पीपल, गाय, बैल आदि की पूजा की विधान भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। पर्यावरण मनुष्य की जीवन दायिनी सत्ता है। हमारी संस्कृति में प्राकृतिक पर्यावरण की चिंता के साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया गया है। हमारे मूलभूत संस्कारों में धर्म में ऐसे पवित्र विचारों को शामिल कर दिया गया है कि हम स्वतः मानसिक वाचिक एवं कामिक सुचिता का व्यवहार करें। प्रकृति तत्वों के साथ संबंध स्थापित करके उन्हें अपने व्यक्तित्व के साथ पूरी तरह जोड़ लिया है। पर्यावरण का अर्थ है– जीवन को संरक्षण प्रदान करने वाला कवच अर्थात हमारे चारों ओर का आवरण। पर्यावरण संरक्षण से अभिप्राय है कि हम चारों ओर के आवरण को संरक्षित करें तथा उसे अनुकूल बनाएं। पर्यावरण और प्राणी एक दूसरे पर आश्रित है। यही कारण है कि भारतीय चिंतन परंपरा में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना यहां मानव जाति का ज्ञात इतिहास है।

वर्तमान समय में दुनिया की सबसे भयानक स्थितियों में एक है पर्यावरण प्रदूषण जिस धरती ने मनुष्य को जन्म दिया वही मनुष्य आज इसे नष्ट करने को आतुर है। जिससे यह समस्या आज संपूर्ण विश्व की समस्या है प्राचीन भारतीय ऋषि–मुनियो ने इस समस्या को पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया था। लेकिन उस समय प्रदूषण की समस्या नहीं थी तथापि उन्हें आने वाले समय का आभास अवश्य हो गया था। भारतीय ऋषि मुनियों में सृष्टि के प्रारंभ से ही प्राणीमात्र के कल्याणार्थ स्वत जागरूक एवं चिंतनशील रही है। यही हमारी भारतीय संस्कृति का मूल उद्घोष एवं आदर्श वाक्य भी है–

सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वेसंतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मां कश्चिद दुःख भाग भवेत।।

अर्थात यहां सभी सुखी एवं स्वस्थ हो यही कामना की गई है सामान्यतः पर्यावरण के अंतर्गत प्रकृति जन्य सभी तत्व आकाश, जल, वायु, अग्नि, ऋतुएं, पर्वत, नदियाँ, सरोवर, वृक्ष, वनस्पति, जीव–जंतु, ग्रह–नक्षत्र, दिशाएँ, एक तरह से अखिल पूर्ण ब्रह्मांड ही सम्मिलित हो जाता है।

संस्कृति शब्द में पर्यावरण को स्पष्ट करते हुए बताया कि संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग कृ धातु तिन प्रत्यय के योग से बना है जिसका संपूर्ण अर्थ है सुधारना सुंदर बनाना पूर्व बनाना। "परि" एवं "आ" उपसर्ग पूर्वक धातु ल्यूटन (अन्) के योग से निष्पन पर्यावरण शब्द का अर्थ है परित आवरण अर्थात चारों ओर से व्याप्त आवरण यह वह वातावरण है जिसे हम प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग करते हैं। आवरण का शाब्दिक अर्थ है ढकना, छिपना, घेरना, चारदीवारी आदि।

परिभाषा

डगलस एवं रोमन हालैण्ड के अनुसार–''पर्यावरण उन सभी बाहरी शक्तियों एव प्रभावों का वर्णन करता है, जो प्राणी जगत के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, विकास और परिपक्वता को प्रभावित करता है।''

रॉस के अनुसार– ''पर्यावरण एक वाह्य शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।''

वुडवर्थ के अनुसार– ''पर्यावरण शब्द का अभिप्राय उन सभी बाहरी शक्तियों और तत्वों से है जो व्यक्ति को आजीवन प्रभावित करते हैं।''

फिटिंग के अनुसार– ''पर्यावरण किसी जीवधारी को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों का योग है।''

भारतीय चिन्तन परम्परा में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा कूट–कूट कर भरी पड़ी है। हमारे ऋषि–मुनि चूँकि प्रकृति के सम्पर्क में एवं संरक्षण में रहते थे, इसलिए प्रकृति के संरक्षण हेतु सभी विधानों का प्राविधान किया गया है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में जल को भी देवता मानते हुए नदियों को जीवनदायिनी कहकर सम्बोधित किया गया है। यही नहीं, नदियों, तालाबों एवं पोखरों में मल–मूत्र विसर्जन पर भी रोक लगायी गयी है। जैसा कि मनुस्मृति में भी कहा गया है कि–

'नात्सु मूत्रं पुरीषं वाष्टोवनं समुरसृजेत।
अमेध्यलिप्तभव्यद्वा लोहिवं वा विषाणि वा।।'

अर्थात जल में मूल–मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन न करें। यही नहीं वैदिक ऋषियों द्वारा जल की प्राप्ति के लिए भी कामना की गयी है, जैसा कि अथर्ववेद के भूमि सूक्त (12/1/30) में उल्लेख किया गया है कि–

'शुद्धा व आपस्तन्वे क्षरन्तु.....।'

अर्थात हमारे शरीर में शुद्ध जल प्रवाहित होता रहे। हमारी नदियों के विषय में बताया गया कि सिर्फ उसके दर्शन से ही मुक्ति मिल जाती है। जैसे–

'गंगे, तव दर्शनात मुक्तिः।'

भारतीय दर्शन में जल को इतनी महत्ता प्रदान की गयी है कि जल स्रोतों में प्रातः काल स्नान करने से पहले कंकड़ी मारकर सो रही गंगा को जगाया जाता है, तब उसमें स्नान किया जाता है और स्नान करने से पूर्व उनका चरण स्पर्श किया जाता है। इस तरह प्रत्येक जल स्रोत में गंगा का स्वरूप देखा जाता है। यही नहीं, सभी प्रकार के जल स्रोतों को देवता मानकर पूजा करने का विधान हमारी भारतीय संस्कृति में निहित है, जिससे इन जल स्रोतों का संरक्षण किया जा सके।

हमारे जितने पर्व, त्यौहार, रीति–रिवाज एवं परम्पराएं हैं, उन सभी में जल संरक्षण की अवधारणा छिपी हुई है। इनसे सम्बन्धित जो भी लोकोक्तियाँ, कहावतें, मुहावरे एवं लोकगीत परम्परागत रूप से हमारे समाज में प्रचलित हैं एवं गाए जाते हैं, उन सभी में जल संरक्षण की अवधारणा परिलक्षित होती है।

हमारे भारतीय मनीषियों (ऋषि–मुनियों) द्वारा प्रकृति का भरपूर गुणगान किया गया है। उन्होंने वनों एवं वन्य जीवों का गुणगान किया है एवं उनकी महिमा का वर्णन किया है। कारण कि वे प्रकृति के बीच रहते थे, सोचते, विचारते एवं प्रकृति में ही अपनी इहलीला समाप्त कर विलीन हो जाते। यही कारण है कि वे प्रकृति को जीवनदायिनी, सुषमा एवं सम्पदा का स्रोत समझते थे। यही कारण है कि हमारी भारतीय संस्कृत अरण्य संस्कृति रही है।

भारतीय मनीषियों ने सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को ही देवता स्वरूप माना है। ऊर्जा के अजस्र स्रोत सूर्य को देवता मानते हुए ''सूर्य देवो भव'' कहा गया है। हम जानते हैं कि सूर्य के बिना इस पृथ्वी पर प्राणी जगत का अस्तित्व सम्भव नहीं है। सम्भवतः इसी तथ्य को ध्यान में रखकर हमारे मनीषियों ने ऋग्वेद में कहा है कि सूर्य से हमारा कभी भी वियोग न हो–

'नः सूर्यस्य संदृशो मा युयोधाः'।

उपनिषदों में भी सूर्य को प्राण की संज्ञा दी गयी है। जैसे–

'आदित्यो ह वै प्राणः।

सूर्य से हमें निरन्तर प्रकाश प्राप्त होता रहे और सूर्य की ऊर्जा से हमारा जीवन विकसित होता रहें, उसको ध्यान में रखते हुये हमारे पूर्वज अपने घर का द्वार पूर्व अथवा उत्तर दिशा में रखने को कहते हैं, जिससे इन दिशाओं से सूर्य का प्रकाश निरन्तर मिलता रहे। और भारतीय चिन्तन परम्परा में जल संरक्षण की अवधारणा कूट–कूट कर भरी पड़ी है। भारतीय चिन्तन परम्परा में वायु को देवता माना गया है। उपनिषदों में वायु की दैवीय शक्ति की संकल्पना का वर्णन किया गया है, जिसमे कहा गया है कि वायु ही प्राण बनकर शरीर में वास करती है। जैसे–

'वायुवै वै प्राणो भूत्वा शरीरमाविश।'

हमारे वेदों में वायु को औषधीय गुणों से युक्त माना गया है और प्रार्थना की गई है कि 'हे वायु, अपनी औषधि ले आओ और यहाँ से सभी दोषों को दूर करो, क्योंकि तुम ही सब औषधियों से युक्त हो।' जैसे–

'आ वात वाहि भेषजं विवात वाहि पदुपः।
त्वंहि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।

भारतीय चिन्तन परम्परा में वैदिक मंत्रों के माध्यम से मानव को यह शिक्षा दी गयी है कि वह पशु–पक्षियों को अपने से हेय न समझें एवं नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा प्रकृति के अन्य अंगों में देवी शक्ति का दर्शन करें। इसी दृष्टि से मानव एवं पशु–पक्षी को आश्रय प्रदान करने वाली इस पृथ्वी को माता एवं अपने को उसका पुत्र माना गया है। जैसे–

'माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्याः।'

अर्थात भूमि हमारी माता है एवं हम पृथ्वी की संतान हैं। यह पृथ्वी हमें अपना पुत्र मानकर उसी तरह निरन्तर अजस्र स्रोत के समान धन–धान्य प्रदान करती रहती है, जैसे कि गाय से दूध मिलता है। जैसे–

'सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मेदुहां,

ध्रवेत धेनुः अनवस्युरन्ती तथा

मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु में।

पृथ्वी के इस महत्व को समझ कर ही पृथ्वी को बार–बार प्रणाम किया गया है। जैसे–

नमो मात्रे पृथिव्यैः, नमो मात्रे पृथिव्यैः।

हमारे भारतीय चिन्तन परम्परा में वृक्षों को भी देवता माना गया है। भारतीय आयुर्विज्ञान के अनुसार विश्व में कोई भी वनस्पति ऐसी नहीं है जो औषधि न हो। सम्भवतः इसीलिए 'श्वेताश्वरोपनिषद' में वृक्षों को साक्षात ब्रह्म के रूप में माना गया है। जैसे–

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः।

मत्स्यपुराण में भी कहा गया है–

दशकूप समावापी दशवापी समोह्रदः।

दशह्रदः समः पुत्रो, दश पुत्रो समोवृक्षः।

अर्थात दस कुंओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाब के बराबर एक पुत्र है एवं दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।

वृक्षों के प्रति ऐसा प्रेम एवं अनुराग शायद ही किसी अन्य देश की संस्कृति एवं चिन्तन परम्परा में मिलता हो, जहाँ वृक्ष को पुत्र से भी उच्च दर्जा दिया गया है एवं पूजा की जाती है, वहाँ वृक्षों को काटने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती है। सम्भवतः इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर वृक्षों को पूजनीय एवं वंदनीय माना गया है एवं 'भामिनी विलास' में कहा गया है कि–

'धत्ते भरं कुसुमपत्रफला वली नां धर्मव्यथां।

वहाति शीत भवा रुजश्च।।

यो देहमर्ययति चान्यसुखस्य हेतोस्तस्मै।

वादाव्यगुरवे तस्ये नमोस्तु।।'

अर्थात जो वृक्ष फूल, पत्ते एवं फलों के बोझ को उठाए हुए धूप की गर्मी एवं सर्दी की पीड़ा को बर्दाश्त करता है एवं दूसरों के सुख के लिए अपना शरीर अर्पित कर देता है, उस वन्दनीय श्रेष्ठ वृक्ष को नमस्कार है। 'नृसिंह पुराण' में भी वृक्ष को ब्रह्म स्वरूप मानकर उसे आदर प्रदान किया गया है। जैसे–

एतद् ब्रह्म परं चौव ब्रह्म वृक्षस्य तस्य तव।

जातक कथाओं में तो वृक्षों को हमारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कल्पवृक्ष के रूप में कल्पना की गयी है।

सर्वकामदा वृक्षाः।

महाभारत एवं रामायण में कल्पवृक्षों का विवरण प्रस्तुत है। महाभारत के भीष्म पर्व में वृक्ष को सभी मनोरथों को पूरा करने वाला कहा गया है। जैसे–

'सर्वकामः फलाः वृक्षा।'

'अथर्ववेद' में पीपल के वृक्ष को देवसदन माना गया है–

'अश्वत्थः देवसदन।'

'विष्णु धर्म सूत्र' में कहा गया है कि प्रत्येक जन्म में लगाये गये वृक्ष अगले जन्म में संतान के रूप में प्राप्त होते हैं–

वृक्षारोपयितु वृक्षाः परलोके पुत्राः भवन्ति।

'चाणक्य नीति' में बताया गया है कि एक वृक्ष से वन उसी प्रकार सुन्दर लगता है, जिस प्रकार अकेले पुत्र से कुल। जैसे–

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगंधिना।
वासितं स्याद वन सर्व सुपुत्रेण कुलं यथा।

'वाराह पुराण' में उल्लेख आया है कि जो पीपल, नीम या बरगद का एक, अनार या नारंगी का दो, आम के पांच एवं लताओं के दस वृक्ष लगाता है, वह कभी नरक में नहीं जाता।

अश्वस्थमेकं पिचुमिन्दमेकं व्यग्ग्रेषमेकं दसुपुष्पजातीं।
द्वे–द्वे दाडिम मातुलुंगे पंचाभ्ररोपी, नरकं न याति।।

तुलसी के पौधे के बारे में कहा गया है जिस घर में तुलसी की प्रतिदिन पूजा होती है, उसके घर में यमदूत कभी नहीं आते। जैसे–

तुलसी यस्य भवने तत्यहं परिपूज्ये।
तद्गृहं नोवर्सन्ति कदाचित यमकिंकरा।।

विष्णुधर्म सूत्र, स्कंदपुराण में वृक्ष को काटने को अपराध माना गया है और उसके लिए राजा द्वारा दण्ड का विधान बनाया गया है।

वृक्षों की तरह ही पशु–पक्षियों की सुरक्षा की भावना भी भारतीय चिन्तन परम्परा में युगों–युगों से निहित है। यही कारण है कि हिंसक एवं अहिंसक तथा विषधर जीव जन्तुओं

को भी किसी न किसी देवता का वाहन बनाकर इनकी श्रेष्ठता प्रदान करते हुए इनकी सुरक्षा एवं संरक्षण का प्रावधान किया गया है। यही कारण है कि इन पशु–पक्षियों की भी पूजा का विधान बनाया गया है। गाय एवं बैल तो भारतीय संस्कृति की पहचान हैं। 'बाघ, शेर, चीता, हाथी, चूहा, गरुण, सर्प, कच्छप, हंस, उल्लू और आदि छोटे एवं बड़े हिंसक एवं अहिंसक सभी जीव–जन्तुओं का संबंध देवी देवताआं से उनके वाहन के रूप में जोड़कर उन्हें सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करने की जो उदात्त भावना भारतीय चिन्तन परम्परा में है, वह अन्यत्र कहाँ।

जैन एवं बौद्ध साहित्य में वन यात्राओं एवं वृक्ष महोत्सवों का मनोहर विवरण प्रस्तुत है, जो वन वृक्षों एवं पशु–पक्षियों के संरक्षण की उदात्त भावना से ही प्रेरित है। गौतम बुद्ध को भी पीपल के वृक्ष के नीचे ही ज्ञान प्राप्त हुआ था, तभी से उसे 'बोधिवृक्ष कहा जाता है। सुंग कुषाणकला में बोधिवृक्ष की पूजा का सुन्दर चित्रण मिलता है। भारत में वृक्ष पूजा की परम्परा की पुष्टि सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी मिलती है। सिन्धु घाटी से शप्तमुद्राओं पर वृक्ष पूजा के दृश्य चित्रित हैं। मौर्यकाल के श्रीचक्रों पर भी सघन वृक्षों से घिरी श्रीलक्ष्मी को चित्रित किया गया है। विदिशा से प्राप्त एक शिल्प पर कल्पवृक्ष का मनोहर दृश्य अंकित है, जो कोलकाता के इंडियन म्यूजियम में है। वेदिका से मंडित इस वृक्ष को 'श्रीवृक्ष' कहकर सम्बोधित किया गया है।

पर्यावरण संरक्षण में 'यज्ञ' भी मुख्य भूमिका निभाता है और भारत में 'यज्ञ' करने की परम्परा आदिकाल से ही रही है। हम जानते हैं कि 'यज्ञ' में जो हवन किया जाता है, उसमें औषधीय पदार्थों का ही प्रयोग किया जाता है, जिसका धुँआ वातावरण में व्याप्त होकर पर्यावरण को शुद्ध करने में अहम भूमिका निभाता है। इन औषधियों के साथ घी आदि के धूम वायुमण्डल को संक्रमण मुक्त करते हैं। इससे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश की शुद्धि होती है, जिससे मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। यज्ञ के दौरान आग में जो घी डाला जाता है, वह समाप्त नहीं होता, अपितु परमाणुओं के रूप में आस–पास के वातावरण में फैला जाता है। हवन में जो कुछ भी डाला जाता है, वह परमाणुओं में टूटकर सम्पूर्ण वायुमण्डल को शुद्ध कर देता है। शक्कर के धुएं में भी वायु को शुद्ध करने की क्षमता होती है। यज्ञ से वर्षा प्रदान करने वाले बादलों की भी उत्पत्ति होती है। वेदों में भी यज्ञ हवन क्रिया से व्याधि एवं प्रदूषण निवारण की स्पष्ट व्याख्या की गयी है। प्रकृति देवता की पूजा का एकमात्र माध्यम अग्निहोत्र को ही माना गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ द्वारा शुद्ध एवं स्वच्छ वातावरण का निर्माण होता है। यज्ञ से वातावरण संशोधित होता है एवं परिशोधन होता है।

आज प्राकृतिक तत्वों के दोहन एवं शोषण का आलम यह है कि जल, जंगल, जीव, जमीन एवं जीवन के लिए घोर संकट उत्पन्न हो गया है। भावी पीढ़ी के लिए भी ये प्राकृतिक

संसाधन बचेंगे या नहीं, यह सोचनीय एवं चिंतनीय बात हो गई है। इन सबके चलते निकट भविष्य में मानव सभ्यता का अंत अभी से परिलक्षित होने लगा है। प्रकृति में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है, जिसके चलते हमारी धरती पर जीवन–चक्र भी समाप्त होता नजर आ रहा है। प्रकृति में बढ़ते असंतुलन के कारण बाढ़, सूखा, भूस्खलन, मृदा अपर्दन, मरूस्थलीकरण, भूकम्प, जलवायु, सुनामी, ग्लोबल वार्मिंग एवं जलवायु परिवर्तन जैसी प्रलयंकारी प्राकृतिक आपदायें उत्पन्न होकर हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए तत्पर हैं।

प्रश्न यह उठता है कि आखिर प्रकृति को नष्ट होने से कैसे बचाया जाये? यह भी बात सत्य है कि हम विकास को रोक नहीं सकते। ऐसी स्थिति में हमें समविकास, पारिस्थितिकीय विकास एवं सतत् विकास की अवधारणा को दृष्टिगत रखते हुए विकास करना होगा, जिससे कि हमारा विकास भी हो और हमारी प्रकृति का विनाश भी न हो और इन प्राकृतिक तत्वों को विनाश से बचाने हेतु हमें भारतीय संस्कृति की अवधारणा के सहारे ही चलना होगा।

हम सब लोग भगवान की पूजा करते हैं, भगवान् के अर्थ में छिपी हुई अवधारणा में भ=भूमि, ग=गगन, व=वायु, अ=अग्नि, एवं न=नीर की अवधारणा छिपी हुई है। अर्थात् हमारे प्रकृति के मूल पांच तत्वों क्षितिज, जल, पावक, गगन एवं समीर की ही पूजा भगवान के रूप में करते हैं और इस तरह भगवान की पूजा के रूप में प्रकृति के मूलभूत पांच तत्वों की रक्षा के लिए एवं संरक्षण के लिए पूजा करते हैं। पर्यावरण संरक्षण के प्रति इतनी उत्कृष्ट संकल्पना हमें कहीं नहीं दिखायी पड़ती है।

आज प्रकृति संरक्षण के लिए सबसे आवश्यक है कि हम प्राकृतिक तत्वों के अत्याधिक दोहन एवं शोषण एवं उपभोग पर विशेष ध्यान दें। प्राकृतिक तत्वों एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, बचत प्रक्रिया, दीर्घकालीन उपयोग, बरबादी पर रोक, विकल्प की खोज, गुणवत्ता में वृद्धि, समुचित उपयोग, एकाधिकार पर रोक, अनियंत्रित दोहन एवं शोषण पर रोक, आवश्यकता में कमी तथा जनजागरूकता आदि उपायों एवं सिद्धान्तों को समझकर एवं अपनाकर किया जा सकता है।

आज आवश्यकता इस बात है कि हम प्रकृति के संरक्षण से जुड़ी इन सभी संकल्पनाओं को लोगों को बतायें और जागरूक करें जिससे हमारे जन–मन एवं नैतिक कार्यों से जुड़े प्रकृ ति के संरक्षण के इन संकल्पनाओं को अपने जीवन में अपनाकर हम प्रकृति को सुरक्षा एवं संरक्षा प्रदान कर चिरकाल तक संरक्षित कर, इस पृथ्वी के अस्तित्व को बचा सके नहीं तो इस पृथ्वी के साथ–साथ हमारा भी अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

और अन्त में–

जब प्रकृति का करेंगे अधिक शोषण,

तो नहीं मिलेगा किसी को पोषण।

जब प्रकृति का करेंगे अधिक क्षरण,

तो नहीं मिलेगा किसी को शरण।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि भारतीय चिन्तन परम्परा में जल एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा कूट–कूट कर भरी पड़ी है। लेकिन दुःख तो इस बात का है कि आज हम अपनी इस विरासत को भूलते जा रहे हैं, जो कि हमारे जीवन के लिये अमूल्य क्रम था। यदि आज पुनः हम भारतीय चिन्तन परम्परा का अनुशीलन करते हुए अपना जीवन निर्वाह करें, तो निश्चित है कि पर्यावरण संरक्षण को बल मिलेगा एवं पारिस्थितिकी संतुलन बना रहेगा।

14.

वैदिक धरोहर और विज्ञान: संस्कृति, निर्धारण और समाधान

डॉ. राधिका बंसल
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
मॉडर्न कॉलेज ऑफ़ प्रोफेशनल स्टडीज, मोहन नगर, ग़ाज़ियाबाद

हेमलता शर्मा
एम.एड. तृतीय सेमेस्टर, शिक्षा विभाग
मॉडर्न कॉलेज ऑफ़ प्रोफेशनल स्टडीज मोहन नगर, ग़ाज़ियाबाद

वैदिक धरोहर एक महत्वपूर्ण भाग है जो हमारे समृद्ध और प्राचीन भारतीय संस्कृति का हिस्सा है। यह हमारी भारतीय धर्म, संस्कृति और जीवनशैली का महत्वपूर्ण अंश है जिसमें ज्ञान, शिक्षा, और वैज्ञानिक धारणाएं समाहित हैं। यह हमारे पिछली पीढ़ियों के योगदान का प्रतीक है और हमारे आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास का मूल है।

वेदों में 3,500 साल पहले संस्कृत काव्य, दार्शनिक संवाद, मिथक, और अनुष्ठानों का एक विशाल कोष विकसित और रचित था। हिंदुओं द्वारा ज्ञान के प्राथमिक स्रोत और उनके धर्म की पवित्र नींव के रूप में, वेद दुनिया की सबसे पुरानी जीवित सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है।

वैदिक विरासत चार वेदों में एकत्र ग्रंथों और व्याख्याओं को अंकित करती है, जिन्हें आमतौर पर "ज्ञान की पुस्तकों" के रूप में संदर्भित किया जाता है, भले ही वे मौखिक रूप से प्रेषित की गई हों। ऋग्वेद पवित्र भजनों का एक ग्रंथ है; साम वेद में ऋग्वेद और अन्य स्रोतों से भजनों की संगीत व्यवस्था है; याजुर वेद प्रार्थना और पुजारियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले यज्ञों में निहित है; और अथर्ववेद में भस्म और मंत्र शामिल हैं। वेद हिंदू धर्म के इतिहास और कई कलात्मक, वैज्ञानिक और दार्शनिक अवधारणाओं के प्रारंभिक विकास में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जैसे कि शून्य की अवधारणा।

वैदिक भाषा में व्यक्त, जिसे शास्त्रीय संस्कृत से लिया गया है, वेदों के श्लोकों का पारंपरिक रूप से पवित्र अनुष्ठानों के दौरान जप किया जाता था और वैदिक समुदायों में दैनिक पाठ किया जाता था। इस परंपरा का मूल्य न केवल अपने मौखिक साहित्य की समृद्ध सामग्री में है, बल्कि ब्राह्मण पुजारियों द्वारा हजारों वर्षों से बरकरार ग्रंथों को संरक्षित करने में निपुण तकनीकों में भी निहित है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रत्येक शब्द की आवाज़ अनलिखित है, साधकों को बचपन से जटिल सस्वर तकनीक से सिखाया जाता है जो कि तानवाला उच्चारण पर आधारित है, प्रत्येक अक्षर और विशिष्ट भाषण संयोजनों का उच्चारण करने का एक अनूठा तरीका है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वह शक्ति है, जिसमें जीवन के सभी प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं। आज दुनिया संकट से जूझ रही है, उन संकटों का समाधान भारत के प्राचीन ग्रन्थों में है। वैदिक विरासत का सम्बंध प्राचीन अतीत, वर्तमान समय से है और भविष्य में भी इसकी निरंतरता बनी रहेगी। वैदिक ग्रंथों में विज्ञान के सिद्धांत और वैज्ञानिक ज्ञान का स्थान है। इससे हम अपने प्राचीन विज्ञानिक धर्मियों के योगदान को समझ सकते हैं।

वैदिक संस्कृति का इतिहास

वैदिक काल प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक काल खंड है, जिस दौरान वेदों की रचना हुई थी। वेदों से प्राप्त जानकारी के आधार पर इसे वैदिक सभ्यता का नाम दिया गया था। वैदिक सभ्यता आर्यों द्वारा स्थापित एक ग्रामीण सभ्यता थी। वैदिक संस्कृति सिन्धु सभ्यता के बाद अस्तित्व में आई थी। वैदिक सभ्यता के बारे में जानकारी प्राप्त करने का मुख्य स्रोत चारों वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ इत्यादि हैं। ऋग्वैदिक संस्कृति के विषय में मुख्यतः जानकारी ऋग्वेद के माध्यम से प्राप्त होती है, जबकि उत्तर वैदिक संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के मुख्य स्रोत सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के साथ–साथ उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक इत्यादि हैं।

वैदिक संस्कृति के मूल तत्व

वैदिक संस्कृति के मूल तत्व विशेष रूप से भारतीय सभ्यता की मूल रूप से धारण की गई मूल्यों, विचारधाराओं, और आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन मूल तत्वों के माध्यम से वैदिक संस्कृति का अद्वितीय और महत्वपूर्ण योगदान है।

- **धर्म और मोक्ष की प्रधानता**: वैदिक संस्कृति में धर्म और मोक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ तक कि जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति होता है, और इसके लिए धार्मिक अचरण, योग, और तपस्या का महत्व दिया जाता है।
- **यज्ञ और सेवा की भावना**: वैदिक संस्कृति में सेवा और यज्ञ की महत्वपूर्ण भावना है। यज्ञ के माध्यम से भगवान की पूजा और समर्पणा का प्रतीक दिया जाता है, और

सेवा के माध्यम से समाज की सेवा करने की भावना प्रमोट की जाती है।

- **आत्म–विकास और आध्यात्मिकता:** वैदिक संस्कृति में आत्म–विकास और आध्यात्मिकता का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ तक कि ध्यान, तप, और मेधा के माध्यम से आत्मा का पूर्णता और सुख की प्राप्ति की भावना को प्रोत्साहित किया जाता है।
- **ग्रंथों का महत्व:** वैदिक संस्कृति के मूल तत्वों को धारण करने के लिए वैदिक ग्रंथों का महत्वपूर्ण योगदान है। वेद, उपनिषद, भगवद गीता, और अन्य ग्रंथ समाज के नैतिक और आध्यात्मिक दिशा में मार्गदर्शन करते हैं।
- **प्राकृतिक और पारंपरिक जीवनशैली:** वैदिक संस्कृति में प्राकृतिक जीवनशैली का महत्व है, जिसमें सांस्कृतिक और पर्यावरणिक संरक्षण को महत्व दिया जाता है। पारंपरिक जीवनशैली में समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका को महत्वपूर्ण बनाया जाता है।

वैदिक संस्कृति के इन मूल तत्वों ने भारतीय समृद्धि को एक अद्वितीय और धार्मिक दिशा में मार्गदर्शन किया है और इसका प्रभाव आज भी हमारे समाज में दिखाई देता है।

वैदिक संस्कृति का धार्मिक परिप्रेक्ष्य

वैदिक संस्कृति का धार्मिक परिप्रेक्ष्य विशेष रूप से धर्म और आध्यात्मिकता के प्रति अपनी गहरी संवादशीलता के लिए प्रसिद्ध है। इस परिप्रेक्ष्य में कुछ महत्वपूर्ण प्रासंगिक बिंदुओं को देखा जा सकता है:

- **धर्म का महत्व:** वैदिक संस्कृति में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह धर्म अनुषासन, आचरण, और नैतिकता की मूल धारणाओं को स्वीकार करता है और जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है।
- **धार्मिक अचरण और ऋतिविधियाँ:** वैदिक संस्कृति में धार्मिक अचरण और ऋतिविधियाँ महत्वपूर्ण हैं। इनमें यज्ञ, पूजा, और व्रत शामिल होते हैं, जिनका उद्देश्य ईश्वर की पूजा और ध्यान होता है।
- **आध्यात्मिक समझ:** वैदिक संस्कृति में आध्यात्मिकता का अद्वितीय रूप से महत्व है। यहाँ तक कि वैदिक साहित्य और ग्रंथ आत्मा की अद्वितीयता और आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति विचार करते हैं।
- **धर्मिक तात्पर्य:** वैदिक संस्कृति में धर्म का तात्पर्य आत्मा के प्राप्ति और उसके मुक्ति से है। यह धार्मिक तात्पर्य और साधना का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

- **भगवान और देवताओं का महत्वः** वैदिक संस्कृति में भगवान और देवताओं का महत्व बहुत उच्च है। वैदिक साहित्य में देवताओं के गुण, महत्व और पूजा का विवरण मिलता है।इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम आदि ऐसे अनेक देवता थे, जिन्हें तृप्त व सन्तुष्ट करने के लिए वे अनेक विविध–विधानों का अनुसरण करते थे।

- **कर्म और धर्मः** वैदिक संस्कृति में कर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। यह धर्मिक आचरण का महत्व दिलाता है और अच्छे कर्मों की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वैदिक संस्कृति और विज्ञान

हम भारतीय महान ऋषियों और हमारे पूर्वजों द्वारा लिखे गए पवित्र वेदों और हिंदू संस्कृति ग्रंथों के गहरे और वास्तविक अर्थ को समझने में असफल रहे हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से, अगर हम देखें, तो हमारे प्राचीन काल के किसी भी ज्ञान को कहानी के माध्यम से दिखाने के लिए विषय के आसपास कुछ व्यक्तिगत प्रासंगिकता जोड़कर आसानी से समझा जा सकता है, जिससे श्रोता के लिए इसे दिलचस्प और याद रखना आसान हो जाता है। हालाँकि, हमारे ऋषि–मुनियों द्वारा दी गई इस अवधारणा को आने वाली पीढ़ियों ने ठीक से नहीं अपनाया, इसे वैज्ञानिक ढंग से समझे बिना केवल प्रतीकात्मक अर्थ ले लिया और मूल गहन ज्ञान को न समझ पाने के कारण सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक क्षेत्र पर बहुत बड़ा आघात लगा। किसी संदेश के रूप में लिखा गया प्रत्येक ज्ञान, साहित्य, रचना, चिकित्सा और शल्य चिकित्सा के बारे में जानकारी, शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर सलाह, पर्यावरण का पोषण और संतुलन, जीवन प्रबंधन और कार्य प्रबंधन, राजनीतिक और आर्थिक विचार, अवधारणा वास्तव में एक गहरी वैज्ञानिक और तकनीकी अवधारणा है।

वैदिक संस्कृति और विज्ञान दो अलग–अलग क्षेत्रों के लिए एक साथ नहीं जाने जाते हैं, लेकिन इनमें कई ऐसे पहलु हैं जो हमें दिखाते हैं कि वैदिक संस्कृति में भी विज्ञान के तत्व और धारणाएं मौजूद थीं।

- **वैदिक गणना और ज्योतिषः** वैदिक संस्कृति में गणित और ज्योतिष का महत्वपूर्ण स्थान था। ऋग्वेद में गणित के बहुत सारे मंत्र मिलते हैं, जिनमें गणना और गणितीय श्रृंगार का वर्णन होता है। ज्योतिष वैदिक साहित्य का हिस्सा था और आकाशगंगा के गतिविधियों का अध्ययन किया जाता था।

- **आयुर्वेदः** वैदिक संस्कृति में आयुर्वेद का महत्वपूर्ण स्थान था। आयुर्वेद विज्ञान का एक हिस्सा है जिसमें जड़ी–बूटियों और प्राकृतिक उपचार के सिद्धांत शामिल हैं।

- **वैदिक ग्रंथों में विज्ञान के सिद्धांतः** वैदिक संस्कृति के ग्रंथों में विज्ञान के कई सिद्धांत मिलते हैं। उपनिषदों में ब्रह्माण्ड के रहस्य और प्राकृतिक घटनाओं का विशेष अध्ययन किया गया है।

- **सांस्कृतिक और तकनीकी उपयोगः** वैदिक संस्कृति में विज्ञान के सिद्धांतों का सांस्कृतिक और तकनीकी उपयोग भी था। उदाहरण स्वरूप, यज्ञ के प्राकृतिक घटनाओं को नियमित करने में वैदिक सिद्धांतों का उपयोग होता था।

- **पर्यावरण और प्राकृतिक संरक्षणः** वैदिक संस्कृति में प्राकृतिक संरक्षण का महत्वपूर्ण स्थान था। वृक्षों, जलवायु, और पर्यावरण की रक्षा के लिए विशेष साहस और धारणाएं थीं।

इस प्रकार, वैदिक संस्कृति और विज्ञान के बीच काई संबंध थे, जिनमें धर्म, गणना, वैज्ञानिक सिद्धांत, और प्राकृतिक संरक्षण के पहलु शामिल थे। ये पहलु वैदिक संस्कृति का समृद्ध और गहरा प्रभाव दर्शाते हैं और इसे एक अद्वितीय धारणा के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

वैदिक संस्कृति में विज्ञान का स्थान

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति मानव सभ्यता के विकास का मुख्य कारण है। भारत प्राचीन काल से ही विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में योगदान देता रहा है। आज भी जिसे हम "पारंपरिक ज्ञान" कहते हैं, वह वास्तव में वैज्ञानिक तर्क पर आधारित है।

वीर सावरकर चाहते थे, न केवल एक विशेष जाति, बल्कि सभी को वैदिक साहित्य का उपयोग करके आधुनिक तकनीक विकसित करके जीवन स्तर को ऊपर उठाना चाहिए।

लोकमान्य तिलक का बहुत मानना था, वैदिक ज्ञान का गहन अध्ययन कर उसके ज्ञान पर एक ग्रंथ लिखा जा सकता है।

हिंदू पूर्वजों, ऋषि–मुनियों ने इस महान ज्ञान को न सिर्फ कागजों पर उतारा बल्कि उस समय बड़ी कुशलता और डिजाइन के साथ कई अवधारणाओं को व्यवहारिक रूप से जमीन पर भी उतारा। हम विभिन्न मंदिर, धातुकर्म, स्थापत्य सौंदर्य, गणित, शल्य चिकित्सा पद्धतियाँ देख सकते हैं३।

जर्मन भौतिक विज्ञानी वर्नर हाइजेनबर्ग ने एक बार कहा था, भारतीय दर्शन के बारे में, क्वांटम भौतिकी के कुछ विचार जो बहुत अजीब लगते थे, अचानक अधिक सार्थक हो गए।

परमाणुओं, अणुओं और पदार्थों की अवधारणाओं का पता वैदिक युग से लगाया जा सकता है। जर्मन दार्शनिक गॉटफ्रीड वॉन हर्डर ने एक बार कहा था, मानव जाति की उत्पत्ति का पता भारत में लगाया जा सकता है जहां मानव मन को ज्ञान और सद्गुण का पहला आकार मिला।

हड़प्पा शहरों के जटिल लेआउट से लेकर दिल्ली लौह स्तंभों के अस्तित्व तक, यह तो स्पष्ट है कि भारत में स्वदेशी तकनीक अत्यंत परिष्कृत थी। इनमें जल आपूर्ति, परिवहन प्रवाह, प्राकृतिक एयर कंडीशनिंग, जटिल चिनाई और निर्माण इंजीनियरिंग की डिजाइन और योजना शामिल है।

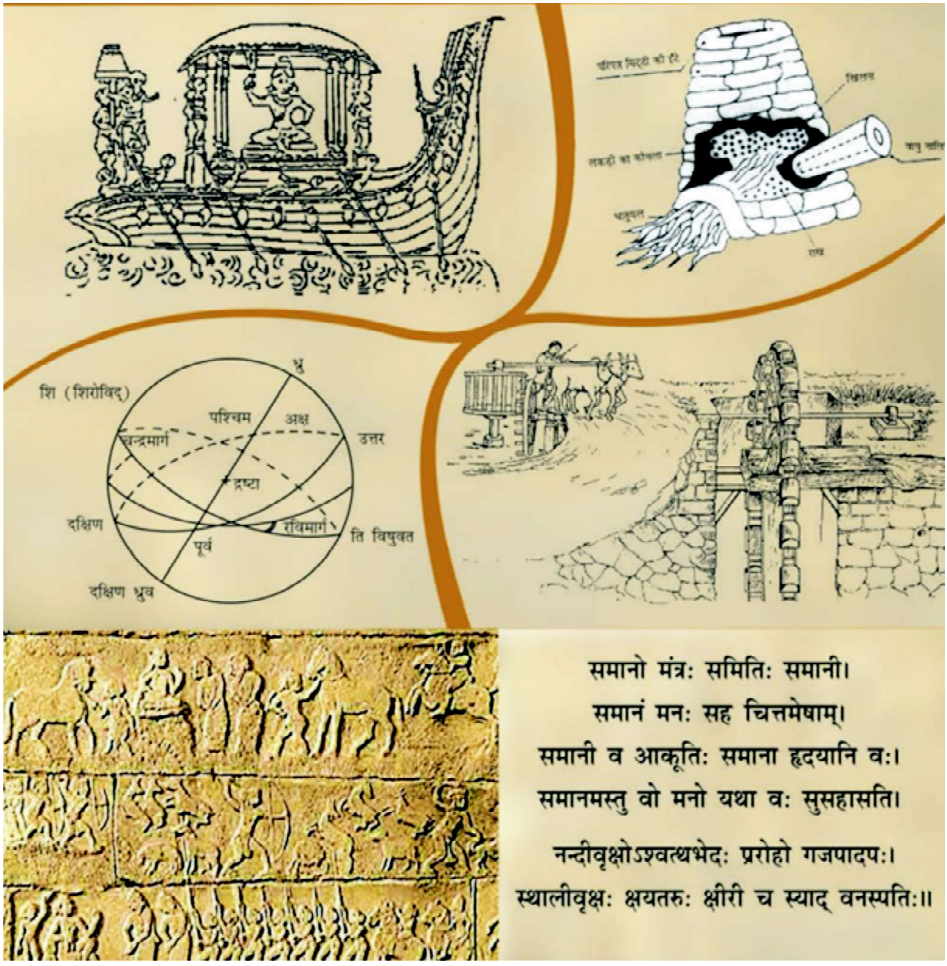

हिंदू पूजा स्थल मंदिर, जिनकी वास्तुकला एक और विज्ञान है। पृथ्वी के अन्दर चुम्बकीय एवं विद्युत तरंगें निरंतर गतिमान रहती हैं; जब हम कोई मंदिर बनाते हैं तो आर्किटेक्ट और इंजीनियर जमीन का एक टुकड़ा चुनते हैं जहां ये लहरें प्रचुर मात्रा में हों। मुख्य मूर्ति मंदिर के मध्य में स्थित है; इस स्थान को गर्भगृह के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर का निर्माण किया जाता है और फिर एक मूर्ति स्थापित की जाती है, जिसकी पूजा को आमतौर पर प्राणप्रतिष्ठा के रूप में जाना जाता है। मूर्ति वहां रखी गई है जहां चुंबकीय तरंगें अत्यधिक सक्रिय हैं। मूर्ति की स्थापना के समय वे मूर्ति के नीचे कुछ तांबे की प्लेटें गाड़ देते हैं; प्लेटों पर वैदिक लिपि उत्कीर्ण है; ये तांबे की प्लेटें पृथ्वी से चुंबकीय तरंगों को अवशोषित करती हैं और आसपास के क्षेत्र में विकिरण करती हैं। इसलिए, यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से मंदिर जाता है और मूर्ति के चारों ओर दक्षिणावर्त घूमता है, तो उसका शरीर इन चुंबकीय तरंगों को अवशोषित करता है और स्वस्थ जीवन जीने के लिए सकारात्मक ऊर्जा बढ़ाता है। जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर अपने स्मारक कार्य में लिखते हैं, "द वर्ल्ड ऐज़ विल एंड रिप्रेजेंटेशन" " दृ "पूरी दुनिया में उपनिषदों के समान लाभकारी और इतना उन्नत कोई अध्ययन नहीं है। यह मेरे जीवन की सांत्वना है; यह मेरी मृत्यु की सांत्वना होगी।"

इस प्रकार, वैदिक संस्कृति में विज्ञान का स्थान था, और वैदिक ग्रंथों और ऋषियों के द्वारा विज्ञान के कई पहलु और धारणाएँ वर्णित की गई थीं। ये धारणाएँ भारतीय संस्कृति के साथ ही विज्ञान और तकनीक के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

वैदिक संस्कृति के द्वारा निर्धारित समस्याएँ

पर्यावरण संरक्षणः

- **वृक्षारोपण की महत्वः** वैदिक संस्कृति में प्राकृतिक संरक्षण का महत्व था। वृक्षारोपण के माध्यम से प्राकृतिक वातावरण को सुरक्षित रखने की धारणा व्यक्त की जाती थी और वृक्षारोपण को महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था।
- **जल संरक्षण के उपायः** वैदिक संस्कृति में जल के महत्व को समझा जाता था। जल संरक्षण के लिए जल का उपयोग ध्यानपूर्वक और विवेकपूर्ण तरीके से किया जाता था, और जल संबंधित समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयास किया जाता था।

सामाजिक समस्याएँः

- **बलात्कार और नारी सुरक्षाः** वैदिक संस्कृति में नारी सम्मान और सुरक्षा का महत्व था। समाज में नारी के समान अधिकार की समर्थना की जाती थी और बलात्कार जैसी गंभीर समस्याओं के खिलाफ लड़ने के उपाय विचारित किए जाते थे।
- **शिक्षा के क्षेत्र में सुधारः** वैदिक संस्कृति में शिक्षा का महत्व था और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के उपाय विचारित किए जाते थे। युवाओं के लिए शिक्षा के उच्च मानक और प्रौद्योगिकीकरण के माध्यम से शिक्षा को सुधारने की कोशिश की जाती थी।

आर्थिक समस्याएँः

- **कृषि में प्रौद्योगिकी का उपयोगः** वैदिक संस्कृति में कृषि का महत्व था और कृषि में प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के उपाय विचारित किए जाते थे। उन्नत कृषि तकनीकों का अध्ययन किया जाता था ताकि कृषि उत्पादकता बढ़ सके।
- **रोजगार सृजना के उपायः** वैदिक संस्कृति में रोजगार सृजना के उपाय विचारित किए जाते थे। उद्योगों के विकास के माध्यम से रोजगार सृजना को बढ़ावा दिया जाता था और आर्थिक समस्याओं का समाधान खोजा जाता था।

इन समस्याओं के समाधान के लिए वैदिक संस्कृति के दृष्टिकोण और मूल्यों का सहायक बन सकते हैं, ताकि हम समृद्धि और सामाजिक सुधार की दिशा में अग्रसर हो सकें।

वैदिक संस्कृति के समाधान

वैदिक संस्कृति के तत्वों का पुनरावलोकनः

- प्राचीन वैदिक साहित्य के ग्रंथों का अध्ययन करके हमें वैदिक संस्कृति के मूल तत्वों को पुनरावलोकन करना चाहिए।
- धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों को समझकर वैदिक संस्कृति की धारणाओं को आधार बनाना चाहिए।

वैदिक संस्कृति का समाज में प्रचारः

- वैदिक संस्कृति के महत्वपूर्ण सिद्धांतों को समाज में प्रचारित करने के उपाय बनाने चाहिए।
- धर्मिक प्रवचन, संगठनों के माध्यम से वैदिक संस्कृति की महत्वपूर्ण संदेशों को पहुँचाना चाहिए।

वैदिक संस्कृति के आधार पर समस्याओं का समाधानः

- वैदिक संस्कृति के मूल तत्वों के आधार पर, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समस्याओं का समाधान, और आर्थिक सुधार के लिए नीतियों और कार्यों को तैयार करना चाहिए।
- वृक्षारोपण की प्रोत्साहना, जल संरक्षण के उपाय, बलात्कार और नारी सुरक्षा के लिए कठिन कानूनी कदम, शिक्षा के क्षेत्र में सुधार, कृषि में प्रौद्योगिकी का उपयोग, और रोजगार सृजना के उपाय विचारित करने चाहिए।

इन समाधानों के माध्यम से हम वैदिक संस्कृति के मूल तत्वों का समाज में पुनर्निर्माण कर सकते हैं और समस्याओं का समाधान ढूंढ सकते हैं। यह समाधान भारतीय समाज को समृद्धि, सामाजिक सुधार, और सामाजिक न्याय की दिशा में आगे बढ़ा सकते हैं।

निष्कर्ष

वैदिक धरोहर और विज्ञान का महत्व हमारे समाज और संस्कृति के लिए अत्यधिक है। इसे पुनर्जागरूकता का स्रोत माना जा सकता है जिससे हम अपने प्राचीन ज्ञान को अद्यतन जीवन में लागू कर सकते हैं। वैदिक संस्कृति में विज्ञान के तत्व हमें प्राकृतिक संरक्षण, धार्मिक सिद्धांतों का मूल्यांकन, और ग्रहों के गतिविधियों का अध्ययन करने में मदद कर सकते हैं। वैदिक संस्कृति के सिद्धांतों का अध्ययन करके हम समाज में प्राकृतिक संरक्षण, सामाजिक समस्याओं का समाधान, और आर्थिक सुधार के उपाय ढूंढ सकते हैं। वृक्षारोपण, जल संरक्षण, और धर्मिक साद्गी के सिद्धांतों का अनुसरण करने से हम पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा दे सकते हैं। वैदिक संस्कृति के मूल्यों का पुनरावलोकन करने से हम समाज में न्याय, नैतिकता और सामाजिक सुधार की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं। वैदिक संस्कृति के धार्मिक तथा आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रसार करके हम समाज में शांति, सहमति, और आत्म–समर्पण की भावना को प्रोत्साहित कर सकते हैं। इस तरह, वैदिक धरोहर और संस्कृति हमें समस्याओं के समाधान में मदद कर सकते हैं और हमारे समाज को सुधारने के लिए एक मौलिक और सुगम मार्ग प्रदान कर सकते हैं।

संदर्भः–

- नितेश कुमार मिश्रा. वैदिक कालीन विज्ञान- Int- J- Rev- & Res- Social Sci- 2(1)% Jan- – Mar- 2014(Page 31&33-
- sanskrit&vangmay-pdf (ncert-nic-in)
- Vedic period & Wikipedia
- www-researchgate-net
- India & Vedic] Aryan] Culture | Britannica

15.

वैदिक संस्कृति में आचार्य नरेंद्र देव के शैक्षिक दर्शन एवं वर्तमान समय में उसकी उपादेयता

राजीव कुमार चौहान
विभागाध्यक्ष, बी. एड. विभाग
सम्राट प्रथ्वीराज चौहान डिग्री कॉलेज, बागपत

स्व0 प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राज्य सभा में कहा कि – ''नरेन्द्र देव जी दुर्लभ गुणों की खान थे। उनके समान आत्मबल, मस्तिष्क, बौद्धिक विकास तथा मानसिक ईमानदारी दुर्लभ है।''

स्व0 गृहमंत्री प0 गोविन्द बल्लभ पन्त ने लोकसभा में इस प्रकार संवेदना प्रकट की आचार्य नरेन्द्र देव हमारे श्रेष्ठ नेताओं में से एक थे। वे गुजराती पीढी के प्रतिभा सम्पन्न प्रतिनिधि थे। वे एक योग्य शिक्षाशास्त्री थे..... उन्होने देश के लिए जीवन भर अपना सर्वस्व दिया वे सुहृदय साधु तथाम हामना थे..... उन्होने जो कुछ भी किया वह इतिहास में लोगों के लिए सदा सुरक्षित रहेगा जो एक आदर्श जीवन बिताते हुए हर अच्छे उद्देश्य के लिए कार्य करना चाहते थे।

मद्रास के राज्यपाल श्री प्रकाश जी ने कहा था कि ''आचार्य नरेन्द्र देव बडे स्निग्ध और अभिभावी व्यक्ति थे..... शिक्षक के रूप में वह अद्वितीय थे..... एक विद्वान के रूप में देखा जाय तो उनका पांडित्य था और जिन विभिन्न विषयों पर उनका अधिकार था वह अत्यन्त व्यवस्थित और अपरिमित ज्ञान के विषय थे। प्रत्ये विषय में उनकी एक जैसी गति थी।..... उनके देहान्त से देश ने महान देशभक्त संसार ने एक विद्वान और उनके साथियों तथा मित्रों ने उदारता, सरलता और स्नेह की जीवन प्रतिमा को खो दिया है।''

आचार्य नरेन्द्र देव उन महान व्यक्तियों में से थे जिन्होने पराधीनता की बेडियों में जन्म लिया तथा देश के हित के लिए सदा अपने प्राणों की आहूति देने के लिए तत्पर रहे। आचार्य

जी के अनुसार, ''प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के अर्थ एवं उसके महत्व को अवश्य जानना चाहिए। परतंत्र भारत की जिन समस्याओं को देखते हुए उन्होने जिन उद्देश्यों की पूर्ति आज तक स्वतंत्रता के 73 वर्षो पश्चात भी नही हो सकी है। देश के नागरिकों का चारित्रिक पतन अधिक हो चुका है जिसे सुधारना आवश्यक है। शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा हम समाज में परिवर्तन ला सकते है। आज हमे शिक्षा कें उन उद्देश्यों को निर्धारित करने की आवश्यकता है जो कि हमारे जीवन का लक्ष्य निश्चित कर सके। इसके लिए शोधकर्ता ने आचार्य नरेन्द्र देव जी के ''शैक्षिक विचारों'' को बनाकर अपना यह लघु शोध–ग्रन्थ प्रस्तुत किया है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व–

वर्तमान समय में हमारे देश की प्रणाली इतनी दूषित हो गयी है कि हम चारों ओर सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों के प्रति घोर निराशा, और उदासीनता देखते है और सबसे बुरी बात तो यह है कि राष्ट्र सम्पदा में कोई अभिवृद्धि होने के बजाय राजनीति के घिनौने दलदल में फसता चला जा रहा है।

इस समय सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन भ्रष्टाचार पक्षपात तथा अनुशासन हीनता से रंग गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकार लिप्सा छा गयी है। यहां तक कि विद्या केन्द्र भी इस भ्रष्टाचार से नही बच सके है। हम लोगों में संकीर्णता, तुच्छता और स्वार्थपरता छा गयी है।

आचार्य जी ने इस परिवर्तनशील जगत के भावी जीवन दर्शन के हमारे समक्ष रखा तथा उसके अनुसार स्वतंत्र भारत की शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया। परन्तु हमारे समाज ने उनके जीवन मूल्यों तथा शिक्षा के उन उद्देश्यो पर ध्यान आकृष्ट नही किया जिससे हमारे देश का तथा नागरिकों का कल्याण हो सकता है। उनके द्वारा बताए गए तथ्यों पर प्रकाश डालने के लिए ही इस लघु शोध प्रबन्ध की आवश्यकता अनुभव हुई है। जिससे शिक्षा जगत में आचार्य जी द्वारा किए गए कार्यो की ओर विद्यार्थियों, शिक्षा शास्त्रियों तथा समाज का ध यान आकृष्ट हो सके तथा भविष्य में हम उनके द्वारा बताए गए पदचिन्हों पर चलकर हम अपने शिक्षा व्यवस्था तथा देश के भावी नागरिकों को सुदृढ बना सके। आचार्य शिक्षा सम्बन्ध ी विचारों से प्रभावित होकर ही शोधकर्ता नरे आचार्य जी के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

समस्या एवं समस्या का चयन–

समस्या–''आचार्य नरेन्द्र देव के शैक्षिक दर्शन एवं वर्तमान समय में उसकी उपादेयता।''

अध्ययन के उद्देश्य–

भारतीय शिक्षा शास्त्री विशेषकर गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, जो भारतीय शिक्षा के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखते है। अथवा जिन्होने भारतीय समाज की पृष्ठ भूमि में शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के प्रशंसनीय प्रयास किए है जो शिक्षा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके है तथा अनेक शिक्षा प्रेमियों ने शोधकर्ताओं ने जिस पर कार्य किया है।

आज की विकृत शिक्षा व्यवस्था में आचार्य जी के शैक्षणिक सिद्धांतों एवं विचारों की इतनी उपादेयता एवं आवश्यकता है कि उन्हें संगठित करके यदि उनके शैक्षणिक सिद्धांतों के आधार पर शिक्षा का नवीनीकरण किया जाये तो वास्तव में हमारे राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था को नया मिल सकता है एवं देश के नवयुवकों को जीवन–यापन के सही मार्ग दर्शन मिल सके।

आचार्य नरेन्द्र देव परतंत्र भारत में जन्मे थे। उन्होने भारत को स्वतंत्र कराने में भी परोक्ष भूमिका निभायी थी इसलिए उनके उद्देश्य भावी स्वतंत्र भारत के निर्माण हेतु उच्चतम थे।

आचार्य जी आदर्शवादी विचारधारा के सिद्धांत सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् को सामाजिक हित के लिए आवश्यक मानते है। इस उद्देश्य की प्राप्ति से सामाजिक विश्रृंखलता को दूर करके मानव जीवन का समृद्धशाली बनाना होगा।

आचार्य जी के अनुसार हमे विज्ञान और तकनीकी के इस आधुनिक युग में उन विशाल स्रोतों का उसीढंग से प्रयोग करना चाहिए जिससे बीमारी और गरीबी का अन्त किया जा सकता है।

आचार्य जी ने भारतीय संविधान में उद्वत हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का स्थान प्रदान करने का उद्देश्य माना है। हिन्दी ही एक मात्र ऐसी भाषा है। जो सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक बोली जाती है। राष्ट्रीय एकता को पुष्ठ करने के लिए तथा परस्पर विनिमय को सुविधा के लिए राष्ट्रभाषा की अत्यन्त आवश्यकता है।

परिसीमांकन–

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में शोधकर्ता ने आचार्य जी के जीवन के एक पक्ष अर्थात शिक्षा शास्त्री के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। यद्यपि आचार्य जी के शिक्षा दर्शन पर कार्य करने का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है किन्तु सीमाओं के अन्तर्गत आचार्य जी की शिक्षा दीक्षा शैक्षणिक विचार, शिक्षा के दार्शनिक आधार एवं शिक्षा के अंगों आदि के सम्बन्धों पर ही शोध कार्य को सीमाबद्ध किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन–

1. सोती, एस.सी. एजूकेशनल फिलोसोफी आफ श्री अरबिन्दो, मी यू. 1978

2. गुप्ता आर,पी, सिन्थेटिक स्प्रिचुअलिज्म आफ श्री रामाकृष्णा थ्रो हिस्ट्री एण्ड फिलोसोफीकल पर्सपेक्टिव, पी.एच.डी. एजूकेशन, गन यू. 1984

3. ललिता सी.एच. द एजूकेशनल फिलोसोफीज आफ गांधी एण्ड डीवी–ए स्टडी एण्ड काम्परीजन, पी.एच.डी. फिलः एण्ड यू. 1967

आब्जेटिक्स– क्रिटिकल एनालिसिस ऑफ द आडियोलाजिकल कान्ट्रीब्यूशन आफ रविन्द्रनाथ टैगोर टू द एजूकेशनल प्रेक्टिस इन इण्डिया द मेथोडोलाजी कान्सिस्टेड इन लाइब्रेरी स्टडी आफ हिज राइटिंग एण्ड हिज प्रेटिसेज एण्ड द एजूकेशनल इनावेशन एट शांतिनिकेतन

शोध विधि–

वर्तमान शैक्षिक उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में आचार्य नरेन्द्र देव जी के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन'' करने का उद्देश्य से ऐतिहासिक सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है।

आचार्य जी का जीवन परिचय व कार्य–

आचार्य जी का जन्म सवंत 1946 में कार्तिक शुक्ल अष्टमी को सीतापुर में हुआ उनका पैतृक घर फैजाबाद में था, परन्तु उस समय उनके पिता श्री बलदेव प्रसाद जी सीतापुर में वकालत करते थे।

शिक्षा–

आचार्य जी ने 1902 में स्कूल जाना प्रारम्भ किया। सन 1904 या 1905 में उन्होने थोडी बंगला सीखी और उनके अध्यापक उन्हे कृत्तिवास की रामायण सुनाया करते थे।

आचार्य जी के स्कूल में एक बडे योग्य शिक्षक थे उनका नाम था श्री दत्तात्रेय भीखा जी रानाडे। उनका आचार्य जी पर गहरा प्रभाव पडा था। अपने पिता जी के सदा सम्पर्क में रहने से इन पर भी भारतीय संस्कृति की अमिट छाप पडी थी। इसी कारण इन्होने भी एम0ए0 में संस्कृत लिया। सन 1904 में मालवीय जी का आगमन फैजाबाद में हुआ वहॉ उनकी मुलाकात उनसे हुई।

बी0ए0 पास करने बाद कानून पढना चाहते थे। बी0ए0 पास करने के बाद वह पुरातत्व पढने काशी चले गये। सन 1913 में जब इन्होने एम0ए0 पास किया। सन 1915 में एल0एल0बी0 पास करने के बाद यह फैजाबाद में वकालत करने लगे।

आचार्य नरेन्द्र देव के शैक्षिक विचार–

दार्शनिक आधार–

1. आचार्य नरेन्द्र देव जी ने शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में आदर्शवाद दार्शनिक विचारधारा को आधार माना है।

2. आचार्य के विचार से सत्य एवं मूल्यों के आधार पर ही स्वस्थ्य शिक्षा का निर्माण किया जा सकता है किन्तु इसके साथ उन्होने आदर्शवादियों की इस विचारधारा का खण्डन किया कि सत्य एवं मूल्य स्थिर होते है।

मनोवैज्ञानिक आधार–

1. आचार्य जी ने बालक को शिक्षा देने का ढंग मनोवैज्ञानिक आधार ही बताया।

2. वर्तमान समाज की आवश्यकतानुसार यही शिक्षा का नवीनीकरण करना है तो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाना होगा अर्थात शिक्षा बालक की रूचि योग्यता बुद्धि एवं वैयक्तिक आधार पर दी जाय बालक को मुख्य स्थान प्राप्त हो। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय बालक की रूचि आयुएवं स्थानीय आवश्यकता को ध्यान मे रखा जाए इत्यादि।

समाजशास्त्रीय आधार–

1. भारतवर्ष में आचार्य जी ही वह प्रथम शिक्षा शास्त्री है, जिन्होने भारतीय शिक्षा को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया।

2. शिक्षा द्वारा व्यक्ति में समाज कल्याण की भावना का विकास किया जाय क्योंकि इससे व्यक्ति में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास होगा।

विश्वविद्यालयी शिक्षा–

वर्तमान समय में राज्य का यह कर्तव्य है कि वह देश के भावी नागरिकों को ऐसी शिक्षा दे जो उन्हे समाज में प्रतिष्ठित होने में सहायता प्रदान करें व्यवसाय में सहायता प्रदान करें तथा अपने उत्तरदायित्व की भावना का विकास करें।

शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक की भूमिका–

हमारी शिक्षा पद्धति पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है और इसका ध्येय पुर्ननिर्धारित करना पडेगा शिक्षा की पद्धति की सफलता अन्ततोगत्वा अध्यापक पर निर्भर करती है। विदेशी शासन के अन्तर्गत उसे नाम मात्र की सैद्धान्तिक स्वतंत्रता थी और वह समाज से पृथक था। विद्यालय और समाज के बीच इस पृथक्करण के कारण ही शिक्षा में लोगों की दिलचस्पी कम होती गयी। एक अध्यापक को पहले समाज में अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी पडेगी, तब वह समाज में मान्यता प्राप्त कर सकता है। उसका कार्यक्षेत्र केवल विद्यालय में ही सीमित नही करना चाहिये और सामान्यजन के शिक्षित करने का कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए।

नैतिकता का विकास–

विकसित समाजवादी नैतिकता व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में मानव चेतना, भ्रातृत्व लोकहित, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वतंत्र जनतान्त्रिक सहयोग, मानव के उत्थान तथा व्यक्ति की मर्यादा के आधार पर नयी दिशा प्रदान करेगी। व्यक्तित्व की मर्यादा लोकहित की भावना से प्रेरित उदार मानवीय दृष्टिकोण तथा उसके क्रियात्मक रूप जनसेवा की भावना उत्तरदायित्व वृत्ति विश्वास और विषम परिस्थितियों में भी सामाजिक अन्यायो के विरूद्ध संघर्ष करने की शक्ति में निहित होगी।

स्त्री शिक्षा–

आचार्य जी भीतरी समाजवादी के जनक थे। उनके अनुसार जनतांत्रिक समाज में स्त्री पुरूषों की समानता अत्यन्त अनिवार्य और न्यायोचित है। इनकी असमानता अमानवीय है और स्त्री जाति का सांस्कृतिक पिछडेंपन उन्नति के बाधक है। स्त्री जाति की उत्साह पूर्ण क्रियाशीलता के बिना कोई भी महान सामाजिक परिवर्तन सम्भव नही।

निष्कर्ष–

पिछले अध्याय में वर्तमान शिक्षा के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में आचार्य नरेन्द्र देव के शैक्षिक विचारों की विवेचना की गयी है। इस अध्याय में उपर्युक्त के सम्बन्ध में निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा रहा ळें

1. **पाठ्यक्रम की रूपरेखा–**

   आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार पाठयक्रम में ऐसे विषयों का समावेश किया जाय जिससे समाज में जन चेतना की भावना को विकसित किया जा सके। उन्होने यह भी बताया कि भूत के आधार पर ही वर्तमान का निर्माण करने वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए।

2. **मूल्यों की शिक्षा–**

   आचार्य जी ने सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्येां को प्रधानता दी है।

3. **शिक्षा का महत्व–**

   आचार्य जी ने शिक्षा की विशुद्ध उपयोगिता की दृष्टि से देश की सामाजिक सेवाओं का निरन्तर विस्तार बताया है।

4. **वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा–**

   आचार्य जी के अनुसार वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा का निरन्तर प्रसार और वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रगति होनी चाहिये परन्तु विज्ञान का तुच्छ स्वार्थो की सिद्धि में दुरूपयोग न किया जाय, बल्कि उसे सामाजिक हित कार्य में नियोजित किया जाये।

5. राष्ट्रीय प्रगति के लिये शिक्षा–

आचार्य जी ने राष्ट्रीय विकास के लिये उच्च कोटि की वास्तविकता और युक्तिपूर्ण विचार की आवश्यकता बतायी है।

6. पद्दलित जनता के लिये शिक्षा–

आचार्य जी का कहना था कि समाज में ऐसी गतिशीलता हो जिससे पद्दलित जनता के जीवन का उत्थान हो सके।

7. जनशिक्षा की आवश्यकता–

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिये आचार्य जी की जनता को सहकारिता के महत्व से अवगत कराना चाहते है उनके अनुसार जन साधारण को ऐसी शिक्षादी जानी चाहिये जिससे उनमें वर्तमान समस्याओं के गंभीर अध्ययन और समाज की नवीन प्रवृत्तियों को समझने की जागरूकता आ सके।

8. शिक्षा पद्धति

आचार्य जी के अनुसार शिक्षा पद्धति की सफलता अन्ततोगत्वा अध्यापक पर निर्भर करती है। इसलिये शिक्षक और शिक्षार्थी में निकट सम्बन्ध होना चाहिए। इसके लिये उन्होने 'टयूटोरियल पद्धति' को लाभदायक बताया है।

9. अनुशासन–

आचार्य जी विद्यार्थियों में आत्म संयम के द्वारा आत्मानुशासन स्थापित करने पर बल दिया है।

10. शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक की भूमिका–

आचार्य जी के अनुसार विद्यार्थियों के मानस का निर्माण करना, उनके चरित्र का विकास करना तथा उनमें जनतांत्रिक भाव भरना अध्यापक का कर्तव्य है।

11. शिक्षा का विभिन्न अवस्थाओं में आवश्यकता–

आचार्य जी के अनुसार शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं में एकता होनी चाहिये क्योंकि एक स्तर का प्रभाव दूसरे स्तर पर पडता है।

12. विद्यार्थियों को स्वावलम्बन की भावना का विकास–

आचार्य जी का कहना है कि हमे विद्यार्थी को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे उसमें स्वावलम्बन की भावना का विकास हो सके।

13. विश्व शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की शिक्षा–

आचार्य जी के अनुसार हमे जनता में विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना चाहिए।

14. शिक्षा का माध्यम–

आचार्य जी के अनुसार विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी होना चाहिए।

15. स्त्री शिक्षा–

आचार्य जी स्त्रियों के लिये भी पुरूषों के समान शिक्षा में समान अवसर प्रदान करने के लिये कहा है।

सुझाव

आचार्य नरेन्द्र देव ने छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिये पाठयक्रम में विभिन्न क्रियाओं को शामिल किये जाने का सुझाव दिया। उन्होने आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया। उनके अनुसार महिलाओं को शिक्षा में पुरूषों के समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षा में छात्र केन्द्रित दृष्टिकोण अपनाये जाने पर सुझाव दिया है। उन्होने यह भी बताया है कि शिक्षा के द्वारा विश्व बन्धुत्व को बढाया जा सकता है। अर्थात राष्ट्रीय एकता अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना पर बल दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- लाल रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 2005
- सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- भटनागर, आर.पी. भटनागर मिनाक्षी, शिक्षा अनुसंधान, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, 2005
- शर्मा, आर0 ए0, फण्डामेन्टल्स आफ एजूकेशनल रिसर्च, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1985
- बुच एम0बी0, फिफथ सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशनल वाल्युम–2 एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली 1888–92
- पाठक एवं त्यागी, शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2
- महरोगा, सुखिया एस0पी0– शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- गुप्ता एस0पी0: भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

16.

भारतीय परंपरा में जल एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डा॰ शालिनी भारद्वाज
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
विवेकानन्द कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अलीगढ़

जल एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

भारतीय परंपरा में वृक्षों को देवता माना गया है। भारतीय आयुर्विज्ञान के अनुसार विश्व में कोई भी वनस्पति ऐसी नहीं है जो औषधि ना हो। सम्भवतः इसलिए श्वेताश्वरोपनिषद में वृक्षों को साक्षात ब्रह्म के समान माना गया है। वृक्षों के प्रति ऐसा प्रेम एवं अनुराग शायद ही किसी अन्य देश की संस्कृति एवं परंपरा में मिलता हो जहां वृक्ष को पुत्र से भी उच्च दर्जा दिया गया है एवं पूजा की जाती है। वहां वृक्षों को काटने की बात सोची भी नहीं जा सकती है। जातक कथाओं में तो वृक्षों को हमारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कल्पवृक्ष के रूप में कल्पना की गई है। जबकि वाराहपुराण में भी बताया गया है कि जो पीपल, नीम या बरगद का एक, अनार या नारंगी का दो, आम के पांच एवं लताओं के दस वृक्ष लगाता है, तो वह कभी नरक में नहीं जाता। ऐसा कहा जाता है कि जिस घर में तुलसी की नित्य पूजा होती है, उसमें यमदूत भी नहीं आते। वृक्षों की तरह ही पशु पक्षियों की सुरक्षा की भावना भी भारतीय परंपरा में युगों–युगों से निहित है, यही कारण है कि हिंसक एवं अहिंसक तथा विषधर जीव–जन्तुओं को भी किसी न किसी देवता का वाहन बनाकर श्रेष्ठता प्रदान करते हुए उनकी सुरक्षा एवं संरक्षण का प्रावधान किया गया है। यही कारण है कि पशु–पक्षियों की भी पूजा का विधान बनाया गया है। गाय एवं बैल तो भारतीय संस्कृति की पहचान है। बाघ, शेर, चीता, हाथी, चूहा, गरुण, सर्प कच्छप, हंस, उल्लू आदि छोटे एवं बड़े हिंसक एवं अहिंसक सभी जीव जंतुओं का सम्बन्ध देवी देवताओं से उनके वाहन के रूप में जोड़कर उन्हें सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करने की जो उदान्त भावना भारतीय परंपरा में है वह अन्यत्र कहां।

भारत में वृक्ष पूजा की परंपरा की पुष्टि सिंधु घाटी की सभ्यता में भी मिलती है। सिंधु घाटी से शप्तमुद्राओं पर वृक्ष पूजा के दृश्य चित्रित हैं। मौर्य काल के श्री चक्रों पर भी सघन

वृक्षों से घिरी श्री लक्ष्मी जी को चित्रित किया गया है। विदिशा से प्राप्त एक शिल्प पर कल्पवृक्ष का मनोहर दृश्य अंकित है, जो कोलकाता के इंडियन म्यूजियम में है। वेदिका से मंडित इस वृक्ष को श्री वृक्ष कहकर सम्बोधित किया गया है।

पर्यावरण संरक्षण में यज्ञ भी अहम भूमिका निभाता है। और भारत में यज्ञ करने की परंपरा प्रागैतिहासिक काल से हो रही है। हम जानते हैं कि यज्ञ में जो हवन किया जाता है उसमें औषधीय पदार्थों का ही प्रयोग किया जाता है, जिसका धुंआ वातावरण में व्याप्त होकर पर्यावरण को शुद्ध करने में अहम भूमिका निभाता है। इन औषधीयों के साथ घी आदि के धुएं से वायुमंडल को संक्रमण मुक्त करते हैं। इससे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश की शुद्धि होती है, जिससे मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। यज्ञ के दौरान आग में जो घी डाला जाता है वह समाप्त नहीं होता, अपितु परमाणुओं के रूप में आस–पास के वातावरण में फैल जाता है। हवन में जो कुछ भी डाला जाता है वह परमाणुओं में टूटकर संपूर्ण वायुमंडल को शुद्ध कर देता है। शक्कर के धुएं में भी वायु को शुद्ध करने की क्षमता होती है। यज्ञ से वर्षा प्रदान करने वाले बादलों की भी उत्पत्ति होती है। वेदों में भी यज्ञ हवन क्रिया से व्याधि एवं प्रदूषण निवारण की स्पष्ट व्याख्या की गई है। प्रकृति देवता की पूजा का एकमात्र माध्यम अग्निहोत्र को ही माना गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ द्वारा शुद्ध एवं स्वच्छ वातावरण का निर्माण होता है। यज्ञ से वातावरण संशोधित होता है।

आज प्राकृतिक तत्वों के दोहन एवं शोषण का आलम यह है कि जल, जंगल, जीव, जमीन एवं जीवन के लिए घोर संकट उत्पन्न हो गया है। भावी पीढ़ी के लिए भी ये प्राकृतिक संसाधन बचेंगे या नहीं यह सोचनीय एवं चिन्तनीय बात हो गई है। इन सब के चलते निकट भविष्य में मानव सभ्यता का अंत अभी से परिलक्षित होने लगा है। प्रकृति में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है, जिसके चलते हमारी धरती जीवन चक्र भी समाप्त होता जा नजर आ रहा है। प्रकृति में बढ़ते असंतुलन के कारण बाढ़, सूखा, भूस्खलन, मृदा अपर्दन, मरुस्थलीकरण भूकम्प, सुनामी, ग्लोबल वार्मिंग एवं जलवायु परिवर्तन जैसी प्रलंयकारी प्राकृतिक आपदायें उत्पन्न होकर हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए तत्पर हैं। हम ईश्वर की पूजा करते हैं, भगवान में भ=भूमि, ग=गगन, व=वायु, अ=अग्नि, न=नीर की अवधारणा छिपी हुई है। अर्थात हमारे प्रकृति के मूल पांच तत्वों क्षितिज, जल, पावक, गगन, एवं समीर की ही पूजा भगवान के रूप में करते हैं, और इस तरह भगवान की पूजा के रूप में प्रकृति के मूलभूत पांच तत्वों की रक्षा के लिए एवं संरक्षण के लिए पूजा करते हैं। पर्यावरण संरक्षण के प्रति इतनी उत्कृष्ट संकल्पना हमें कहीं नहीं दिखाई पड़ती है

वर्तमान स्थिति में पर्यावरण की इस सुदीर्घ एवं अति प्राचीन परम्परा को आधुनिकता की आग ने भारी नुकसान पहुंचाया है। दोहन और शोषण, वैभव एवं विलास की रीति, नीति, औद्योगीकरण ने पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। फलतः जीवन भी संकटग्रस्त है। सब

और विपन्नता है। प्राकृतिक आपदाओं का क्रूर तांडव है। इन दिनों मनुष्य द्वारा वनस्पति जगत के साथ जो व्यवहार किया जा रहा है अपेक्षा मात्र न रहकर अनौचित्य और अत्याचार की सीमा में जा पहुंचा है। वनों की कटाई के कारण वन क्षेत्र निरंतर घटते जा रहे हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि पर्यावरण संतुलन एवं जीवन रूपी रथ चक्र को इसी ढंग से गतिमान रखने के लिए समूचे भूभाग में 33 प्रतिशत क्षेत्र में वृक्ष वनस्पतियों का होना अनिवार्य है।

परंतु आज स्थिति अत्यंत विस्फोटक हो गई है। अब मात्र 10 प्रतिशत भूमि ही सघन वनों से आच्छादित रह गई है। अपने देश में कुछ दशकों पूर्व तक 70 प्रतिशत भूभाग वनों से आच्छादित था। सन 1854 तक कटते–कटते 40 प्रतिशत रह गया सन 1952 में यह घटकर 22 प्रतिशत तक पहुंच गया और आज मात्र 19.5 प्रतिशत फ़ीसदी भूभाग में ही जंगल बचे हैं। अनिवार्य पर्यावरण संतुलन सीमा से यह तेरह प्रतिशत कम है। इस संदर्भ में सन 1989–91 की अवधि में सैटेलाइट की सहायता से किए गए अध्ययन से यह तथ्य उजागर हुआ है कि देश में अब कुल छह लाख चालीस हजार एक सौ सात वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ही वन रह गए हैं जो देश के कुल भूभाग का मात्र 19.5 प्रतिशत है। मनुष्य ने थोड़े बहुत जो वृक्षारोपण किये भी हैं, उनसे अभी तक मात्र 1.1 प्रतिशत भूभाग को ही ढका जा सका है।

प्राय हमको इसका एहसास नहीं रहता, किंतु जब कभी कहीं सूखा, अकाल, भूकम्प, अतिवृष्टि, तूफान, भूमिस्खलन अथवा प्रदूषण जन्य कोई भारी त्रासदी सामने आती है तो हम सहसा चौंक उठते हैं और कहने लगते हैं कि पर्यावरण में कोई भयंकर संकट उपस्थित हुआ है। पहले कभी ऐसा होता था तो उसे देव इच्छा कहकर संतोष कर लेते थे। आज भी हम जान–माल के नुकसान को तो आंकने की कोशिश कर लेते हैं किंतु भूल जाते हैं कि पर्यावरण में असंतुलन आता है या विकृतियां आती हैं, तो मानव के मन और व्यवहार पर कितना दबाव पड़ता है। वनों के दुरुपयोग से जो संकट आते हैं उनकी तो वह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समायोजन से क्षतिपूर्ति कर लेता है, पर मनुष्य के द्वारा किए प्रदूषण और पर्यावरण विकृति को प्रभाव शून्य करना सरल कार्य नहीं। पर्यावरण संरक्षण के प्रयास से धीरे–धीरे मनुष्य को अपनी गलतियों का एहसास होने लगा है, उसे समझ में आ गया है कि यदि प्रकृ ति है तो वह है, और अगर प्रकृति नहीं रहेगी तो उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा। इसलिए मनुष्य अपनी तरफ से हर संभव प्रयास कर रहा है कि वह अपनी संरक्षण की भारतीय परम्परा को निभा सके। सरकार द्वारा भी कई कड़े कानून बनाए जा रहे हैं, अनेक योजनाएं बनाई जा रही हैं जिससे पर्यावरण को संरक्षित किया जा सके। भारत सरकार द्वारा सन 1972, 1983, 1986 एवं 1991 में वन्य जीव संरक्षण कानून बनाया गया प्रकृति के अन्य घटकों जैसे वायु, जल, मृदा, इत्यादि के संरक्षण हेतु जल प्रदूषण नियंत्रण, वायु प्रदूषण एवं पर्यावरण अधिनियम जिसके अंतर्गत विभिन्न अवयवों को शामिल किया गया है, के संरक्षण हेतु अधिनियमों को बनाया गया है एवं इन नियमों को लागू कर पर्यावरण के संरक्षण में सरकारी

तंत्र प्रयासरत है। इसके अलावा सरकार द्वारा अनेकों कानून पास किए गए जिनका पालन भी किया जा रहा है। अगर इन नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए तो इनके अंतर्गत अपराधियों को दंड का प्रावधान भी है, किंतु भारतीय दंड संहिता एवं सरकारी तंत्र की मौजूदा व्यवस्था के कारण बहुत कम लोगों को दंड मिल पाता है।

आगे उठाए जा सकने वाले कदमः सिर्फ सरकार द्वारा प्रयास करने से कुछ विशेष नहीं होगा जब तक की आम आदमी अपनी तरफ से पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए वह कौन सा छोटे से छोटा उपाय अपनी तरफ से कर सकता है, का प्रयास न करें। हर पुरुष, स्त्री और बच्चों को अपनी तरफ से प्रयत्न करने होंगें। एक दूसरे को पर्यावरण संरक्षण का महत्व समझकर इसे जन आंदोलन का रूप लेने के लिए जनभागीदारी नितांत आवश्यक है।

आज का युग वैज्ञानिक युग माना जाता है, हर तरफ नई–नई खोजें और आविष्कार हो रहे हैं, इन खोजों/आविष्कारों का सही मायने में पर्यावरण के संरक्षण में उपयोग करना चाहिए ताकि पर्यावरण को संरक्षित किया जा सके। इन आंदोलनों में टीवी, रेडियो, समाचार, पत्रों का बखूबी इस्तेमाल किया जा सकता है। विज्ञापनों द्वारा जनसाधारण को जागृत किया जा सकता है व उनसे अपील की जा सकती है कि वह अपना सहयोग देकर हमारी पारम्परिक धरोहर को जीवित रखें। छात्र–छात्रों का इसमें सहयोग लिया जा सकता है, उन्हें पर्यावरण के महत्व व हानियों से अवगत किया जा सकता है। इस तरह हम जन–जन तक बात फैला सकते हैं कि पर्यावरण संरक्षण मानव जीवन के लिए कितना महत्वपूर्ण है। वृक्षारोपण, प्राकृतिक वनसंरक्षण जैसे कार्यों को प्रोत्साहन देकर वर्तमान पीढ़ी को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक करके हम अपनी धरोहर को बचा सकते हैं।

उपसंहार

हमें यह ज्ञात है कि पर्यावरण संरक्षण हमारी प्राचीन परंपरा रही है परंतु आधुनिकता की आग में इस भारी नुकसान पहुंचाया है। जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था प्रकृति हम सभी की आवश्यकता तो पूरी कर सकती है, किंतु किसी एक के लालच को भी पूरा नहीं कर सकती है। दोहन, शोषण, और वैभव–विलास की रीति नीति ने पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। फलतः जीवन भी संकटग्रस्त है, सब ओर विपन्नता है। प्राकृतिक आपदाओं का क्रूर तांडव है। समाधान की खोज के इन पलों में सार्थक निदान के लिए जरूरी है कि हम अपनी विरासत को संभाले। पर्यावरण संरक्षण की टूटी–बिखरी कड़ियों को पुनः जोड़ें। हम में से प्रत्येक के लिए यह आवश्यक है कि मन, कर्म, वाणी से इस सत्य को स्वीकार करें एवं पर्यावरण के संरक्षण में अपना योगदान दें, जिससे पर्यावरण संरक्षण को बल मिलेगा एवं पारिस्थितिकी संतुलन बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

- श्रीवास्तव – डॉ राजीव कुमार – प्राचीन भारतीय धर्म एवं समाज, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन वाराणसी ।
- श्रीवास्तव – डॉ राजीव कुमार – पर्यावरण, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन वाराणसी ।
- हमारी धरती – पत्रिका ।
- गोयल – डॉ एम0 के0 – पर्यावरण शिक्षा।
- शर्मा – डॉ आर0 के0 – पर्यावरण शिक्षा।
- उपाध्याय – डॉ राधावल्लभ – पर्यावरण शिक्षा।
- इन्टरनेट सोर्स।

17.

मूल्यों पर आधारित शिक्षा

डॉ0 शुभा सिंह
असि0 प्रो0–समाजशास्त्र
माता भगवती देवी राजकीय महिला महाविद्यालय,
आंवलखेड़ा, आगरा

शिक्षा का हमारे जीवन में अत्यधिक या यूँ कहे कि सर्वाधिक महत्व होता है। यह किसी देश की विकास प्रक्रिया का अभिज्ञा अंग है इसलिए मानव समाज में इसे उच्च प्राथमिकता दी गई है। मनुष्य द्वारा अपनी क्षमताओं को उपयोग में लाना सीखना तथा अज्ञानता के अंध ाकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर प्रगतिशील रहना ही शिक्षा है। यही वह माध्यम है जिससे मनुष्य अपने जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास कर पाता है। जब समुचित विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होता है तो यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि शिक्षा नीति में सुधार की आवश्यकता है। हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का पतन जिन तरह से दृष्टिगोचर होता है उससे प्रतीत होता है कि शिक्षा पद्धति में परिवर्तन वर्तमान समय की सर्वोच्च प्राथमिकता है। शिक्षा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से मनुष्य की रुचियों, समताओं, योग्यताओं और सामाजिक मूल्यों को आधार बनाकर आवश्यकतानुसार स्वतंत्रता देकर उसका सर्वांगीण विकास करती है। इसके विपरीत आधुनिक समाज में शिक्षा जीविका कमाने का साधन मात्र बनकर रह गई है संस्कार, नीतियाँ और परंपराएं बहुत पीछे छूट गये हैं वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमें धनी तो बना सकती है परन्तु यह यथार्थ और व्यवहारिक ज्ञान से बहुत दूर है। स्वकेंन्द्रित व्यक्तित्व के साथ प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्म और भावनाओं से बिल्कुल अनभिज्ञ है, अपने विकास और प्रगति के नाम पर वह प्रकृति व हर उस चीज का शोषण करने पर आमादा है जो उसके मार्ग में बाधा है या जिसके नष्ट होने से उसे कोई लाभ प्राप्त हो सकता है। इस शिक्षा का उद्देश्य रोज़ी–रोटी कमाना है, मानवीय संवेदना से उसका कोई संबंध नहीं होता। ऐसे समाज में मानवीय संवेदनाएं कहीं लुप्त सी हो गई हैं और उनका स्थान ले लिया है उच्च महत्वाकांक्षाओं ने। आज हमारे पास सुख–सुविधाएं पहले से कहीं अधिक हैं, परन्तु जीवन में स्थिरता तथा शान्ति का पूर्णतः अभाव नजर आया है। शिक्षा वह उपकरण है जो हमें मात्र जैविक प्राणी से एक इंसान बनाती है, वह इंसान जो इंसानियत के गुणों से युक्त है। महात्मा गांधी जी ने कहा

था, कि वाकई शिक्षित होने से अच्छा है अच्छा शिक्षित होना और इस प्रकार की शिक्षा सिर्फ चंद लोगों को होना काफ़ी नहीं है उसे करोड़ों लोगों में फैलाना चाहिए। यह तभी संभव है जब हम अपना समय इस कार्य में दें। यदि हम विश्वभर में आगे बढ़ने की इच्छा रखते हैं, यदि हम अपना कल संवारना चाहते हैं, यदि हम अपने स्वप्न को हकीकत में बदलना चाहते हैं तो यह एक मात्र उपाय है कि हम इंसानियत के गुणों को स्वयं आत्मसात करें और दूसरों में भी इन गुणों को विकसित करने का प्रयास करें। शिक्षा केवल आजीविका का साधन नहीं है, यह एक जरिया है। जिससे हम अपने जीवन को बेहतर बना सकते हैं, शिक्षा एक आवश्यकता है परंतु उसे सही अर्थों में समझना भी जरुरी है।

मेरे दृष्टिकोण से शिक्षा ज्ञान की, संस्कृति् संरक्षण की तथा सफलता की संवाहक है। यह केवल सफलता के लिए आधार ही तैयार नहीं करती बल्कि यह हमारे अंदर सामाज़िक चरित्र, ताकत, आत्मसम्मान, आचार–विचार तथा नैतिक मूल्यों जैसे महत्वपूर्ण गुणों का भी संचार करती है। बिना किसी अपेक्षा के मिलने वाला प्रेम और मूल्य वह महानतम उपहार है जो शिक्षा हमें प्रदान करती है। लेकिन जब हम शिक्षा की बात करते हैं तब हमारे मस्तिष्क में विचार आता है गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और भाषा संबंधी पाठ्यक्रमों का। माता–पिता एवं शिक्षकों के रुप में हमें उस शिक्षा पद्धति को प्राथमिकता देनी चाहिए जो बच्चों में मूल्यपरक गुणों को विकसित कर सकें।

मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता :– आजकल समाज में हम लोग आए दिन ऐसी घटनाओं के बारे में सुनते रहते हैं जिससे यह पता चलता है कि मनुष्य में संवेदनशीलता दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है, जैसे हिंसक घटनाएं, बढ़ते हुए वृद्धाश्रम, और बड़ो एवं महिलाओं के प्रति सम्मान न होना। आजकल झूठ हमारे जीवन में एक आदत की तरह सम्मिलित हो गया है। अधिक से अधिक आवश्यकताओं को पूरा करने की चाहत में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार और ईष्या की भावना ने इंसान को इंसान का दुश्मन बना दिया है। जबकि एक सामाजिक प्राणी होने के लिए हमारे अंदर सही करने की हिम्मत एवं दृढ़ निश्चय होना आवश्यक है। लेकिन यह अचानक किसी व्यक्ति में विकसित नहीं किया जा सकता ऐसा करने के लिए प्रशिक्षण प्रारम्भिक जीवन में ही दिया जाना चाहिए अतः मूल्यों की शिक्षा हमारी शिक्षा प्रणाली का एक अनिवार्य अंग हो यह आवश्यक है। औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त विद्यालयों में ऐसी गतिविधियाँ होती रहनी चाहिए जिससे बंधुत्व एवं प्रेम की भावना का विकास हो। साथ ही माता–पिता की यह अपेक्षा कि, शिक्षण संस्थाएं ही बच्चों के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व संभाल सकती हैं व्यावहारिक नहीं है क्योंकि हमारे समाज में जिस तरह बेईमानी एवं भौतिक मूल्यों के प्रति आसक्ति बढ़ी है, बच्चे भी उसके प्रभाव से अछूते नहीं हैं। विद्यार्थियों को कठिन परिश्रम, दूसरों का सम्मान, सहयोग, ईमानदार का महत्व तथा

क्षमाशीलता सिखाई जाती है तो माता–पिता को भी यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि बच्चे अपने विकास की प्रक्रिया में अपने माता–पिता को ही अपना आदर्श मानते हैं तो माता–पिता को स्वयं अपने कर्त्तव्यों के प्रति सज़ग एवं अनुशासित जीवन की मिसाल प्रस्तुत करें। आज का युवा अत्यधिक भ्रमित है क्योंकि हम उसके सामने जिन आदर्शों की बातें करते हैं वास्तव में हम स्वयं उन आदर्शों को अपनाते नहीं है। आज का युवा मात्र अपने लिए, सुख–साधन ढूँढने तक सीमित रह गया है। आलीशन कारें, पाँव में मंहगे जूते, आधुनिक मोबाइल तथा शरीर पर मंहगे ब्राण्डेड कपड़े यही आज की युवा पीढ़ी की पहचान बन गये हैं तो क्या हमें यह मान लेना चाहिए कि दो हाथ दो पैरों वाला मानव ही इंसान है– कदापि नहीं। ऐसा नहीं है कि भौतिक सभ्यता को अपनाना गलत है बल्कि जीवन मूल्यों को भुलाकर अगर हम भौतिक सुख–साधन प्राप्त करते है तो वह गलत है। हमें समय के साथ अपने आप में परिवर्तन लाना चाहिए परन्तु उसके साथ हमें अपने माता–पिता, प्रकृति, शिक्षक तथा राष्ट्र के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी को नहीं भूलना चाहिए। एकलव्य, भरत, श्रवण कुमार जैसे चारित्रिक गुणों के उदाहरण हमारी संस्कृति एवं शिक्षा की आधारशिला हैं। रामचन्द्र जी ने जीवन मूल्यों को आत्मसात करके ही अपनी चारित्रिक विशेषताओं पर विश्वास रख कर ही रावण को पराजित किया था अतः समय की पुकार है कि युवा पीढ़ी उन भरत, उन एकलव्य तथा उन रामों की जो भौतिकता का ही सहारा न लें बल्कि जीवन मूल्यों एवं चारित्रिक विशेषताओं का भी विकास करना सीखें। मूल्यपरक शिक्षा हमारे जीवन को निम्न रुपों में प्रभावित कर सकती है।

- यह हमारी अगली पीढ़ी को उनके भविष्य की जिम्मेदारियों के प्रति जागरुक तथा सजग बनाकर उन्हें समाज व देश की तरक्की में सकारात्मक रुप से भागीदार बना सकती है। इस प्रकार वे न केवल अच्छे माता पिता बन सकते हैं बल्कि अच्छे नागरिक भी बन सकते हैं।

- मूल्य परक शिक्षा इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि बहुत से माता पिता अपने बच्चों को मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षण संस्थाओं पर ही निर्भर हैं। ऐसा इसलिए है कि माता–पिता दोनों ही कामकाजी हैं और बच्चों के साथ पर्याप्त समय व्यतीत नहीं कर पाते अतः सही एवं गलत का निर्णय बच्चों को स्वयं ही करना होता है। कहीं कहीं पर माता–पिता में से केवल एक ही बच्चें की परवरिश करता है तो बच्चे के सामने भूमिका आदर्श का अभाव रहता है।

- दिन प्रतिदिन की गतिविधियों में विद्यार्थी वर्तमान समय में हिंसा, बेईमानी तथा अन्य सामाजिक समस्याओं को संचार माध्यमों के द्वारा वास्तविक जगत में देखता है।

शिक्षण संस्थाओं में नकल, दो अलग गुटों में झगड़े और ऐसी ही अनेक समस्याओं को कुछ सीमा तक मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा नियंत्रण में लाया जा सकता है।

- कहीं–कहीं पर सफलता प्राप्त करने के लिए लोग समाज के ऐसे उदाहरणों को आदर्श मान लेते हैं जो कि दिग्भ्रमित करने वाले होते हैं जैसे राजनेता, धर्मगुरु और कभी–कभी परिवार भी बच्चों में एकता की जगह अनेकता का पाठ पढ़ाते हैं। विद्यार्थियों को ऐसे शिक्षकों और ऐस शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है जो उनमें देशभक्ति, सदाचार, अनुशासन आदि के गुणों को पल्लवित कर सकें।

- मूल्यपरक शिक्षा का एक गुण यह भी होता है कि यह जीवन पर्यन्त हमारे साथ रहती है अन्य विषय जैसे गणित, विज्ञान आदि जब हम विद्यार्थी जीवन में सीखते हैं तो उसका बहुत कम हिस्सा ही हमें याद रहताहै परन्तु नैतिक शिक्षा जब एक बार जीवन में उतार ली जाए तो फिर वह हमारे व्यक्तित्व का एक अंश बन जाती है और हम जीवनभर उसे नहीं भूलते।

मूल्य परक शिक्षा के तत्वः– मूल्य परक शिक्षा किसी भी व्यक्ति का तीन स्तरों पर विकास करती है फिर वह चाहे किसी भी लिंग का हो, या आयु का हो परन्तु सबसे ज्यादा वह एक बच्चे को प्रभावित करती है। शिक्षा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विकास करती है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण चारित्रिक गुण ही होते हैं। मनुस्मृति में भी लिखा है कि 'ऐसा व्यक्ति जो सदचरित्र हो उसे वेदों का ज्ञान भले ही कम हो, उस व्यक्ति से कहीं अच्छा है जो वेदों का पंडित होते हुए भी शुद्ध जीवन व्यतीत न करता हो। तत्कालीन समाज में प्रत्येक बालक के चरित्र का निर्माण करना उस युग में आचार्य का प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता था। इसी कारण प्रत्येक पुस्तक के पन्नों पर सूत्र रुप में चरित्र संबंधी आदेश लिखे रहते थे तथा समय समय पर इतिहास के ऐसे उदाहरण जो महापुरुषों के जीवन के प्रेरक प्रसंग ये विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किए जाते थे। डॉ0 आलेकर ने ठीक ही लिखा है कि "हमारे पूर्वजों ने प्राचीन युग के साहित्य की विभिन्न शाखाओं के ज्ञान को सुरक्षित ही नहीं रखा अपितु आपने यथाशक्ति योगदान द्वारा उसमें निरंतर वृद्धि करके उसे मध्य युग तक भावी पीढ़ी को हस्तांतरित भी किया है।" अस्तु आवश्यकता है कि भारत की नयी शिक्षा नीति के अन्तर्गत देश के प्रत्येक नागरिक को चरित्रवान और निष्ठावान बनाने पर अत्यधिक बल दिया जाए, पाठयक्रम में वेद, उपनिषद, श्रीमद्भागवत्, गीता और रामचरितमानस जैसे ग्रन्थों को सम्मिलित किया जाएं। ऐसा करने से हम मनुष्य में हम निम्न गुणों को विकसित कर सकते हैं –

- विद्यार्थियों को बताया जाना चाहिए कि नकल करना तथा बेईमानी करना गलत है और यह तुम्हें भविष्य में अंधकार की ओर लेकर जाएगा। यदि हम एक विद्याथ्री के रुप

में नकल करते हैं तो हम सिर्फ अपना नुकसान करते बल्कि इसका परिणाम पूरे समाज के लिए हानिकारक होता है। अतः किसी भी क्षेत्र में ईमानदारी का कोई पर्याय नहीं।

- अधिकाशतः हम जब किसी के लिए प्रेम दर्शाते हैं तो बदले में हम भी प्रेम पाने की अपेक्षा रखते हैं लेकिन यह प्रेम का वास्तविक अर्थ नहीं है वास्तविक अर्थ तो यह है कि प्रेम और उदारता हिंसा को खत्म करके समाज को एक बनाने का कार्य करते हैं। अतः हिंसा को दूर करने का एक मात्र उपाय दया और प्रेम ही है अन्य कोई नहीं।

- सफलता का मूल मंत्र कठिन परिश्रम होता है जब हम छोटे थे तो सुनते थे कि सफलता के पीछे एक प्रतिशत प्रेरणा होती है और 99 प्रतिशत पसीना परन्तु आजकल बहुत से विद्यार्थी नकल करने पर विश्वास करती है और इस जुगत में लगे रहते हैं कि कैसे कम से कम प्रयत्न करके आगे बढ़ा जाए। इस प्रकार की सोच ने मेहनत और परिश्रम का महत्व खो दिया है। यह सोच बदलने की आवश्यकता है।

- आज के समाज, में प्रतिस्पर्धा अत्यधिक बढ़ गई है। आगे बढ़ने की होड़ में मनुष्य को दूसरों को कुचल देने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं है। दूसरों के हितों का हनन करके जो सफलता हम प्राप्त करते हैं वो हमको कुछ समय के लिए सफल होने का आभास दिला सकतती है लेकिन इसके दूरगामी परिणाम पूरे समाज के पतन के रुप में सामने आते हैं अतः हमारे अन्दर सबके प्रति सम्मान का भाव जगाना आवश्यक है।

- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसकी उन्नति सहयोग की बुनियाद पर निर्भर है। जिस प्रकार बूंद–बूंद से सागर बनता है, ईंट से ईंट जोड़कर विशाल भवन बनता है उसी प्रकार अनेक व्यक्तियो के सहयोग से ही समाज और राष्ट्र की समृद्धि संभव हो सकती है। सहयोग की आदतें मनुष्य में मैत्री भावना का विकास करती है। सहयोग की भावना की शुरुआत ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आधार है। इस संदर्भ में मदर टेरेसा ने भी कहा है, "आप सौ लोगों की सहायता नहीं कर सकते तो सिर्फ एक की ही सहायता कर दें।"

- परोपकार में जीवन की सार्थकता है राजा भर्तृहरि ने नीति शतक में लिखा है कि 'सूर्य कमल को स्वयं खिलाता है। चंद्रमा कुमुदिनी को स्वयं विकसित करता है। बादल स्वयं बिना कहे जल देता है अर्थात् प्रकृति का हर तत्व दूसरों की भलाई बिना कहे ही करता है यही वजह है कि हमें भौतिक जगत का प्रत्येक पदार्थ मनुष्य के उपकार में लगा दिखाई देता है इसी प्रकार मूल्यपरक शिक्षा परोपकार, दानशीलता और उपकार की भावना को उत्पन्न करके मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बना

सकती है। यह शिक्षा यदि पाठ्यक्रम का अंग बने तो, भुखमरी, आवास, युद्ध तथा दुःख की मात्रा को कम किया जा सकता है।

- जीसस क्राईस्ट ने अपने शत्रुओं को क्षमा करने का संदेश दिया है, शास्त्रों में भी वर्णित है "क्षमा वीरस्य भूषणम्" फिर भी क्षमाशीलता का अभाव वर्तमान समाज में दृष्टिगोचर होता है। अगर देखा जाए तो क्रोध का कारण क्षमाशीलता की कमी होना ही है। अगर स्कूल में यह गुण विद्यार्थी में विकसित हो जाए तो स्कूलों में होने वाले लड़ाई–झगड़े तथा हिंसा पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

- विद्यालयों में यदि ग्रेडिंग व्यवस्था के अंतर्गत 10 प्रतिशत अंक विद्यार्थियों के नैतिक आचरण के आधार पर दिए जाएं तो निश्चित ही इसका प्रभाव विद्यार्थी के ना केवल विद्यालय परिसर के अंदर के व्यवहार बल्कि सामाजिक जीवन में उनके व्यवहार पर भी होगा।

डॉ0 नील हॉक्स ;छमपस भूंमेद्ध जिन्होंने मूल्य आधारित शिक्षा एक आन्दोलन के रुप में स्थापित करने का लिए एक बेवसाइट तैयार की, का कहना है कि यह हमारे विद्यार्थियों को न केवल एक स्कूल के स्तर पर बल्कि सम्पूर्ण जीवन के लिए उन्हें एक सकारात्मक सोच वाले व्यक्तित्व के रुप में स्थापित करत है। ऐसा व्यक्ति न केवल व्यक्ति विशेष को बल्कि पूरे समाज को लाभान्वित करता हैं।

मूल्यों पर आधारित शिक्षा केवल उपकरण ही नहीं बल्कि वर्तमान समाज में एक लक्ष्य है जिसे प्राप्त करके ही हम सफल हो सकते हैं।

शिक्षा प्रणाली को प्रासंगिक बनाने हेतु सुझाव :– आधुनिक शिक्षा प्रणाली, शिक्षा के वास्तविक अर्थ से कुछ अलग धनार्जन तक सीमित होकर रह गई है अतः आज के वातावरण में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो व्यक्ति की बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक, आत्मिक शक्तियों एवं प्रवृत्तियों का पूर्ण रुप से विकास करें। शिक्षा का उद्देश्य तब तक पूर्ण नहं होता जब तक वह व्यक्ति में सामाजिक राजनैतिक नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं मानव मूल्यों का विकास न करें वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक रुप से इन उद्देश्यों को पूर्ण करने में विफल रही है। हमारे मस्तिष्क इतने संकुचित, एकांकी और अनुदार हो चुके है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य ही विलुप्त हो गया है। ऐसे कई सुझाव है जिनको अपनाकर शिक्षा को व्यावहारिकता के निकट लाया जा सकेगा।

- विद्यालय का वातावरण सौहार्द्रपूर्ण, आत्मीयतापूर्ण, तनावमुक्त व सहज हो ना कि कृत्रिम, उकताहटपूर्ण एवं मशीनीकृत। यह कारखाना न होकर ज्ञान का मंदिर बने जहाँ आने की जिज्ञासा हो, भय ना हो। यह तभी संभव है जब शिक्षा प्रदान करने वाले

विद्यार्थियों के शुभचिंतक हों, हितैषी हों। शिक्षा प्रदान करने का कार्य रुचि से किया जाए किसी के ऊपर थोपी न जाए।

- पाठ्यपुस्तकों में विषय ऐसे होने चाहिए जो चाहिए जो शिक्षार्थियों के जीवन की समस्यायें हल करने में व्यावहारिक रुप में सहायक हों। ज्ञान की व्यावहारिकता के साथ यह भी आवश्यक है कि यह नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक एवं व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में समर्थ हों।

- वर्तमान शिक्षा प्रणाली में छात्रों को असीमित पाठ्यक्रम एवं प्रतियोगी परीक्षा प्रणाली ने मात्र पुस्तकों तक ही सीमित कर दिया हैं। शिक्षा का उद्देश्य 'रटन' प्रवृत्ति को बढ़ावा देकर सर्वोत्तम अंक प्राप्त करना मात्र रह गया है, जिससे विद्यार्थियों में विषय को आत्मसात करने की क्षमता संकुचित हो गई है। यही समय है कि निरर्थक पाठ्यक्रमों के बोझ को और न बढ़ाया जाए अन्यथा विद्यार्थी में शिक्षा के प्रति अरुचि, निराशा, हताशा तथा विवशता की भावनाएं उत्पन्न होती है और पढ़ने का उद्देश्य मात्र नौकरी प्राप्त करने की विवशता रह गया है जबकि वास्तविक उद्देश्य कही लुप्त सा हो गया है।

- शिक्षाविदों द्वारा समय–समय पर पाठ्यक्रमों पर विचार–विमर्श करके असीमित पाठ्यक्रम की पुनःविवेचना एवं संशोधन आवश्यक है। ऐसा करने से अनुपयोगी एवं नीरस सामग्री को हटाकर आवश्यकतानुसार संतुलित, व्यवस्थित एवं छात्रोंपयोगी सामग्री को जोड़ा जाना चाहिए। इस प्रकार पाठयक्रम को रोचक एवं परिस्थितियों के अनुरुप उपयोगी बनाया जा सकता है।

- कक्षा में शिक्षण पद्धति में सम्मिलित 'व्याख्यान' द्वारा समझाने के बजाए ऐसी पद्धति विकसित की जाए जो अधिक से अधिक अंतःक्रिया (विद्यार्थी एवं शिक्षक के मध्य) को प्रोत्साहन दें संक्षिप्त प्रश्नोत्तरी के माध्यम से विषयों को समझाया जाए। इससे विषय को समझने में ना केवल आसानी होगी बल्कि कक्षाएं रोचक भी हा जाएंगी।

- एक सुधार यह भी किया जा सकता है कि उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की भाषा सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिए। किसी भी विषय की भाषा जितनी सरल, व्यवस्थित एवं सुगठित होगी उतनी ही वह विद्यार्थियों को आसानी से समझ में आएगी और यह तो एक स्थापित तथ्य हैं कि जो समझ में आता है वह सदैव विद्यार्थी को अपनी ओर आकर्षित करता है। देश–विदेश सी अनुवादित पुस्तकों की भाषा को सुग्राह्य बनाकर विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति बढ़ती अरुचि को उसकी रुचि बनाया जा सकता है।

- यदि हम शिक्षा पद्धति में अन्य संस्कृतियों का अनुकरण भी करते हैं तो नैतिकता एवं मानव मूल्यों के साथ किसी भी प्रकार का समझौता नहीं होना चाहिए क्योंकि यह प्रतीत होता है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में शिक्षा प्रणाली में भी निजी स्वार्थ, बाह्याडम्बर, सँकुचित मानसिकता को बढ़ावा देकर हमने मानवीय मूल्यों को ताक पर रख दिया है। विद्यार्थियों में स्व संस्कृति के प्रति गर्व की भावना जाग्रत करके जन कल्याण एवं देशहित के लिए उन्हें प्रेरित किया जा सकता है।

- समय के साथ अनुकूलन हेतु कक्षा के स्वरुप में, ज्ञान–प्रदान करने की पद्धति में परम्परागत तरीकों के अतिरिक्त आधुनिक तकनीक व आधुनिक संचार के माध्यमों का भी समावेश आवश्यक है। विषय के अनुरुप उपयोगी चलचित्र दिखाकर, पाठ से संबंधित पर्यटन कराकर शिक्षाप्रद कथाओं का नाट्य रुपांतर कर, नृत्य नाटिका, छात्रों द्वारा मंचन आदि गतिविधियां किसी भी विषय को मनोमस्तिष्क में स्थापित करने, समझाने में एक ओर सहायक हैं तो दूसरी ओर मनोरंजनात्मक तथा ज्ञानवर्धक भी।

- किसी विषय के माध्यम से जब विद्यार्थी को ऐसा ज्ञान उपलब्ध कराते हैं तो जो कि सैद्धान्तिक होने के साथ साथ व्यावहारिक भी हो तब विद्यार्थियों को दुर्घटना होने, अग्निकांड होने, डूबने, अपहरण, शारीरिक एवं मानसिक शोषण, यौन शोषण, भूकंप, करंट लगने, श्वांस अवरुद्ध होने जैसे आपातकाल से निपटने की कला आदि का मानसिक एवं शारीरिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है। अतः पाठ्यक्रम में व्यावहारिक एवं उपयोगी विषय वस्तु होना आवश्यक है।

- विद्यालयों में वाद–विवाद प्रतियोगिता के माध्यम से विषय के अंतर्गत पक्ष विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करके उनके अंदर विषय के प्रति सजगता लाई जा सकता है, छोटी–छोटी बातों से उनके आंतरिक विचार जानने काएक सही माध्यम हो सकता है। मासिक, अर्द्धमासिक या साप्ताहिक भाषण प्रतियोगिता, कविता लेखन प्रतियोगिता, आशु भाषण प्रतियोगिता, पेंटिग प्रतियोगिता आदि के माध्यम से उनक कल्पनाशीलता को सृजनात्मक कार्यों में लगाने के साथ–साथ उनकी योग्यता को निखारा भी जा सकता है। यह बच्चों में अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त करने की प्रवृत्ति एवं आत्मविश्वास भी उत्पन्न करने में सहायक हो सकता है।

- एक शिक्षक के रुप में जब हम विद्यार्थी का मूल्यांकन करें तो हमें उनमें किताबी ज्ञान का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए बल्कि एक विद्यार्थी के द्वारा दिए गये उत्तरों में उसकी बुद्धिमता, उनकी रचनात्मकता तथा उनके स्वयं के शब्दों में समझाए गए विषय संबंधित ज्ञान को महत्व देना चाहिए। किताब की रटी हुई भाषा विद्यार्थी की रटने की

शक्ति को बढ़ा सकती है परन्तु उसके ज्ञान को नहीं। अतः उत्तर के अतिरिक्त उत्तर लिखने की कला भी मूल्यांकन का हिस्सा होनी चाहिए। ऐसा करना विद्यार्थी में अवलोकन एवं निरीक्षण को बढ़ावा देगा और उसकी तर्क शक्ति को विकसित करने में सहायक होगा।

- हमारी शिक्षा प्रणाली में मूल्य व्यवस्था का अभाव पाया जाता है जो कि सफल जीवन का एक आवश्यक अंग है अतः हमारे शिक्षण संस्थानों में इस व्यवस्था को यदि जोड़ दिया जाता है तो बहुत सी समस्याओं को कुछ सीमा तक, नियंत्रित किया जा सकता हैं यदि हम अपनी आगे आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ ऐसा नहीं छोड़ सकते तो हम किशोरावस्था में होने वाले अपराध, एम.एम.एम. काण्ड, विद्यार्थी जीवन में वेश्यावृत्ति तथा शैक्षिक तनाव के कारण होने वाली आत्महत्याएं आदि पर नियंत्रण भी नहीं प्राप्त कर सकते। यह हम सबकी जिम्मेदारी है कि हम यह देखें कि देश का भविष्य जिनके हाथों में सौंपा जा रहा है वे इसके योग्य हैं भी या नहीं। केवल प्रमाण–पत्र प्रदान करना ही शिक्षा का मापदण्ड नहीं माना जाना चाहिए, अपितु उच्च कोटि का चरित्र, सर्वोत्तम आचरण, निष्पक्षता, वाक्कला में निपुणता, असीम धैर्य, सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार, क्षमाशीलता, शिष्टाचार, दृढ़ निश्चय, उदारता, सहिष्णुता आदि गुण भी मापदण्ड का दूसरा पक्ष होने चाहिए। उत्तरदायित्व पूर्ण, सुदढ़ एवं सुरक्षित हाथों में ही राष्ट्र का भविष्य निश्चित होकर सौंपा जा सकता है।

18.

वर्तमान परिपेक्ष्य में भारतीय दर्शन और काव्य

डॉ० कोकिल
असिस्टैन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय
दनकौर, गौतमबुद्ध नगर, उ०प्र०

चिन्तन सभ्य सुसंस्कृत व्यक्ति का स्वभाव है। यही दर्शन का मूल है। 'दर्शन' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में केवल एक बार हुआ है– "पशुम् न नष्टम् इव दर्शनाय विष्णायरंददथू विश्वकायम् " यहाँ 'दर्शन' शब्द का अर्थ है – देखने के लिए । संहिता भाग में 'दर्शन' शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है यथा

स दर्शन श्रीरतिथि गृहे गृहे ।

दर्शन शब्द दृश् धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाकर बना हैं। 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम् इस व्युत्पत्ति से जिसके द्वारा देखा जाए वह दर्शन हैं। उपनिषद् के अनुसार 'मनोऽस्य दैवं चक्षु' अर्थात् मनुष्य का मन ही उसकी दैवी आँख हैं इस दैवी आँख द्वारा जो दर्शन होता है, वही वास्तव में दर्शन है । मनु के अनुसार, "सम्यक् दर्शन प्राप्त हो जाने पर मनुष्य को उसके कर्मबन्धन में नहीं डाला जा सकता, जिसको यह दृष्टि प्राप्त नहीं है वे ही संसार के जाल में फँसते हैं

सम्यक् दर्शनसम्पन्नः कर्ममिर्ननिबद्ध्यते।
दर्शनम विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।। (मनु संहिता 6/74)

वस्तुतः युक्तिपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहा जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार, तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम् इसी बात की पुष्टि करता है।

'दर्शन' शब्द का प्रयोग होते हुए भी प्राचीन साहित्य वेद की संहिता ब्राह्मण, उपनिषद् आदि में 'दर्शन' का पारिभाषिक अर्थ नहीं मिलता। सर्वप्रथम महाभारतकार ने दर्शन शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में किया–

"एतद आहुर्महा प्राज्ञाः सांश्यवैमीक्ष दर्शनम"1

तुलसीदास ने 'दर्शन' के लिए ब्रह्मविचार तत्त्व विचार जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।2 दार्शनिक के लिए ब्रह्मज्ञानी, परमार्थ चिन्तक तत्त्वदरसी आदि शब्द प्रयुक्त किए हैं।3 डॉ. भगवानदास ने 'दर्शन' की व्याख्या करते हुए कहा है, ''संसार के मर्म का, जीवन–मरण के रहस्य का, सुख–दुःख के हृदय का, अपने का, पुरुष और पुरूष की प्रकृति का जिस ज्ञान से दर्शन हो जाए वह दर्शन है। मूल शास्त्रों के सार को, तत्त्व को पहचानने की शक्ति हो जाए, सबमें एक ही अर्थ एक ही परमात्मा की विविध, विचित्र अनन्त–कला दिखने लगे, समदर्शिता हो जाए, सब असंख्य मतों, धर्मों रुचियों का विरोध परिहार और सच्चा परस्पर समन्वय हो जाए सब बातों के भीतर एक ही बात देख पड़े, वह सच्चा दर्शन है।'' (दर्शन का प्रयोजन, पृ.13)

'पश्चिम का 'फिलॉसफी' शब्द भारतीय दर्शन के करीब नहीं है । फिलास का अर्थ है अनुराग और सोफिया का विद्या इस प्रकार फिलॉसफी शब्द का अर्थ हुआ विद्यानुराग । डॉ. बलदेव उपाध्याय के अनुसार भारतीय 'दर्शन' शब्द तथा पाश्चात्य फिलॉसफी शब्द समानार्थक नहीं हैं। फिलॉसफी भूतविज्ञान के स्वर का ही विद्यानुराग हैं।4 पाश्चात्य दर्शन की अपनी कोई स्वतन्त्र स्थिति नहीं उसका आरम्भ विस्मय से हैं। पश्चिम का तत्त्वज्ञ उस नाविक के समान होता है जो किसी गन्तव्य स्थान का निर्धारण किए बिना ही अपनी नौका विचार सागर में डाल देता है। भारतीय दर्शन की स्थिति स्वतन्त्र हैं। वह सभी विद्याओं का आधार और प्रकाशक है। भारतीय दर्शन 'दुखजन्य' के आमूल उच्छेद की भावना से प्रेरित होता है । और साध्य का निश्चय करके ही वह साधनामार्ग की व्याख्या में प्रवृत्त होता है। उसे अपना गन्तव्य मार्ग विवेचित तथा निर्दिष्ट होता है। भारतीय दर्शन की दृष्टि पाश्चात्य दर्शन की अपेक्षा कहीं अधिक व्यावहारिक, लोकोपकारिणी सुव्यवस्थित तथा सर्वांगीण होती है। संसार के दैहिक दैविक एवं भौतिक तापों से मुक्ति पाने की चेष्टा जीव सदैव करता है। जन्म–मरण के चक्र से मुक्ति पाना जीव का परम लक्ष्य है । इस लक्ष्य की प्राप्ति का अर्थ परमतत्त्व की प्राप्त है । यही दर्शन का परम सत्य है । 'जिसके स्वरूप के प्रतिपादन के लिए एवं जिस पद की साक्षात् अनुभूति के लिए भारतीय दर्शनों का प्रतिपादन किया गया है।5 भारतीय दर्शन के मूल में आध्यात्मिक जिज्ञासा है, भारतीय दर्शन में उपनिषदों से ही एक तत्त्व के अनुसन्धान का सूत्र मिलता है । वैदिक काल से ही भारतीय ऋषि अनेक रूप विश्व के पीछे एक तत्त्व की सत्ता की खोज में रहें ।

दर्शन वस्तु के सत्यभूत तात्त्विक स्वरूप का अनुसन्धान करते हुए अनेक समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करता है तथा हम कौन हैं, यह विश्व क्या है, इसका निर्माण किसने किया सबके मूल में कौन–सा तत्त्व है अथवा जीवन का उद्देश्य क्या है – आदि। इन सभी प्रश्नों का विवेचन दर्शन न केवल करता है अपितु उत्तर भी प्रस्तुत करता है।''

परमतत्त्व का साक्षात्कार करना ही भारतीय दर्शन का लक्ष्य है, किन्तु यह लक्ष्य कभी जीवन की उपेक्षा करके नहीं चला । जीवन और दर्शन दोनों का अस्तित्व एक ही कारण पर आश्रित है । परमतत्त्व का सैद्धान्तिक रूप दर्शन में और व्यावहारिक रूप जीवन में मिलता है । इस प्रकार दोनों मिलकर उस परम सत्य के पूर्णरूप का अनुभव कराते हैं।

दर्शन न केवल जीवन को गहराई से समझने की शक्ति देता है अपितु धर्म को भी तेज और सत्य से आच्छादित करता है। धर्म जहाँ आकर रुक जाता है, उसके आगे की गति दर्शन से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए धर्म जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष बताता है किन्तु मोक्ष क्या है उसे प्राप्त करने का उपाय क्या है – यह दर्शन बतलाता है। शंकराचार्य ने भी प्रकृति की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है, यह समस्त संसार और उसकी जननी माया या अविद्या भी सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है । सत्ता की तीन कोटिया हैं– (1) प्रातिभासिक (2) व्यावहारिक (3) पारमार्थिक। इस प्रकार संसार एकल नहीं है किन्तु यदि संसार को व्यावहारिक सत्ता के अर्थ में लिया जाए तो शंकर भी जगत् को सत्य स्वीकार करते हैं । शंकर ब्रह्म को सत्य और माया को अनिर्वचनीय कहते हैं। 'माया' ब्रह्म शक्ति ब्रह्माश्रित है पर ब्रह्म सत्य है परन्तु विचार शक्ति से 'माया' 'सदसद्विलक्षण' है । किन्तु माया को स्वीकार कर उसको ब्रह्ममयी नित्या और सत्यस्वरूप मानने से ब्रह्म और माया की 'एकरसता' हो जाती है। ब्रह्म स्वयं को मानो अपने को अपने द्वारा अर्थात् अपनी शक्ति माया के द्वारा ढक लेता है परन्तु ढकने पर भी पूर्णतः ढक नहीं पाता क्योंकि वह अनावृत्त रूप है।6 इस प्रकार भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ही है, जिज्ञासापूर्ति के लिए भक्ति, कर्म और ज्ञान का सहारा लिया जाता है और जिज्ञासा प्रवृत्ति के पश्चात् परमानन्द की प्राप्ति होती है। भारतीय दर्शन सत्य शिव और सुन्दर के समन्वय विन्दु पर खड़ा है । वह नीरस और निष्प्राण तत्त्व नहीं है अपितु जीवन का सरल और सजीव मर्म हैं । वह बुद्धि की जिज्ञासा ही नहीं आत्मा का अध्यवसाय भी है । वह जीवन का एक समग्रदृष्टिकोण और मूल्यों का शास्त्र है। वह जीवन और जगत से सम्बन्धित रहस्यों के प्रति अनुसंधित्सु है। उसका क्षेत्र – पटल अत्यन्त व्यापक है। भारतीय दर्शन की व्यापकता का प्रबल प्रमाण है उसमें आस्तिक और नास्तिक दोनों ही दर्शनों का स्वतन्त्र अस्तित्व होना । इसीलिए भारतीय दर्शनों को आस्तिक और नास्तिक दो भागों में विभाजित किया गया है । वेद को प्रमाण मानकर अपने मत का प्रतिपादन करने वाले तथा ईश्वर में विश्वास रखने वाले दर्शनों को आस्तिक कहा जाता है और वेदों को प्रमाण न मानकर उनका विरोध करने वाले को नास्तिक कहा जाता है। माधवाचार्य के अनुसार ये नास्तिक इसलिए कहलाते हैं कि ये वेदों को नहीं मानते (नास्तिको वेदनिन्दकः)7

आस्तिक दर्शन हैं– सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा तथा वेदान्त । इन षड्दर्शन के अतिरिक्त शैव, शाक्त और रसेश्वर जैसे गौण दर्शन भी हैं। नास्तिक दर्शनों में प्रमुख हैं– चार्वाक, जैन और बौद्ध । यद्यपि जैन और बौद्ध निरीश्वरवादी हैं, किन्तु परलोक में विश्वास

करते हैं, जिस कारण इन्हें पूर्णतः नास्तिक दर्शन नहीं कहा जा सकता । देखा जाए तो चार्वाक दर्शन ही पूर्णतः नास्तिक दर्शन हैं। इन दर्शनों का संक्षिप्त परिचय निम्नरूपेण हैं –

1. **वैशेषिक दर्शन** – षट्दर्शन में वैशेषिक दर्शन सबसे प्राचीन माना जाता है। यह बाह्यार्थवादी दर्शन हैं।8 इसके आदि प्रवर्तक महर्षि कणाद हैं। इनका काल ईसापूर्व 600 माना जाता है । इस दर्शन के अनुसार आत्मा नित्य, सुख दुःख और ज्ञानादि गुणों से युक्त है। उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता और न ही वह ईश्वर द्वारा निर्मित है। यह अनादि और अनन्त है, किन्तु शरीर से पृथक होने पर वह विषयों के ज्ञान से रहित हो जाता है । भौतिक वस्तुओं को यह दर्शन 'सत्य' मानता है। ।

2. **न्यायदर्शन** – इसके प्रणेता गौतम ऋषि थे इनका काल 200 ई. पू. माना जाता है।9 इस दर्शन में चार प्रमाण माने गए हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनके अतिरिक्त नैयायिक और किसी प्रमाण को नहीं मानते । आत्मा, देह, इन्द्रियों तथा उनके द्वारा ज्ञातव्य विषय, बुद्धि मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभावफल, दुःख तथा अपवर्ग प्रमेय कहलाते हैं ।10 न्यायदर्शन को मानने वाले आत्मा को नित्य द्रव्य मानते हैं । इस दर्शन के अनुसार आत्मा ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता हैं । आत्मा ही सबका द्रष्टा, सुख–दुःख का भोगने वाला तथा वस्तुओं को जानने वाला है। जानना, सुख–दुःख का अनुभव करना तथा प्रयत्न करना आत्मा के धर्म हैं।11

3. **सांख्य दर्शन** – इस दर्शन के प्रवर्तक कपिल मुनि हैं। उन्होंने सांख्य प्रवचन सूत्र तथा 'तत्त्व समास' नामक दो ग्रन्थों की रचना की । यह दर्शन द्वैतवादी हैं । यह पुरुष और प्रकृति में पारमार्थिक भेद मानता हैं। इन दोनों के संयोग से सृष्टि का जन्म होता है । इस दर्शन के अनुसार सृष्टिक्रम इस प्रकार हैं– सत्त्व के आधिक्य से महत् की उत्पत्ति होती है, महत् ही बुद्धि कहलाता है, बुद्धि अहंकार है, अहंकार के प्रभाव से आत्मा अपने को कर्ता समझने लगता है। सांख्य दर्शन 25 तत्त्वों को मानता है। पन्चतन्मात्राएँ अर्थात् शब्द स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध से क्रमशः पंचमहाभूतों – आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी की सृष्टि होती हैं ।

4. **योगदर्शन** – योगदर्शन के आदि प्रवर्तक महर्षि पंतजलि हैं। सांख्य में ईश्वरवाद का सिद्धान्त जोड़कर पंतजलि ने योगशास्त्र कर निर्माण किया। जिसे सेश्वर सांख्य भी कहते हैं ।12 इस दर्शन का मुख्य विषय योगाभ्यास है। योग का अर्थ हैं – चित्तवृत्तियों का निरोध । पतंजलि ने अष्टांग योग का वर्णन किया है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन यौगिक क्रियाओं से दोष–बीज के क्षय होने पर निर्जीव अथवा असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति होती हैं।13 इस दर्शन के अनुसार ईश्वर पूर्ण, नित्य सर्वव्यापी एवं दोषरहित है तथा आत्मा शुद्ध, बुद्ध, नित्य और मुक्त है।

5. **मीमांसा दर्शन** – मीमांसा दर्शन के प्रवर्त्तक जैमिनि थे । इनका काल ई. पू. 400 माना जाता है। इन्होंने मीमांसा सूत्रों की रचना की । इन सूत्रों के माध्यम से उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया। इस दर्शन के अनुसार वेद अपौरूषेय हैं और वैदिक ज्ञान स्वयंप्रमाणित है। मीमांसक निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार निष्काम कर्म करने से पूर्व जन्म के कर्मों का नाश होकर मुक्ति प्राप्त होती हैं । इस दर्शन के अनुसार आत्मा, शरीर, इन्द्रियों और बुद्धि – तीनों से भिन्न हैं । आत्मा की अधिष्ठा के बिना शरीर गति नहीं कर सकता । यह परलोक की स्थिति को भी मानता है । इस दर्शन के अनुसार इस लोक में किए गए कर्मों का फल परलोक में मिलता है। इन्हीं कर्मों के फलस्वरूप अगला जन्म या शरीर मिलता है किन्तु पाप–पुण्य का क्षय हो जाने के बाद नया शरीर नहीं मिलता। यह मोक्षावस्था है ।

6. **वेदान्त दर्शन** – वेदान्त का मूल स्त्रोत उपनिषद् हैं। जहाँ जीव का यथार्थ रूप से निरूपण किया गया हो ऐसे प्रमाण स्वरूप उपनिषदों के अनुकूल समर्थक शारीरिक सूत्र और गीता आदि अध्यात्मशास्त्रों को वेदान्त कहते हैं।14 ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जिस पुरुष की कल्पना की गई है वह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, और उससे भी परे हैं।15 नासदीय सूक्त में भी इसी अद्वैत भावना का वर्णन है । यही विचार उपनिषदों में प्रतिफलित हुआ और इस पुरुष को सत् आत्मन या ब्रह्मन कहकर पुकारा गया ।

बादरायण के ब्रह्मसूत्रों के आधार पर शंकराचार्य ने निर्विशेष वेदान्तपरक भाष्य लिखा। शंकराचार्य के अनुसार समस्त संसार में एक ही सत्ता है। नानात्व असत्य है, आत्मा ही ब्रह्म है, ब्रह्मसत्य है, ज्ञान है, अनन्त है, उसका कभी नाश नहीं होता, वह आनन्दस्वरूप है। ब्रह्म के दो रूप हैं– निरुपाधिक और सोपाधिक। ईश्वर और जीवन उपास्य–उपासक प्रतीत होते हैं । इस मिथ्या प्रतीति का कारण माया अथवा अविद्या हैं।16 माया ब्रह्म की शक्ति है । उसी के कारण जगत की उत्पत्ति और प्रतीति होती है। माया भी त्रिगुणात्मिका है। उसी के कारण जीव–आत्मस्थ ब्रह्म को नहीं पहचान पाता हैं। शंकराचार्य के विचार से व्यावहारिक दृष्टि से संसार सत्य है, किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से मिथ्या । जीव ब्रह्म से अभिन्न हैं । वह शुद्ध बुद्ध नित्य और मुक्त हैं, किन्तु उस पर अविद्या का आवरण पड़ा है। उस आवरण के हटते ही जीव स्वयं प्रकाश ब्रह्म हो जाता है । यह दशा मोक्षदशा कहलाती है। शंकर के दर्शन परमार्थिक स्तर पर पहुँचकर सभी द्वैत समाप्त होते जाते हैं प्रातिभासिक सत्ता का कारण अविद्या है। पारमार्थिक स्तर पर माया और अविद्या के समाप्त हो जाने पर जीव और आत्मा का भेद मिट जाता है। पारमार्थिक स्तर पर एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है।

उपनिषद् एवं अद्वैत दर्शन भारतीय दर्शन के प्रमुख अंग है। उपनिषद्साहित्य में ज्ञान कांड का वर्णन है । यह वेदांत अर्थात् ज्ञान की चरम सीमा कहे गए हैं। उपनिषदों की संख्या ग्यारह है। इस साहित्य का सृजन बढ़ते हुए कर्मकांड एवं ब्राह्मण – साहित्य की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। उपनिषदों में स्थान–स्थान पर बहुदेववाद और कर्मकांड का विरोध किया गया

है। यह समस्त दर्शन चिंतन प्रधान है। उपनिषद् का अर्थ है– समीप बैठना । ईश्वर अथवा ज्ञान को अत्यधिक निकट से जानने का आधार उपनिषद् ही है । मुण्डक उपनिषद् के अनुसार यह समस्त जगत किसी अन्य निमित्त की उपेक्षा न कर अक्षर ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है

यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च, यथा
पृथिव्यामोषधम् सम्भवन्ति
यथा सतः पुरुषात्केशलोमनि तथा अक्षरात् सम्भव विश्वम् /17
''मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म के लिए कहा गया है–
"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवेस्तपसाकर्मवा"18

अद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्त्तक शंकराचार्य हैं। इनका आविर्भाव काल सातवीं शताब्दी है। उपनिषदों के पश्चात् शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव रहा है। इस दर्शन के अनुसार जीव विशुद्ध ब्रह्मतत्त्व है और जो भिन्नता की प्रतीति होती है वह माया अथवा अविद्याजनित उपाधि है । इस दर्शन में आत्मा–परमात्मा की अखण्डता, एकरसता और अद्वैतरूपता एवं समानता को महत्त्व मिला है। परवर्ती समस्त साहित्य, धर्म एवं चिन्तन पर भारतीय दर्शन का प्रभाव अमिट है।

दर्शन और काव्य

काव्य और दर्शन एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़े हुए हैं। प्राचीन काल से ही काव्य और दर्शन का संयोग हमारे साहित्य में दिखाई पड़ता है। भारतीय जीवन अध्यात्म प्रधान रहा है, इसीलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह इस आध्यात्मिक अनुभूति से अनुप्रेरित रहा । इस आध्यात्मिक दृष्टि ने हमारे लौकिक जीवन और दृष्टिकोण को सदा प्रभावित रखा है। भारतीय समपूर्ण वाङ्गमय इस अध्यात्म या दर्शन तत्त्व से अछूता नहीं है। काव्य या साहित्य में सदा दार्शनिक अभिव्यक्तियों की प्रचुरता रही है। दर्शन उस आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति है जो लौकिक जीवन को समझने में भी पूर्ण सहकर्मी रहा है। समस्त कलाएँ विज्ञान दर्शन से अनुप्रेरित हैं एवं काव्य इन सभी की अभिव्यक्ति का समन्वय है ।

आत्म और अनात्मभाव के द्वन्द्व से जगत् और जीवन का निर्माण हुआ है। प्रत्येक वस्तु आत्म–तत्त्व और अनात्मतत्त्व के संघात से उत्पन्न हुई है। उपनिषद् इस दर्शन की अभिव्यक्ति करने वाले सबसे सुन्दर ग्रन्थ हैं। कठोपनिषद् में प्राप्ता और प्राप्तव्य भेद से आत्मा का वर्णन है । श्वेताश्वतर उपनिषद् में दो पक्षियों की रूपात्मक कथा भी इसी द्वन्द्व की ओर संकेत करती है। सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति के अभिधान से इन्हीं आत्म और अनात्म तत्त्व का वर्णन है । महात्मा तुलसीदास ने इसी को जड़–चेतन की ग्रन्थि कहा है। साहित्य के प्रारम्भिक काल से आज तक काव्य में दर्शन का अपूर्व समन्वय दिखाई देता है । आदिग्रन्थ वाल्मीकि रामायण से लेकर महाभारत, कालिदास के विभिन्न काव्य यथा रघुवंशमहाकाव्य, अभिज्ञानशाकुन्तल आदि में भी किसी न किसी दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक साहित्य

में रामचरित मानस, पद्मावत, सूरसागर निर्गुण सन्तों का साहित्य, कामायनी, उर्वशी आदि सभी किसी न किसी दर्शन की अभिव्यक्ति करने वाले काव्य हैं ।

काव्य शब्द का अर्थ है कवि की रचना । कवि शब्द की व्युत्पत्ति 'कु' धातु से हुई है। 'कु' धातु में अन् प्रत्यय जोड़ने से 'कवि' शब्द बनता है । 'कु' का अर्थ है व्यापित आकाश अर्थात् सर्वज्ञता । इस अर्थ में कवि भी सर्वज्ञ द्रष्टा हुआ । ईशोपनिषद् में कवि को कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः कहकर उसकी सर्वशक्तिमानता बताई गई है। 'परिभूः उसे कहेंगे जो अपनी अनुभूति के क्षेत्र में सबकुछ समेट ले और 'स्वयंभू' उसे जो अपनी अनुभूति के लिए किसी का भी ऋणी न हो । वैदिक साहित्य में कवि, द्रष्टा और ऋषि समानार्थक हैं और वेदों के प्रकाशक ब्रह्मा को आदि कवि कहा गया है। 19 लौकिक अर्थ में कवि का अर्थ संकुचित हो गया और काव्य का अर्थ भी कवि की विशिष्ट शैली वाली रचना हो गया। अग्निपुराण में कवि को बहुत अधिक महत्त्व देते हुए उसे 'प्रजापति' और उसकी रचना को 'काव्य–संसार' कहा गया है।20 काव्य को धर्म एवं दर्शन के साथ आनन्द तत्त्व का समन्वय करने के लिए रसनुभूति की कल्पना की गई। भरतमुनि के अनुसार 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्त्तते।'(नाट्यशास्त्र)

साहित्यदर्पणकार के द्वारा भी 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' ही स्वीकार किया गया । उपनिषदों में रस को आनन्दस्वरूप परमात्मा बताया गया – ''रसो वै सः । रस ह्यवाऽयं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।"21

आनन्दवर्धन ने प्रतीयमान अर्थ वाले शब्द को ही काव्य माना है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकविनाम् ।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्नासु ।। (ध्वन्यालोक1/4)

अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियों के शरीर में अवयव सम्बन्धी सौन्दर्य के अतिरिक्त लावण्य नाम की एक अनिर्वचनीय वस्तु होती हैं, उसी प्रकार महाकवियों की वाणी में भी एक प्रतीयमान अर्थ सौन्दर्य होता है ।

रस सभी को आनन्दित करता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि इस आनन्द के अंशमात्र से ही समस्त प्राणी जीवित रहते हैं। यह आनन्द तभी प्राप्त होता है जब पाठक 'पर–अपर' की स्थिति को पारकर उस सामान्य भावभूमि पर पहुँच जाता है, जहाँ शेष सृष्टि के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।22 अर्थात् काव्य मनुष्य को अद्वैतावस्था में पहुँचा देता है । यही 'दर्शन' द्वारा होता है। 'दर्शन' के माध्यम से जिस प्रकार आत्मा मुक्त होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करती है उसी प्रकार काव्य के माध्यम से हृदय की मुक्तावस्था रस अर्थात् ब्रह्मानन्द सहोदर को रसिकजन की आत्मा अनुभव करती है। भारतीय साहित्यशास्त्र इसी आनन्दवाद को लेकर चला है। यही आनन्दवाद सभी चराचर का मूल है, श्रुतियों, उपनिषदों आदि दर्शन ग्रन्थों में यही आनन्दवाद है । इस प्रकार काव्य का मूल काव्यानन्द और दर्शन का मूल ब्रह्मानन्द है और दोनों को सहोदर कहा गया है ।

पश्चिमीजगत् में भी आनन्द को काव्य कला का चरम लक्ष्य माना गया । वहाँ अनेक सौन्दर्यशास्त्री मूलतः दार्शनिक हैं, उदाहरण के लिए क्रोचे, रस्किन और कॉलरिज। डॉ. जॉनसन ने सहैतुक कल्पना द्वारा सत्य एवं आनन्द के समन्वय की कला को ही काव्य माना है। कॉलरिज ने महाकवि के लिए दार्शनिक होना आवश्यक माना है।23 इस प्रकार काव्य के साथ दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। नान ड्रिंक्वाटर और जे. सी. पावे की काव्य में रसात्मकता एवं मानवीयता के उपादानों को परमावश्यक माना है।24 ''इस प्रकार सौन्दर्यशास्त्र पश्चिम में दर्शन का ही एक अंग है। आचार्य मम्मट ने काव्य के लक्ष्य गिनाते हुए उसके लौकिक और अलौकिक दोनों प्रयोजन माने हैं

काव्यं यशसे अर्थकृते, व्यवहारविदे, शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिवृत्तये, कान्ता सम्मिततयो उपदेश युजे।। (काव्य प्रकाश 2/24)

आचार्य भामह ने प्रीति एवं कीर्ति के साथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति को काव्य का लक्ष्य माना है।25 इस प्रकार प्रयोजन की दृष्टि से भी काव्य और दर्शन एक साथ दिखाई देते हैं ।

काव्य और दर्शन का सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध है । 'कवि और दार्शनिक दोनों ही मंगलमयी भावना से अनुप्राणित होकर जीवन की समीक्षा का चित्र प्रस्तुत करते हैं।'

काव्य में सर्वभूतमय भगवान के विश्वव्यापी सुन्दर रूप की तथा दर्शन में उसके सत्य स्वरूप की अभिव्यंजना पर अधिक बल दिया है। इस प्रकार दर्शन और काव्य का मुख्य विषय ही जीवन का चरम लक्ष्य, परमतत्त्व की खोज है । परमतत्त्व की खोज जितनी तत्परता एवं तन्मयता से कवि और दार्शनिक करते हैं, उतनी तत्परता तथा तन्मयता से अन्य कोई नहीं करता । त्रिविध ताप से सन्तप्त मानव की शान्ति, क्लेशमय संसार की आत्यन्तिक दुःख से निवृत्ति एवं मानव कल्याण के लिए ही भारत में दर्शन और काव्य का आविर्भाव हुआ।

दर्शन और काव्य दोनों में विचार का अस्तित्त्व है । दर्शन सहजज्ञान की समीक्षा है और काव्य जीवन की आलोचना है। दोनों के मूल में प्रतिभा और अनुभव हैं। दोनों शेष सृष्टि के साथ मानव–सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं । दर्शन तथ्यों की तर्कसंगत उपस्थापना करता है और काव्य जीवन की व्यवस्थित एवं रमणीय अभिव्यंजना करता है । जिस प्रकार जगत् का बाहूयाकार, जो दार्शनिक जिज्ञासा का प्रथम आधार है, उस समय विलीन हो जाता है, जब दार्शनिक जागतिक पदार्थों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार कवि की कल्पना जगत् के बाह्यरूपों से खेलते–खेलते उनके आभ्यन्तर में पहुँचकर परम सत्य की अभिव्यक्ति करने लगती है।

कवि और दार्शनिक दोनों का प्रमुख उद्देश्य मुक्ति है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों में, समस्त कलायें मन की मुक्ति के द्वारा भावक को यथार्थ का आस्वादन कराती हैं।" इसी प्रकार दर्शन दृष्ट सत्य की अभिव्यक्ति करता है और काव्य अनुभूत सत्य की । दर्शन का क्षेत्र रूक्ष

है किन्तु काव्यदर्शन के विषय को सुन्दर, सरल व सरस शब्दावली में सहज ही अभिव्यक्त कर देता है –

दुलहिन गावहु मंगलाचार ।
तन रतिकरि हौं मन रति करिहौं पांचों तत्त्व बराती।।

प्रस्तुत पद में परमसत्ता का स्पष्टीकरण बुद्धि द्वारा नहीं अपितु अनुभूति द्वारा अभिव्यक्त हुआ है । काव्य में अभिव्यक्त रहस्यवाद वस्तुतः दर्शन का ही दूसरा रूप है। कबीर, जायसी, तुलसी, रवीन्द्रनाथ टैगोर काव्य में इसी दार्शनिक अभिव्यक्ति के कारण जनता के कंठहार बने । आधुनिक युग में प्रसाद, महादेवी जैसे कवियों ने अपने काव्य में दार्शनिक की भूमिका अत्यन्त सुन्दर और सरस रूप में निर्वाहित की है। दर्शन और काव्य का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि काव्य में दर्शन का निवास होता है और ईश्वरीय तत्त्व से युक्त दर्शन महान् व सच्ची कविता पर आधारित रहता है ।

भारतीय सम्पूर्ण दार्शनिक साहित्य काव्यमय है यद्यपि यह भी सत्य है कि दर्शन काव्य नहीं है और काव्य भी मात्र दर्शन नहीं है । किन्तु हमारे दार्शनिक कवि केवल बुद्धिवादी नहीं रहे । उनके दर्शन में अनुभूति सदा ही प्रधान रही । अनेक स्थलों पर कवि शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए हुआ है । उपनिषद् काल में 'कवि' का प्रयोग दर्शनशास्त्र के ज्ञाता ऋषि के रूप में हुआ है । महानारायणोपनिषद् में ब्रह्म अनन्त और अव्यय होने के साथ–साथ कवि भी हैं। 'अनन्तमव्ययं कविम्'। (11ध70)

कवियों ने सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्राह्य उस ब्रह्म की ओर जाने वाले मार्ग को छुरे की धार के समान तेज तथा दुर्गम कहा था–

''क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।" (कठोपनिषद् 3/14)

हमारा सम्पूर्ण दार्शनिक साहित्य संगीतपूर्ण एवं कवित्वमय है। काव्य भारतीय दर्शन की आत्मा है और संगीत अलंकार । दर्शन यदि सत्य की अभिव्यक्ति करता है तो काव्य उसे 'सुन्दरम् 'के रूप में प्रतिबिम्बित करता है । पन्त के शब्दों में –

"वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार।"

वेदों में काव्य और दर्शन का जैसा सुन्दर समन्वय है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उपनिषद् और गीता भी इसी समन्वय से युक्त हैं। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपने गीता रहस्य में यहाँ तक कहा है कि उसकी गणना विश्व साहित्य के आश्चर्यों में होनी चाहिए । दार्शनिकों की गम्भीर उक्ति को कवि सरस शब्दों में अभिव्यक्त

कर उसे ग्राह्य बना देता है। 'दर्शन' का चिन्तन काव्य में पहुँचकर हृदय की रागात्मिका वृत्ति के कारण भावपूर्ण रमणीय कथन बन जाता है, जो समष्टिगत होता है। इसीलिए भारतीय साहित्य में दर्शन और काव्य एक दूसरे से ग्रथित हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार भी 'सम्पूर्ण सत्ताएँ एक ही परमसत्ता और सम्पूर्ण भाव एक ही परमभाव के अन्तर्भूत हैं । अतः बुद्धि की क्रिया से हमारा ध्यान जिस अद्वैत भाव–भूमि पर पहुँचता है उसी भावभूमि तक हमारा भावात्मक हृदय भी इस सत्व रस के प्रभाव से पहुँचता है। इस प्रकार अन्त में जाकर दोनों पक्षों की वृत्तियों का समन्वय हो जाता है । इस प्रकार वैदिक और औपनिषद् काल में तो काव्य और दर्शन एक रूप थे ही, हिन्दी के मध्यकालीन सन्त भक्तों ने भी हृदय और मस्तिष्क ज्ञान और भक्ति, सत्य और सुन्दर, काव्य और दर्शन का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया ।

काव्य और दर्शन का अटूट सम्बन्ध है, प्राचीन सभी दार्शनिक ग्रन्थ काव्यमय है– यह इसका सबसे प्रबल प्रमाण है। उपनिषद् काल में कवि दार्शनिक का ही पर्याय था दार्शनिक के लिए कवि शब्द ही प्रयुक्त होता है। वैसे भी 'कविर्मनीषि परिभूः स्वयम्भूः' के अनुसार कवि ब्रह्मा तक का पर्याय था ।

दर्शन की गम्भीर, बुद्धिग्राह्य, ज्ञानप्रधान उक्ति को कवि अपनी सुन्दर, सरस वाणी द्वारा हृदयगम्य एवं बोधगम्य बना देता है। इसीलिए काव्य को 'कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे' कहा गया ।

काव्य और दर्शन का समन्वय सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय है। भक्तिकालीन सन्तों का दार्शनिक काव्य इस बात का स्वतः सिद्ध प्रमाण है। इन भक्त–सन्त कवियों ने हृदय और मस्तिष्क, ज्ञान और भक्ति, काव्य और दर्शन का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है । दर्शन युक्तिपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने का दूसरा नाम है। दर्शन की सम्यक् दृष्टि द्वारा जीवन कर्मबन्धन से मुक्ति पाता है। यह उसकी दैवी आँख है ।

दर्शन का चरम लक्ष्य है – दैहिक, दैविक, भौतिक त्रय तापों से छुटकारा पाकर जन्म मरण से मुक्ति पाकर उस परम सत्य की प्राप्ति करना ।

भारतीय दर्शन कभी जीवन की उपेक्षा करके नहीं चला । जीवन और दर्शन दोनों का अस्तित्त्व एक ही कारण पर आश्रित है। परमतत्त्व का सैद्धान्तिक रूप दर्शन में और व्यावहारिक रूप जीवन में प्राप्त होता है । इस प्रकार दोनों मिलकर उस परमतत्त्व के पूर्ण रूप का अनुभव कराते हैं ।

दर्शन जीवन के साथ–साथ धर्म को भी तेज और सत्य प्रदान करता है, धर्म जिस जगह आकर रुक जाता है, उससे आगे दर्शन जीवन की अँगुली थाम लेता है। भक्ति, कर्म और ज्ञान दर्शन का दूसरा रूप है । दर्शन मात्र बुद्धि की जिज्ञासा नहीं है, आत्मा का अध्यवसाय भी है, वह जीवन का सरस गंभीर और सजीव मर्म है। वह जीवन जगत् के मूल्यों का शास्त्र है, भारतीय दर्शन अत्यन्त विस्तृत और उदार है। इसमें आस्तिक और नास्तिक, वेद विहित और वेद विरोधी दोनों प्रकार के दर्शनों का सम्मान और स्वतंत्र अस्तित्त्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सुचीः–

- महाभारत, शान्तिपर्व 30015
- रामचरितमासन, तुलसीदास, 7/12/16, 1,14,4 3.
- विनयपत्रिका 57ध्4, रामचरितमानस 7/105/2
- भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, पृ. 4–5
- भारतीय दर्शन, डॉ. उमेश मिश्र, पृ. 6–7 राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन लखनऊ
- भारतीय दर्शन, डॉ. उमेश मिश्र, पृ. 389
- कबीर दर्शन – डॉ. रामजीलाल सहायक, पृ. 109
- दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, सं. आर. सी. मजूमदार (भाग–2) पृ. 470
- भारतीय दर्शन, यदुनाथ सिन्हा, पृ.125
- चिन्तन और विवेचन, डॉ. नारायणप्रसाद वाजपेयी, पृ.43
- भारतीय दर्शन, डॉ. यदुनाथ सिन्हा, पृ.156
- सर्वदर्शन संग्रह, पृ.266
- वद्धैराग्यदपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्– योगसूत्र 3/50
- वेदान्तोनाम् उपनिषद् प्रमाणम् – वेदान्तसार, सदानन्द, पृ.2(1958)
- ऋग्वेद 10/90
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 3/2
- मुण्डकोपनिषद्–2/2/7।
- मुण्डकोपनिषद् – 3/1/8।
- हिन्दी साहित्य कोश, भाग2 (डॉ. रामरतन भटनागर) ज्ञान मण्डल सं. 2020 पृ. 249।
- अपारे खलु संसारे कविरेव प्रजापतिः – अग्निपुराण 339,10
- तैत्तीरीय उपनिषद् 4,6
- डॉ. नारायण प्रसाद वाजपेयी, कबीरचिन्तन, पृ.12
- No man ever was a great poet without being at the same time a profound philosopher,Colerdge (कैपिटल)।
- हिन्दी साहित्यकोश भाग – 1 सं. 2020, पृ. 257
- धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षणं कलासु च।

19.

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के क्षेत्र में गीता की प्रासंगिकता

डॉ0 शिखा रानी

असिस्टैन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दनकौर, गौतम बुद्ध नगर

शोध–पत्र :–

चिन्ता ज्वाल शरीर में, वन दावा लगि जाए।
प्रगट धुँआ नहिं ऊपजे, मन अन्दर धुँधियाय।।

हिन्दू धर्म में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी का बड़ा महत्व है। द्वापर युग में कलयुग के प्रारम्भ होने के 30 साल पहले इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन को जो दिव्य उपदेश दिया था, वही 'श्रीमद् भगवद्गीता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी कारण इस दिन को गीता जयंती तथा मोक्षदा एकादशी के नाम से जाना जाता है। यह गीता महाभारत के छठें खण्ड 'भीष्म पर्व' का अंग है। गीता में 18 अध्याय (पर्व) और 700 श्लोक हैं जैसा गीता के शंकर भाष्य में कहा है–

''तं धर्मं भगवता यथोपदिष्ट वेदव्यासः सर्वज्ञोभगवान्
गीताख्यैः सप्तभिः श्लोकशतैरु पनिबन्ध।''1

(शंकर भाष्य गीता)

भगवद्गीता जीवन दर्शन का ज्ञान देने वाला पवित्र हिन्दू ग्रन्थ है। सम्पूर्ण गीता अष्टादश अध्याय में विरचित है। प्रत्येक अध्याय में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का उपदेश है। श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृत महाकाव्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त समादर प्राप्त ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ महाभारत की एक घटना के रूप में प्राप्त होता है। महाभारत में वर्तमान कलियुग तक की घटनाओं का विवरण मिलता है। इसी युग के प्रारम्भ में आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मित्र तथा भक्त अर्जुन को यह गीता सुनाई थी। युद्ध से पूर्व विषादग्रस्त अर्जुन को निष्काम कर्म के पथ पर प्रेरित करने के लिए श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद इस गीता ज्ञान का मूलतत्व है। ऋषि–मुनियों ने गीता का महत्व गंगा से भी अधिक माना है, क्योंकि गंगा तो भगवान के श्रीचरणों से निकली जबकि गीता भगवान के हृदय क्षेत्र से। भारतीय संस्कृति में गीता का प्रमुख स्थान है। यह भारत में ही नहीं अपितु विश्व में भी अपनी ख्याति फैलाती है। इसकी रचना महर्षि 'वेदव्यास' ने की थी। यह ग्रन्थ किसी विशेष जाति अथवा धर्म का नहीं है अपितु सम्पूर्ण मानवता का ग्रन्थ है। यह कर्म करने का संदेश देता है।

हम अपनी संस्कृति पर दृष्टिपात करते हुये अपने प्राचीन ग्रंथों तथा शास्त्रों की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि प्राचीन काल में हमारी संस्कृति कितनी समृद्ध रही है। भारतीय संस्कृति एवं समाज के केवल एक स्वर्ण युग का मात्र स्मरण करने के स्थान पर हमारी समृद्ध परम्परा के वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् हैं, जो आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने प्राचीन काल में थे। उपनिषदों का स्थान अति महत्वपूर्ण हैं। जितना ज्ञान–विज्ञान उपनिषद् में है उतना विश्व के किसी भी शास्त्र में नहीं हैं। इसके बाद रामायण, महाभारत आदि बहुत सारे अनेक–अनेक शास्त्र हैं। इन

सबके अतिरिक्त एक शास्त्र जिनमें मात्र 18 अध्याय एवं 700 श्लोक हैं, की भूमिका एवं महत्व जगत में उसी प्रकार है जैसा कि सौरमंडल में ध्रुवतारा। भारतीय शास्त्रों में भगवद्गीता का विशेष महत्व है। आदि शंकराचार्य ने एक स्थान पर लिखा है–

भगवद्गीता किंचिद्वीता, गंगाजल लवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारि समर्चा, क्रियते तस्य यमेन न चर्चा।।

भगवद्गीता का थोड़ा सा भी ज्ञान हो तो वह बहुत बड़े भय से हमें बचाती है और गीता स्वयं कहती है–

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रयते महतो भयात्।।2

गीता की महत्ता को शब्दों में वर्णित करना असम्भव है। श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीता का वर्णन करने के उपरान्त कहा है कि–

''गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः
या स्व्यं पद्मनाभस्य मुखमधाद्विनीः सृताः।।''3

(महाभारत, भीष्मपर्व–43/1)

अर्थात् गीता सुगीता करने योग्य है। इसे भली प्रकार पढ़कर अंतःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं पद्मनाथ भगवान श्री विष्णु के मुखारविंद से निकली हुई है। स्वयं भगवान ने श्रीगीता के महात्म्य का बखान किया है। श्री गीता एक ऐसा अनुपम शास्त्र है जिसमें एक भी शब्द सदुपदेश से रिक्त नहीं है और वह जीवन के सम्पूर्ण सार को समेटे हुए है अर्थात् गीता मनुष्य के सांसारिक मोह–माया से निकलकर मोक्ष की प्राप्ति का सूत्र है।

गीता स्वंय भगवान की वाणी होने के कारण एक ऐसा आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है कि किसी तरह भी इसकी शरण ग्रहण करने शेष से परमात्मा–प्रेम का पथ मिल जाता है। गीता की पृष्टभूमि युद्ध क्षेत्र है। भगवान श्रीकृष्ण का मुख्य प्रयोजन मानव अवतार रूप धारण करके अधर्म का नाश और धर्म का उत्थान करना था। वे स्वंय कहते हैं–

''यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानव सृजाम्यहम्।।''4

(गीता–4/7)

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि– मैं गीता के आश्रम में रहता हूँ, गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता के ज्ञान का सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।

''गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता में चोत्तमं गृहम।
गीता ज्ञानमुपश्रित्य त्रील्लोकान्पालयाम्यहम्।।5

(वराह पुराण)

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का महत्व बताते हुए कहा है कि– ''जो पुरुष प्रेमपूर्वक निष्काम भाव से भक्तों को पढ़ाएगा अर्थात् उनमें इसका प्रचार करेगा वह निश्चय ही मुझको (परमात्मा) प्राप्त होगा। जो पुरुष स्वयं इस जीवन में गीता शास्त्र को पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जायेगा।''

गीता में भगवान श्रीकृष्ण का यह भी कथन है कि ''मुझे जिस रूप में माना जाता है, उसी रूप में व्यक्ति को दर्शन देता हूँ, चाहे शैव हो या वैष्णव या कोई और गीता के उपदेशों को सभी ने स्वीकृत किया है। अतः यह किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रन्थ नहीं है। उत्कृष्ट भावना का परिचायक होने के कारण गीता का हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सर्वोपरि स्थान है। भगवान श्रीकृष्ण की समस्त मानवता को दी गई ये अनमोल भेंट है।

महाभारत पर खोज करने के लिए देश–विदेश से काफी पुरातत्वविद् भारत आये लेकिन गीता का अंश किसी भी वैज्ञानिक के हाथ नहीं लगा। ऐसा माना जाता है कि जब श्रीकृष्ण पार्थ को गीता ज्ञान दे रहे थे तब समय रुक गया था; शायद यही कारण है कि गीता को मानव किसी भी समय अपनी अनुकूलता के मुताबिक समझ सकता है। कुरुक्षेत्र की लाल मिट्टी महाभारत का ऐसा प्रमाण है जो जुठलाया नहीं जा सकता।

श्रीगीता का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। महाभारत के युद्ध में अर्जुन जीवन की समस्याओं से हताश हो गये थे। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपने कर्म और युद्ध धर्म से विमुख हो गये थे तब श्री कृष्ण ने उनको निष्काम भाव से कर्म करने तथा फल की इच्छा न करने का उपदेश दिया था। फल की कामना करने से मनुष्य अनायास ही भ्रमित चिंतित, परेशान हो जाते हैं। गीता कहती है कि फल को ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए क्योंकि मनुष्य के हाथों में सिर्फ कर्म करना ही है फल देना ईश्वर के हाथ में है। फल न मिलने की स्थिति में अपने कर्मों को नहीं छोड़ना चाहिए। श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन! अपने सगे–सम्बन्धियों, भाई–बहिनों की मृत्यु पर तुम शोक मत करो। तुम युद्ध करो। यदि तुम्हें युद्ध में विजय प्राप्त हुई तो श्री मिलेगी परन्तु तुम युद्ध नहीं करोगें तो अपयश मिलेगा। यदि तुम युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हो तो स्वर्ग मिलेगाः इसलिए उठो, हे कौन्तेय (अर्जुन) और निश्चय करके युद्ध करो।

''हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोक्ष्यसे महिम्।
तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।6

(द्वितीय अध्याय गीता श्लोक 37)

गीता की महत्ता बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि गीता गंगा से भी बढ़कर है। शास्त्रों में गंगा स्नान का फल मुक्ति बताया गया है परन्तु गंगा में स्नान करने वाला स्वयं मुक्त तो हो सकता है परन्तु दूसरे को मुक्त करने की सामर्थ्य केवल गीता में ही है क्योंकि गीता मुक्ति का मार्ग दिखलाती है। श्रीकृष्ण ने आत्मा को भी वर्णित किया। आत्मा का सत् भी कहा गया है क्योंकि जो सत् उसी का भाव है और जो असत् है उसका भाव नहीं हो सकता है और जो सत् है उसका अभाव नहीं हो सकता–

''नासतो विद्यते भाव ना भावो विद्यते सतः।'' 7

(गीता– 2/16)

श्रीकृष्ण जी ने युवा वर्ग का आवह्न किया कि वे चरित्र निर्माण में गीता की प्रासंगिकता को समझते हुए उसके उपदेश को अपने जीवन में आत्मसात् करे। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध में मोहग्रस्त अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा दी उसी प्रकार गीता आधुनिक जन को सतकर्म करने की प्रेरणा देती है। यह गीता ज्ञान एक ऐसा ज्ञान है जिसे अपनाकर कोई भी व्यक्ति इस संसार में परमसुख और शांति से अपना जीवन व्यतीत कर सकता है क्योंकि आज का मनुष्य प्रगतिशील होने पर भी किंकर्त्तव्य–विमूढ़ है। अतः वह गीता से मार्गदर्शन प्राप्त कर अपने जीवन को सुखमय और आनन्दमय बना सकता है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि– बिना भयमुक्त हुए और अहंकार को त्यागे बिना मनुष्य के जीवन में शांति नहीं आ सकती। यदि इन दोनों (भय, अहंकार) का त्याग मनुष्य नहीं कर सकता तो वह जीवन में कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।

गीता केवल ज्ञान, कर्म और भक्ति को योगमंत्र से संजीवित करके उनका समन्वय ही नहीं करती, बल्कि वह सारे जीवन को योग में परिणत करने की, जीवन के छोटे–बड़े प्रत्येक व्यापार को योग का अंगीभूत करने की, शिक्षा प्रदान करती है।

गीता का निष्काम कर्म– निष्काम कर्म यानि कर्मफल का त्याग न कि कर्म का। गीता का मुख्य उपदेश निष्काम कर्मयोग है। निष्काम कर्म की निरन्तर साधना करने की दृष्टि गीता के उपदेश से ही प्राप्त हो सकती है। ऐसी दृष्टि मनुष्य के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होगी। कर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता क्योंकि कर्म करना व्यक्ति का अधिकार और कर्तव्य दोनों ही है। अतः कर्म से विमुख होने की अपेक्षा कर्म–फल से विमुख होना ही गीता द्वारा श्रेयस्कर माना गया है। गीता में, भक्ति, कर्म और ज्ञान में से किसी को भी मुख्य न कहकर केवल 'निष्काम कर्मयोग' पर ही बल दिया है।

यह कहना उचित होगा कि कामना (फल) की पूर्ति और निवृत्ति दोनों के लिए कर्मो में प्रवृत्ति हो सकती है। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि अज्ञानी व्यक्ति कामना की पूर्ति के लिए कर्मो में प्रवृत्त होते हैं और ज्ञानी व्यक्ति अशक्ति को त्याग कर आत्म–शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। पाश्चात्य जगत में विश्व साहित्य का कोई भी ग्रन्थ इतना अधिक उद्धरित नहीं हुआ है जितना भगवद्गीता क्योंकि भगवद्गीता में ज्ञान का अथाह सागर है। जीवन का प्रकाशपुंज व दर्शन है। शोक और करुणा से निवृत्त होने का सम्यक मार्ग है। भारत की महान संस्कृति और उसके मूल्यों को समझने का ऐतिहासिक–साहित्यिक साक्ष्य है।

डब्लू वान हम्बोल्ड (जर्मन विद्वान) के अनुसार गीता–

''भगवद्गीता विश्व की सबसे सुन्दर और महान ज्ञान की दार्शनिक कृति है।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा है कि–

''जिस व्यक्ति ने 'गीता' का थोड़ा सा भी अध्ययन किया है, वह संसार बंधन से मुक्त होकर आत्यान्तिक आनंद का अधिकारी हो जाता है।''

अलबरूनी–अरब के मनीषी के अनुसार–

''गीता दुनिया की बेहतरीन इल्मी तोहफा है। इस एक किताब में दुनिया के सारे फिरकों का निचोड़ पेश कर दिया गया है।''

आचार्य विनोवा भावे गीता के विषय में कहते है कि–

''गीता का और मेरा सम्बन्ध तर्क से परे है। मेरा शरीर माँ के दूध पर जितना पला है, उससे कहीं अधिक मेरे ह्रदय और बुद्धि का पोषण गीता के दूध पर हुआ है। गीता के आधार पर अकेला मनुष्य सारी दुनिया का मुकाबला कर सकता है।''

उमाकान्त केशव आप्टे–

एक नर किस प्रकार नारायणत्व को प्राप्त कर सकता है, इस रहस्य को श्रीगीता ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है। हमारी राष्ट्रीयता की आत्मा ही यहाँ पर प्रकट हो गई है। यहाँ पर स्वजन अथवा परजनों का निर्धारण उनके गुणों एवं वृत्ति पर ही किया गया है; न केवल निवास भूमि या किसी अन्य बाह्य उपाधियों के आधार पर।

मनीषी थोरो अमेरिकी दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि–

प्राचीन युग की सभी स्मरणीय वस्तुओं में 'भगवदगीता' से श्रेष्ठ कोई भी वस्तु नहीं है। 'भगवदगीता' में इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके लिखने वाले देवता को हुए अगणित वर्ष हो जाने पर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रन्थ अभी तक नहीं लिखा गया। गीता के साथ तुलना करने पर जगत का आधुनिक समस्त ज्ञान मुझे तुच्छ लगता है। वे कहते हैं कि मैं प्रतिदिन भगवद्गीता के जल में स्नान करता हूँ। वर्तमान काल की कृतियों से यह कहीं बढ़–चढ़ कर है। जिस काल में यह लिखी गयी, वह सचमुच निराला ही समय रहा होगा।

बाल गंगाधर तिलक–

गीता रहस्य नामक पुस्तक की रचना इन्हीं भारत के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी बाल गंगाधर तिलक ने की थी। यह पुस्तक भगवान श्रीकृष्ण के निष्काम कर्मयोग के विशाल उपवन से चुने हुए आध्यात्मिक सत्यों के सुन्दर गुणों का एक गुच्छा है।

वह गीता से बहुत अधिक प्रभावित थे। वे अपने समाज और समाज के मुताबिक गीता का देखना और समझना चाहते थे। एक थके हुए गुलाम समाज को जगाने के लिए वह गीता को एक संजीवनी बनाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने गीता रहस्य लिखी क्योंकि वह मान नहीं पा रहे थे कि ''गीता'' जैसा ग्रन्थ केवल मोक्ष की ओर ले जाता है बल्कि वह तो यह समझाना चाहते थे कि वह कर्म की ओर भी अग्रसर करता है। उन्होंने अपने गुलाम देश के लोगों को मोक्ष की बात न बताकर कर्म करने की ओर अग्रसर किया जो कि उस समय की माँग भी थी। सोलह वर्ष की अवस्था में तिलक जी ने अपने मरणासन्न पिता को मराठी में गीता सुनाई थी। तभी से उन्हें गीता में रुचि उत्पन्न हो गई थी।

''गीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है।''8 (लोकमान्य तिलक गीता रहस्य उपसंहार) लोकमान्य तिलक ने अनेक ग्रन्थों का मनन करके पंडित की दृष्टि से उसका अभ्यास किया और उसके गूढ़ अर्थ को प्रकाश में लाये। उस पर एक महाभाष्य ही रचना भी की। उनकी दृष्टि में गीता महागूढ़ ग्रन्थ है।

अरविन्द जी के श्रीगीता पर विचार–

''गीता नीतिशास्त्र या आचार शास्त्र का ग्रन्थ नहीं है अपितु आध्यात्मिक जीवन ग्रन्थ है। गीता जिस कर्म का प्रतिपादन करती है, वह मानव कर्म नहीं अपितु दिव्य कर्म है।'' (अरवन्दि गीता प्रबन्धन) युद्ध को पाप तथा अक्रामकता को नैतिकता का अधः पतन समझकर पीछे हटने वालों के लिए गीता सर्वोत्तम उत्तर है। गीता से मनुष्य मात्र अपनी पूर्णता तथा सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त कर सकता है।

जार्ज डब्ल्यू रसेल के गीता पर विचार–

भगवद्गीता और उपनिषदों में सभी वस्तुओं पर ईश्वर का ऐसा पूर्ण ज्ञान मिलता है कि मुझे अनुभव होता है कि इतने विश्वास पूर्वक लिखने के पूर्व, इनके लेखकों ने शान्त स्मृति के द्वारा उग्र अन्तर्द्वन्द से भरे हुए हजारों जीवनों को अवश्य देखा होगा, तभी तो वे ऐसी चीजें लिख सके, जिसे पढ़कर हमारी आत्मा को इतनी शान्ति और निश्चिंतता अनुभव होती है।

जे0एल0 फरवयहर के गीता पर विचार–

जगत के सम्पूर्ण साहित्य में यदि उसे सार्वजनिक लाभ की दृष्टि से देखा जाए, भगवद्गीता के जोड़ का अन्य कोई भी काव्य नहीं है। दर्शनशास्त्र होते हुए भी वह सर्वदा पद्य की भाँति नवीन और रस–पूर्ण है। इसमें मुख्यतः तार्किक शैली होने पर भी यह भक्तिग्रंथ है।

महात्मा गाँधी जी के गीता पर विचार–

''महात्मा गाँधी गीता के अत्यधिक प्रशंसक थे। गीता की ही शरण लेकर गाँधी जी ने भारत को आजाद कराया और राष्ट्रपिता की उपाधि प्राप्त की। वो प्रतिदिन गीता का अध्ययन करते थे। गीता उनके शारीरिक, मानसिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत और आधार रही। वे कहते है कि– ''गीता मेरी बाइबिल या कुरान नहीं उससे भी महान है, ये मेरी माता है। मैंने बहुत पहले ही अपनी सांसारिक–माँ को खो दिया था, लेकिन मेरी शाश्वत माँ गीता ने पूरी तरह सर्वदा के लिए उस स्थान को भरे रखा। वो कभी नहीं बदली, उन्होंने मुझे कभी भी हारने नहीं दिया। जब भी मैं निराश होता हूँ गीता माँ की गोद में शरण लेता हूँ।'' मैं स्वीकार करता हूँ कि जब मैं संशयग्रस्त होता हूँ निराशा मुझको घेर लेती है और क्षितिज में आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई पड़ती, तब मैं भगवद्गीता की शरण लेता हूँ। एक शान्ति प्रदायक श्लोक पढ़ता हूँ और उन भारी दुखों के बीच में तुरन्त मुस्कुराने लगता हूँ। मैं चाहता हूँ, गीता केवल राष्ट्रीय शालाओं में नहीं बल्कि प्रत्येक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ायी जाये। एक हिन्दू बालक या बालिका के लिए 'गीता' को न जानना शर्म की बात होनी चाहिये। अतः नैतिक मूल्यों पर अत्यधिक बल दिया है ''गीता विश्वधर्म की एक पुस्तक है। वह हमारे लिए सद्गुरु रूप है, माता रूप है। मानव जीवन ज्ञान भक्ति और कर्म का समन्वय है।

गीता–ज्ञान–स्वामी विवेकानन्द द्वारा (सतेन्द्र बनर्जी)–

स्वामी विवेकानन्द एक आध्यात्मिक गुरु तथा समाज–सुधारक थे। एक दिन एक युवक स्वामी विवेकानन्द के पास आया और बोला– ''मैं आपसे गीता पढ़ना चाहता हूँ।'' स्वामी जी ने युवक को ध्यान से देखा और कहा– ''छः माह प्रतिदिन फुटबॉल खेलों, फिर आओं, तब मैं गीता पढ़ाऊँगा। युवक आश्चर्य में पड़कर सोचने लगा कि गीता जैसे पवित्र ग्रन्थ में फुटबॉल कहाँ से आ गई ? स्वामी जी ने उसे समझाया बेटा! – ''भगवद्गीता वीरो का शास्त्र है। एक सेनानी द्वारा एक महारथी को दिया गया दिव्य उपदेश है। अतः पहले शरीर का बल बढ़ाओं। शरीर स्वस्थ होगा तो समझ भी परिष्कृत होगी। गीता जी जैसा कठिन विषय आसानी से समझ सकोगे। जो शरीर को स्वस्थ नहीं रखता, सशक्त सजग नहीं रख सकता अर्थात् जो शरीर को नहीं सँभाल पाया, वह गीताजी के विचारों

को, अध्यात्म को कैसे सँभाल सकेगा। जीवन में कैसे उतार पाएगा ? उसे पचाने के लिए स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन ही चाहिए।''

युवक को लगा कि ये मुझे टालने के लिए तो ऐसा नहीं कह रहे हैं ? उसने फिर स्वामी जी से कहा– ''महात्मा जी गीता एक धार्मिक ग्रन्थ है। उसको सीखने के लिए फुटबॉल खेलना या गरीबों की सेवा क्यों आवश्यक है ? इस पर स्वामी जी ने उसे समझाया, ''सुनो युवक! गीता वीरों और त्यागियों का महाग्रंथ है इसलिए जो व्यक्ति वीरत्व और सेवा भाव से भरा नहीं होगा, वह गीता के गूढ़ श्लोकों को और कृष्ण–अर्जुन संवाद का रहस्य नहीं समझ सकता और न ही वास्तविक जीवन से उसका निहितार्थ समझ सकता है।'' युवक को स्वामीजी का आशय समझ में आ गया और उसने फुटबॉल और कसरत से अपना तन बलशाली बनाया और सेवा से जीवन को पवित्र किया। फिर छः महीने बाद स्वामी जी के पास पहुँचा तब स्वामी जी ने कहा– ''अब तुम वास्तव में गीता समझने के पात्र बन चुके हो।'' उन्होंने उस युवक को बड़े प्रेम से अपने आश्रम में ठहराया और उसे गीता का मर्म समझाया। वह युवक गीता के ज्ञान से इतना प्रभावित हुआ कि उसने गीता प्रचार मण्डल की स्थापना ही। वह युवक कोई ओर नहीं सतेन्द्र बनर्जी थे।

भगिनी निवेदिता ने भगवद् गीता के विषय में कहा है कि–

अशांत मन के लिए अभीष्ट ऐसा कुछ भी नहीं है, जो गीता में न आया हो।

संत ज्ञानेश्वर जी गीता के विषय में कहते हैं कि–

गीता विवकेरूपी वृक्षों का एक अपूर्व बगीचा है। यह सब सुखों की नीव है। सिद्धान्त रत्नों का भण्डार है। नवरस रूपी अमृत से भरा हुआ समुद्र है। खुला हुआ परम धाम है, और सब विधाओं की मूल भूमि है।

वारेन हेस्टिंग ने गीता के विषय में कहा कि–

''किसी भी जाति को उन्नति के शिखर पर चढ़ाने के लिए गीता का उपदेश अद्वितीय है।''

डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार–

''उपनिषदों के आदर्श का उन नवीन परिस्थितियों में जो महाभारत के समय में उत्पन्न हो गयी थी, उपयोग ही गीता का यथार्थ रूप है।''

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इसलिए कुछ लोगों को यह शंका हो जाती है कि आधुनिक युग में गीता की शिक्षा के क्षेत्र में प्रासंगिकता क्या है ? परन्तु सत्य तो यह है कि गीता की सार्थकता तो पहले भी थी और वर्तमान युग में और अधिक है, क्योंकि वर्तमान युग की लगभग सभी समस्याएँ गीता पर अमल करने मात्र से ही सुलझ जाती है। गीता पाठ से भगवान श्रीकृष्ण जी का सानिध्य मिलता है। जीवन की बड़ी से बड़ी परेशानी व्यक्ति को कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं कर पाती। गीता का अभ्यासी संसार का सच जान लेने के पश्चात् पथभ्रष्ट नहीं होता। वर्तमान युग में श्रीकृष्ण का महात्म्य और बढ़ा है। श्रीकृष्ण केवल कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। उनके मुख से निकली गीता में अधिकतर श्लोक जीवन–दर्शन का बोध कराते हैं। संसार में सबसे अधिक आध्यात्मिक और दार्शनिक ग्रंथ गीता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि– कर्म पर ही तुम्हारा अधिकार है, कर्म के फलों में कभी नहीं..... इसलिए कर्म को फल के लिए मत करो।

''कर्मण्येवाधिकरस्ते मा फतेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।''9

(गीता द्वितीय अध्याय श्लोक–47)

श्रीमद्भगवद् गीता में दी हुई बातें और सीख सभी देश, काल और पात्रों के लिए आज भी उतनी ही सार्थक है जितनी उस समय थी जब श्रीकृष्ण ने इसका उपदेश अर्जुन को दिया था। समय में परिवर्तन अवश्य आया है, परन्तु अभी भी जीवन जीने के लिए मायने नहीं बदले हैं, अभी भी हम झूठ, सच, पाप और पुण्य, कर्म व उसके फल की बातं करते हैं। ग्लोबलाइजेशन से ज्यादा कुछ नहीं बदला है, बस कुछ नये शब्द जुड़ गए है। जैसे कर्मो को हम

ब्नेम एडं मिमिबज से देखते हैं। धर्म के अनुरूप कर्मों को हमने मजीपबे कह दिया है। धर्मक्षेत्र से लड़ना वैसे ही है जैसे एक डंतामज चसंबम का ब्वउचमजपजपवदण् श्रीमद्भागवद्गीता अब धर्म क्षेत्रों से आगे निकलकर ठनेपदमे बीववस में पढ़ाई जाती है। यह उसकी सार्थकता नहीं है तो क्या है ? यह गीता भारत में ही नहीं अपितु ऑक्सफोर्ड और हॉवर्ड जैसी विश्व प्रसिद्ध यूनिवर्सिटीज में भी पढ़ाई जाती है। यह सम्मानित ग्रन्थ जो कि सनातन धर्म की आधारशिला है, अब वह विश्व प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ है और विदेश भूमि पर भी अध्ययनरत है।

हॉवर्ड यूनिवर्सिटी के प्रेसिडेन्ट 'प्रोफेसर ड्रियू गिलपीन फॉस्ट ने 2012 में मुम्बई की एक सभा में सूचना दी कि लगभग 200 अमेरिकी विद्यार्थी भागवद् गीता का अध्ययन कर रहे हैं। इसी प्रकार 'ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के एक स्वतन्त्र विभाग ऑक्सफोर्ड सेंटर फॉर हिन्दू स्टडीज में ''भागवतगीता'' नाम से एक ऑनलाइन कोर्स भी चलाया जाता है जिसके अन्तर्गत भगवत् गीता का सम्पूर्ण ज्ञान विभिन्न सेशन्स के द्वारा दिया जाता है।'' यही गीता का सार्थकता ही है जो विश्व के हर कोने में ज्ञान का आधार माना जाता है। गीता का ज्ञान, गीता में निहित उच्च मूल्यों के कारण ऑक्सफोर्ड और हॉवर्ड में दिया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में गीता की प्रासंगिकता अद्वितीय है। श्रीमद्भगवत गीता के प्रत्येक श्लोक में जीवन को सही तरीके से जीने की सीख दी गई है। मानव जीवन का ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर गीता के श्लोकों में न हो इसलिए भगवद्गीता को धार्मिक ग्रन्थ से ज्यादा एक ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ की उपाधि से पूरे विश्व में जाना और माना जाता है। यही सार्थकता है, इसकी। भगवद्गीता के उपदेशों में जीवन की प्रत्येक अवस्था का सार छिपा है। गीता आधुनिक मनुष्य को सत्कर्म करने की प्रेरणा देती है।

गीता अलौकिक ग्रन्थ ही नहीं अपितु ज्ञान का अथाह समुद्र है। इसका अध्ययन करने पर नये–नये भाव मिलते हैं। गीता को समझने में अभिमान बहुत बड़ी बाधा है। यदि कोई व्यक्ति अपनी विद्वता बुद्धि व योग्यता के बल पर गीता का अर्थ समझना चाहे तो वह उसे नहीं समझ सकता है। जब मनुष्य में अहंकार रहता है कि– ''मैं कर सकता हूँ, तब तक गीता का ज्ञान उससे दूर ही रहता है।''

''जिन्होंने निरभिमान होकर भगवान श्रीकृष्ण व गीता की शरण ले ली है, उसके अनुभव में गीता के अध्ययन से ऐसी–ऐसी बातें आ जाती है जो शास्त्रों में कहीं नहीं मिली। लोकप्रियता में इससे बढ़कर कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है और इसकी लोकप्रियता दिनो–दिन बढ़ती जा रही है। गीता में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से धार्मिक सहिष्णुता की भावना को प्रस्तुत किया गया है, जो कि भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान युग में मनुष्य चिन्ताओं, समस्याओं अनेक प्रकार के तनावों से घिरा हुआ है। कई बार रवह अपना रास्ता भटक जाता है, ऐसे में गीता मनुष्य को 'क्रियाशीलता का संदेश देती है। यह जीवन जीतने की कला सिखाती है। वर्तमान युग में गीता पढ़कर ही मनुष्य को अपनी समस्याओं का हल मिलता है और आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है। अतः यही वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में गीता की प्रासंगिकता है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. शंकर भाष्य गीता
2. भगवद् गीता (40, अध्याय–2)
3. महाभारत, भीष्मपर्व–43/1
4. गीता–4/7
5. वराह पुराण
6. द्वितीय अध्याय गीता श्लोक– 37
7. भगवद् गीता 2/16
8. लोकमान्य तिलक गीता रहस्य उपसंहार
9. गीता द्वितीय अध्याय श्लोक 47

20.

भारतीय परिवार प्रणाली : सभ्यता, संस्कार और सनातन संस्कृति की पाठशाला

सुरेन्द्र कुमार
सहायक आचार्य
विवेकानन्द कॉलेज ऑफ एजुकेशन अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

पवन कुमार
सहायक आचार्य
अमोघा इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल एण्ड टैक्नीकल एजुकेशन
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

भारतीय समाज विशेषतः विविध धर्म, भाषा और संस्कृति का मेल है। आदिकाल से ही भारतीय परिवार प्रणाली सभ्यता, संस्कृति और परम्परा का महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसका संदर्भ सभ्यता, संस्कार, संस्कृति और परंपरा के प्रति भारतीय समाज के दृष्टिकोण को दर्शाता है। परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है जिसमें संगठितता, सद्‌गुण और सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय परिवार व्यवस्था न केवल बाहरी सभ्यता को दर्शाती है बल्कि यह अपने सदस्यों को सभ्यता और संस्कार की मूल शिक्षा भी देती है। यहाँ परिवार द्वारा आदर्श और नैतिक मूल्यों का पालन किया जाता है और इसके माध्यम से लोग संशय, संघर्ष, दुख और सुख के साथ कैसे जीवन जीना है, यह सीखते हैं।

प्राणी संबंधों के आधार पर गठित समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। परिवार सामाजिक संगठन की मूलभूत इकाई है। हर इंसान किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है। मनुष्य की सभी संस्थाओं में परिवार एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी संस्था है। संस्कृति के प्रत्येक स्तर में, चाहे उन्हें उन्नत कहा जाए या निम्न, पारिवारिक संगठन का कोई न कोई रूप अनिवार्य रूप से पाया गया है। "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन संबंधों द्वारा स्थापित एक समूह है जो बच्चों के जन्म और पालन–पोषण की व्यवस्था करता है।" (मैकाइवर एवं पेज)। "परिवार ऐसे व्यक्तियों का एक समूह है। जो विवाह, रक्त और गोद लेने के संबंधों से संगठित होता है, एक छोटी गृहस्थी को बनाते है। पति–पत्नी, माता–पिता, बेटा–बेटी, भाई–बहन के

रूप में एक दूसरे से अन्त क्रिया करते हैं और एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं।" (बर्गेस. ई. डब्ल्यू. तथा हार्नीलाक)

भारतीय परिवार व्यवस्था सनातन संस्कृति के मूल्यों, धर्म और परंपराओं का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह अपने परंपरागत मूल्यों के साथ–साथ समाज को समृद्धि और सामाजिक समरसता की दिशा में बढ़ने को प्रोतसाहित करता है। सनातन संस्कृति का पालन करते हुए प्रत्येक भारतीय परिवार अपने सदस्यों को धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण की ओर अग्रसारित करता है और उन्हें अध्ययन, सांस्कृतिक कार्यक्रम और धार्मिक आयोजनों में भाग लेने का मौका देता है।

संस्कार भारतीय समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये भारतीय समाज के मूल्यों, नैतिकता, और सांस्कृतिक परंपराओं का माध्यम होते हैं जो परिवार के सदस्यों को सिखाए जाते हैं। संस्कार परिवारों के आदर्शों का हिस्सा होते हैं और विभिन्न जीवन परिस्थितियों में सहायक होते हैं।

सनातन संस्कृति भारतीय समाज की एक प्रमुख पहचान है और इसके मूल्य शाश्वत और अद्वितीय हैं। यह संस्कृति भारतीय परिवारों के जीवन को एक आदर्श देती है, जिसमें सहानुभूति, धार्मिकता और नैतिकता के मूल्य होते हैं। सनातन संस्कृति में धर्म, योग्यता, परंपरा और सेवा के मूल्य निहित होते हैं, जिससे परिवार के सदस्य जीवन को उद्देश्यपूर्ण और सद्गुण परिपूर्ण तरीके से व्यतीत करते हैं।

भारतीय परिवार की आधारशिला–

भारतीय परिवार व्यवस्था प्राचीन काल से विकसित हुई है। इसका विकास भारतीय समाज, संस्कृति तथा धार्मिक व पारंपरिक धाराओं के साथ हुआ है। प्राचीन काल में, भारतीय समाज और गृहस्थ जीवन परम्परागत था और परिवार प्रणाली इस जीवनशैली का महत्वपूर्ण हिस्सा थी। कुटुम्ब (परिवार) और गोत्र (वंश) प्रणाली इस समय से ही प्राचीन भारतीय समाज की परंपरागत संरचना का अंग रहे हैं।

गोत्र व्यवस्था– गोत्र व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज में एक प्रमुख व्यवस्था थी, जिसमें लोग अपने वंशों को गोत्र के आधार पर वर्गीकृत करते थे। गोत्र का उद्गम ऋषियों और संतों के पुत्रों के नामों से होता था और यह वंशों को जानने और संरक्षण करने का माध्यम था।

वर्ण व्यवस्था– प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था एक और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी, जिसमें समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस व्यवस्था में हर वर्ण के अलग–अलग कर्म होते थे और यह समाज को संरचित और सामाजिक रूप में व्यवस्थित करता था।

धार्मिकता– प्राचीन भारतीय परिवार प्रणाली में धार्मिकता का महत्वपूर्ण स्थान था। परिवार के सदस्य अपने धर्म के अनुसार जीवन जीते थे और धर्मिक आचरणों का पालन करते थे।

मनुस्मृति में परिवार– मनुस्मृति जिसे मनु का धर्मशास्त्र भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ है जिसने पारिवारिक मूल्यों और संरचनाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया है। इस ग्रंथ में परिवार के अधिकार, कर्तव्य और सदस्यों की भूमिकाओं को विस्तार से वर्णित किया गया है। यह ग्रंथ परंपरागत परिवार के स्थापना और संरक्षण को महत्वपूर्ण मानता है।

वैदिक समय में, परिवार की नींव व पारिवारिक मूल्य

धर्म– धर्म वैदिक समाज में महत्वपूर्ण था और परिवार के सदस्यों को धर्मिक आचरण का पालन करने की शिक्षा दी जाती थी। इसका मतलब था कि परिवार के सदस्यों को धार्मिक मूल्यों का पालन करना चाहिए। जिसमें यज्ञ, पूजा और धार्मिक आचरण शामिल थे।

कर्म– वैदिक समाज में कर्म का महत्वपूर्ण स्थान था। परिवार के सदस्यों को अपने कर्मों का पालन करना चाहिए और वे अपने कर्मों के अनुसार उनके जीवन का परिणाम भोगते थे।

विद्या– शिक्षा का महत्व वैदिक समय में बहुत उच्च था। परिवार के सदस्यों को विद्या का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और इसके माध्यम से वे अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।

संगठन– परिवार के सदस्यों के बीच एक मजबूत संगठन और संयोजन का महत्व था। सामाजिक संगठन के माध्यम से परिवार के सदस्य एक–दूसरे का साथ देते थे और समाज के विकास में योगदान करते थे।

भारतीय परिवार प्रणाली की नींव अत्यन्त प्राचीन है और यह समाज व्यवस्था, संस्कृति और धर्म के रूप में आज भी उपस्थित है। इसने भारतीय समाज को एक अद्वितीय पहचान और सामाजिक संरचना प्रदान की है जिसका आज भी महत्व है।

भारतीय परिवार की संरचना– मनुस्मृति और अन्य प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में परिवार की संरचना के महत्वपूर्ण पहलू–

वर्ण व्यवस्था– मनुस्मृति वर्ण व्यवस्था को महत्वपूर्ण मानता है, जिसे चार वर्णों में विभाजित किया गया है –

ब्राह्मण– इस वर्ण में याज्ञिक (यज्ञ और पूजा करने वाले), पंडित और शिक्षक शामिल हैं।

क्षत्रिय– इस वर्ण में राजा, योद्धा और संरक्षक होते हैं।

वैश्य– इस वर्ण में व्यापारी, किसान और व्यवसायिक लोग शामिल होते हैं।

शूद्र– इस वर्ण में कामगार, सेवक और नौकर शामिल होते हैं।

परिवार संरचना– मनुस्मृति में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है। परिवार को एक महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई माना गया है, जिसमें पिता, माता, पुत्र, पुत्री, दादी, दादा, नानी, नाना और अन्य परिवार के सभी सदस्य शामिल होते हैं।

परिवारिक धर्म– मनुस्मृति में परिवार के सदस्यों के बीच के धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। परिवार के प्रमुख (पिता या कुलपति) को परिवार के सभी सदस्यों का प्रमुख और नेता माना जाता है और उसे परिवार के कार्यों और निर्णयों का नेतृत्व करना होता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार परिवार की संरचना और संचालन के महत्वपूर्ण पहलू निम्नलिखित हैं–

परिवार की मूल संरचना– अर्थशास्त्र में परिवार को एक महत्वपूर्ण आर्थिक इकाई के रूप में देखा गया है। परिवार की मूल संरचना पिता, माता और पुत्रों के साथ होती है और इसका मुख्य उद्देश्य संपत्ति का संरक्षण और वृद्धि करना होता है।

पुत्र का महत्व– कौटिल्य के अनुसार पुत्र संपत्ति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पुत्र को अच्छी शिक्षा दी जानी चाहिए और उसमें परिवार की संपत्ति का प्रबंधन करने की योग्यता होनी चाहिए।

विभिन्न पारिवारिक आर्थिक प्राधिकृत्य– कौटिल्य अर्थशास्त्र में पारिवारिक संपत्ति के प्राधिकृत्य की महत्वपूर्ण बात की गई है। वह यह सिखाते हैं कि परिवार के सदस्यों को अपनी आर्थिक संपत्ति को बढ़ाने और संरक्षित रखने के उपायों का अध्ययन करना चाहिए।

परिवार के सदस्यों के कर्तव्य– कौटिल्य के अनुसार, परिवार के सदस्यों को उनके कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, जिसमें धर्मिकता, आर्थिक सहयोग और समाज में योगदान शामिल होते हैं। परिवार के सदस्यों को संगठित और सहयोग में रहना चाहिए।

वर्तमान समय में पारिवारिक संरचना–

1. **केंद्रीय/एकल परिवार**
2. **संयुक्त परिवार**

केंद्रीय/एकल परिवार – इस प्रकार के परिवार आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषता हैं। केन्द्रीय परिवार परिवार का सबसे छोटा रूप है। एक परिवार जिसमें पति–पत्नी और

उनके आश्रित बच्चे होते हैं। उन्हें केंद्रीय परिवार कहा जाता है। ऐसे परिवारों में अन्य रिश्तेदार शामिल नहीं होते हैं।

संयुक्त परिवार – एक संयुक्त परिवार में तीन या अधिक पीढ़ियों के सदस्य एक साथ एक ही घर में रहते हैं, उनकी संपत्ति सामूहिक होती है, एक ही रसोई होती है। परिवार के सभी सदस्य धार्मिक आचरण और पूजा प्रतिष्ठान परम्परागत रीति रिवाजों से की जाती है। इन परिवारों में वरिष्ठ सदस्यों का सम्मान किया जाता है, प्रत्येक कार्य उनकी सलाह और मार्गदर्शन में होता है, जिससे परिवार में एकता बनी रहती है। संयुक्त परिवार, परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

परिवार एक सामाजिक सहायता प्रणाली के रूप में–

सामाजिक सुरक्षा– परिवार सामाजिक सुरक्षा का स्रोत है। जब किसी सदस्य को किसी प्रकार की मदद या समर्थन की आवश्यकता होती है तो परिवार उसके साथ होता है और उसे सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा मिलती है।

आपसी सहयोग– परिवार सामाजिक सहायता प्रणाली के रूप में उसे सहायता और समर्थन प्रदान करता है जब एक सदस्य किसी प्रकार की समस्या का सामना कर रहा होता है। यह बड़े सदस्यों और छोटे सदस्यों के बीच आपसी सहयोग की एक मिसाल होती है और समस्याओं का समाधान करने में मदद करती है।

शिक्षा और संशोधन– परिवार सदस्यों के बीच शिक्षा और संशोधन का माध्यम भी है। छोटे सदस्य बड़े सदस्यों से सीखते हैं और उनके मार्गदर्शन में कार्यों को करते हैं, जिससे उनका सामाजिक विकास और जीवन शैली में सुधार होता है।

सामाजिक संबंध– सामाजिकरण की प्रक्रिया के दौरान बालक अपने परिवार से सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक व्यवहारों के बारे में सीखता है।

संरचना और नैतिकता– परिवार किसी समाज की संरचना और नैतिकता को बनाए रखने में मदद करता है। यह परंपरागत मूल्यों, आचरणों और धार्मिकता का पालन करता है और समय–समय पर इसे नये सदस्यों को हस्तान्तरित करता है।

''संस्कार'' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ होता है 'शिक्षा', 'सीख' या 'शैली से प्रशिक्षण देना'। यह शब्द भारतीय संस्कृति और परंपरा में अत्यधिक महत्व रखता है और विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों में उपयोग होता है। संस्कार आमतौर पर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिकता, शैली और धार्मिकता का प्रशिक्षण देने के रूप में समझे जाते हैं। ये शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार, आचरण और नैतिक मूल्यों को प्रभावित करती है और उसके सामाजिक संबंधों का निर्माण करती है।

भारतीय परिवार संस्कारों की पाठशाला है जिसके द्वारा समाज और परिवार की मूलभूत संरचना, मूल्य और संस्कृति के बारे में सीखा जाता है। यहां परिवार की संस्कारों के विकास में उनकी भूमिका के कुछ प्रमुख पहलू हैं–

मौलिकता– परिवार वे संस्कार प्रदान करता है जो व्यक्तिगत और सामाजिक मूलभूतताओं पर आधारित होते हैं, जैसे कि ईमानदारी, सजगता, सहमति, और उच्चतम मूल्यों के प्रति समर्पण।

संस्कारों का उदाहरण– परिवार अपने सदस्यों को संस्कारों का उदाहरण प्रस्तुत करते है। जिसके द्वारा उनके बच्चे माता–पिता और बड़े सदस्यों के व्यवहार, आचरण और विचारधारा से सीखते हैं।

मानवीय संबंध– परिवार सदस्यों के बीच मानवीय संबंधों को बढ़ावा देता है। यह बच्चों को सहयोग, समर्पण, और समझदारी का महत्व सिखाता है।

शिक्षा– परिवार शिक्षा के माध्यम से बच्चों को समझदार और समर्पित नागरिक बनाने में मदद करता है।

सामाजिक मूल्यों का पालन– परिवार सामाजिक मूल्यों, धर्म, और संस्कृति का पालन करने में मदद करता है और बच्चों को उनकी परंपरागत मूल्यों का समर्थन करने में मदद करता है।

स्वास्थ्य और रखरखाव– परिवार सदस्यों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखने में मदद करता है, जिससे वे संस्कारों को सही तरीके से सीख सकते हैं।

संक्षिप्त रूप से कहें तो, परिवार संस्कारों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन संस्कारों को परिवार रूपी पाठशाला के माध्यम से सीखने का उद्देश्य नई पीढ़ियों में प्राचीन मूल्यों और भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पण की भावना को बढ़ावा देना है।

संस्कृति–

संस्कृति एक व्यक्ति, समुदाय, समाज या राष्ट्र की अद्वितीय धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और भौतिक विशेषताओं का संगठित संकलन होता है। यह एक समुदाय के सदस्यों के साझा मूल्यों, आचरणों, धार्मिक परंपराओं, कला, साहित्य, विज्ञान, तकनीक, और व्यवहार में व्यक्त होता है। संस्कृति एक समाज के अद्वितीय अंश के रूप में उसकी पहचान और विविधता का प्रतीक होती है।

संस्कृति की अवधारणा कुछ महत्वपूर्ण तत्वों पर आधारित होती है–

मूल्य और आचरण– संस्कृति मूल्यों और आचरणों का माध्यम होती है। इसमें व्यक्ति

और समुदाय के द्वारा मान्यता प्राप्त आदर्शों और नैतिकता की शिक्षा होती है, जो उनके व्यवहार और जीवन के अन्य पहलुओं पर प्रभाव डालती है।

धार्मिकता– संस्कृति धार्मिकता की अद्वितीयता को भी प्रकट कर सकती है। यह जीवन के धार्मिक पहलु को शामिल करती है, जैसे धार्मिक आचरण, पूजा, और धार्मिक परंपराएँ।

कला और साहित्य– संस्कृति कला, साहित्य, संगीत और विशेषता के अद्वितीय रूपों का प्रतिनिधित्व कर सकती है। यह कला और साहित्य के माध्यम से व्यक्ति और समुदाय की भौतिक और रूचिकर धरोहर को दर्शाती है।

भाषा– संस्कृति विशेष भाषा, शब्दकोश और व्याकरण का संग्रह होती है। यह भाषा के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक संदेशों को संवहना और संचालन करती है।

परंपराएँ– संस्कृति पारंपरिक अनुष्ठानों, परंपराओं और प्रतिष्ठानों का आदान–प्रदान कर सकती है। यह उन्हें पिछली पीढ़ियों से मिली अनमोल ज्ञान और अनुभवों का संरक्षण करने में मदद करती है।

संस्कृति एक समाज की अद्वितीयता और विविधता का प्रतीक होती है, जिसमें भिन्न–भिन्न समुदाय और लोग अपनी खास सांस्कृतिक पहचान को सत्यापित करते हैं। सनातन धर्म में, धर्म (कर्तव्य), कर्म (कार्य) और मोक्ष (मुक्ति) जैसे मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है और ये मूल्य समग्र जीवन के अद्वितीय पहलु हैं–

धर्म (कर्तव्य)– धर्म एक व्यक्ति के कर्तव्यों और आचरण का मान्यता प्राप्त आदर्श होता है। यह धर्म का पालन करने के लिए किए जाने वाले कार्यों की जिम्मेदारी का हिस्सा होता है और व्यक्ति को समाज में उच्च नैतिकता के साथ जीने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह धर्म धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के साथ ही अपने परिवार और समुदाय के साथ सहयोग और समर्थन भी शामिल करता है।

कर्म (कार्य)– कर्म एक व्यक्ति के क्रियाओं और कार्यों का परिणाम होता है। यह सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह व्यक्ति के कर्तव्यों का पालन करने में मदद करता है और उसके कर्मों के आदर्श और दृष्टिकोण को निर्धारित करता है। सनातन धर्म में कर्म और उसके प्रभाव का महत्व बड़ा होता है, और यह जीवन के हर पहलू में ध्यान देने के लिए प्रोत्साहित करता है।

मोक्ष (मुक्ति)– मोक्ष सनातन धर्म में आत्मा की मुक्ति और सुख की पूर्णता की स्थिति का प्रतीक है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति अपने धार्मिक कर्मों और साधना के माध्यम से आत्मा को पारमात्मा के साथ एक कर लेता है और संसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। मोक्ष को प्राप्त करने का उद्देश्य होता है और यह आत्मा की शांति और मोक्ष की प्राप्ति की प्राप्ति के साथ ही धर्मिक और आध्यात्मिक सामृद्धि की प्राप्ति को दर्शाता है।

संस्कृति शिक्षा में परिवार एक पाठशाला के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा है। परिवार संस्कृति को अगली पीढ़ियों में हस्तान्तरित करने का महत्वपूर्ण स्रोत होता है और संस्कृति की मूलभूत जानकारी को अधिक सामर्थ्यपूर्ण और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समझाता है। निम्नलिखित कुछ तरीके हैं जिनमें परिवार संस्कृति शिक्षा के रूप में योगदान कर सकता है–

कथा और कथाओं का संवाद– परिवार कथाएँ और कथाएँ साझा करके संस्कृति की महत्वपूर्ण मूलभूतताओं को समझाता है। यह बच्चों को व्यक्तिगत और सामाजिक संस्कृति के संवाद के माध्यम से सीखने का मौका देता है।

परंपरागत उपयोगी ज्ञान– परिवार सदस्यों को परंपरागत उपयोगी ज्ञान सिखाता है, जैसे कि प्राचीन औषधि, कृषि तकनीक और सांस्कृतिक कार्यों का अध्ययन, जिससे वे अपने धर्म, परंपरा और संस्कृति को समझते हैं।

समाजिक और परंपरागत उत्सव– परिवार उन समाजिक और परंपरागत उत्सवों का आयोजन करता है जो संस्कृति के हिस्से होते हैं और इन उत्सवों को उनके महत्व के साथ मनाने का अवसर प्रदान करता है।

संस्कृति और भाषा– परिवार अपनी मातृभाषा और संस्कृति को सीखने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। इसके माध्यम से बच्चे अपनी मातृभाषा और संस्कृति का सही अर्थ निकालना सीखते हैं।

आदर्श और नैतिकता– परिवार अपने सदस्यों को नैतिकता और अदर्शों की महत्वपूर्णता समझाता है और उन्हें उनके धार्मिक और सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग बनाता है। परिवार संस्कृति शिक्षा के रूप में अपने सदस्यों को संस्कृति की महत्वपूर्ण मूलभूतताओं के साथ जोड़ने का अवसर प्रदान करता है और संस्कृति को संरक्षित करने का कार्य करता

भारतीय साहित्य और कहानियों में परिवार के स्थायी सांस्कृतिक महत्व को दर्शाने के कई उपाख्यान और कहानियाँ हैं। यहां कुछ ऐसी प्रमुख कहानियाँ हैं जो भारतीय परिवार प्रणाली के महत्व को उजागर करती हैं। वाल्मीकि जी की रामायण में राम, सीता और लक्ष्मण का परिवार केंद्र में रहता है। इस कहानी में परिवार के महत्व, परिपूर्णता और विश्वास को बहुत ही महत्वपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया है। महाभारत की कहानी में कौरव और पांडवों का परिवारिक संगठन, समर्पण और वचननिष्ठा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें परिवार के सदस्यों के बीच सामाजिक और नैतिक मूल्यों का पालन किया गया है। पंचतंत्र की कहानियाँ बच्चों को नैतिक मूल्यों का सिखाती हैं और परिवार के सदस्यों के बीच सहायता और सामाजिक समरसता को बढ़ाती हैं। प्रेमचंद की कहानियाँ परिवारिक मूल्यों, संबंधों और समाज में स्थान के महत्व को उजागर करती हैं। ईदगाह और गोदान जैसी कहानियाँ इसका अच्छा उदाहरण हैं। चंदमामा की कहानियाँ बच्चों को भारतीय संस्कृति और अद्भुत परिवारिक दृष्टिकोण के साथ परिवार के महत्व को सिखाती हैं।

इन कहानियों और उपाख्यानों के माध्यम से भारतीय साहित्य और संस्कृति में परिवार के स्थायी सांस्कृतिक महत्व को समझाया जा सकता है और यह दिखाया जा सकता है कि परिवार कैसे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निश्कर्श – सभ्यता, संस्कृति और सनातन संस्कृति के संदर्भ में भारतीय परिवार प्रणाली का स्थायी महत्व आज भी महत्वपूर्ण है और यह पाठशाला की भूमिका में विशेष महत्व रखता है। भारतीय परिवार प्रणाली विभिन्न संस्कृति और मूल्यों जैसे– नैतिकता, धर्म और सहयोग का पालन करती है। परिवार संस्कृति को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार प्रणाली विशिष्ट ज्ञान और विद्या को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पारंपरिक रूप से संरक्षित करता है, जिससे सनातन संस्कृति के मूल्यों का आदान–प्रदान होता है। भारतीय परिवार प्रणाली में सदस्यों के बीच सहयोग का पालन किया जाता है, जिससे समाज में सामाजिक समरसता बना रहती है और बच्चों को सही मार्गदर्शन मिलता है। परिवार प्रणाली नवजवनों, बुर्जुगों और असहाय व्यक्तियों की सामाजिक सुरक्षा का संरक्षक भी होती है, जिससे समाज के हर वर्ग का विकास हो सकता है। परिवार प्रणाली सांस्कृतिक और पारंपरिक धरोहर को संरक्षित करती है और इसे अगली पीढ़ियों तक पहुँचाती है, जिससे सनातन संस्कृति का महत्व बना रहता है।

बदलती दुनिया के परिपेक्ष्य और तेजी से बदलते सामाजिक और आर्थिक परिपूर्णता के बावजूद, भारतीय परिवार प्रणाली अपने मूल्यों, संस्कृति और परंपराओं को सुरक्षित रखती है। यह समाज के अद्भुत सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा रहती है और भारत के भविष्य को सांस्कृतिक और मूल्यात्मक दृष्टिकोण से मजबूत बनाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल, जी. के. (1981) ''समाजशास्त्र, परिवार तथा नातेदारी'', एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन्स।
- अग्रवाल, गोपाल कृष्ण (1981) ''समाजशास्त्र भारत में परिवार तथा नातेदारी'', एस. बी. पी. डी . पब्लिकेशन्स, आगरा।
- धर्मवीर (1996) ''वेद और समाज'' परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, भारत।
- गुप्ता, एस. एल. व शर्मा, डी. डी. (1999) ''सामाजिक मानवशास्त्र समाजिक संरचना परिवार'', साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
- गुप्ता, एम. एल. व शर्मा डी. डी. (2003) ''भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिंह, जे. पी. (2005) ''आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं परिवार का उद्विकास'', पब्लिकेशन्स हाल ऑफ़ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

- मिश्र, विद्या निवास (2009) ''भारतीय संस्कृति के आधार'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- कुमारी, ममता व कामिल, मौ0 (2019) शोध पत्र ''भारतीय परिवार में होने वाले आधुनिक परिवर्तन के कारक'' Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, Vol:16, Issue: 6, ISSN No 2230-7540, Pages: 2012 - 2016 (5).
- गुप्त, प्रो. राम गोपाल (2019) ''मनुस्मृति और आधुनिक समाज'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- पोखरियाल, रमेश निशंक (2020) ''भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्परा'', अल्फा एजुकेशन।
- कोइराला, उर्वशी व हंसदा, डॉ. दिव्या रानी (2022) शोध पत्र ''बदलती हुई पारिवारिक संरचना और बढ़ते वृद्धाश्रम'', International Journal of Home Science, Vol: 8, Issue: 3, ISSN No. 23957476, Page 245-246.

21.
'सा विद्या या विमुक्तये' की दार्शनिक अवधारणा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

डा0 प्रशान्त कुमार
प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
शोभित विश्वविद्यालय, गंगोह, सहारनपुर, उ0प्र0

महक सिंह
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
शोभित विश्वविद्यालय, गंगोह, सहारनपुर, उ0प्र0

'सा विद्या या विमुक्तये' के अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो विद्यार्थी को नकारात्मक भावों और प्रवृत्तियों के बन्धनों से मुक्ति प्रदान करे। वास्तविक शिक्षा वह अवधारणा है जिसके द्वारा वर्तमान शिक्षा की कमियों को दूर करते हुए जीवन को पूर्ण और सार्थक बनाया जा सकता है। शिक्षा के निर्माण के समय हमें वास्तविक शिक्षा की महत्ता पर जोर देने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सच्ची शिक्षा वह है जो किसी भी मनुष्य को पूर्ण जीवन जीने की कला सिखाती है। मनुष्य के अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त कर ज्ञान रूपी प्रकाश की ज्योति को प्रज्वलित करना है। किसी भी समाज की प्रगति का दर्पण ही शिक्षा है। किसी भी राष्ट्र के भविष्य निर्धारण में शिक्षा सर्वश्रेष्ठ मापदण्ड है। शिक्षा से ही उत्तम कोटि के शिक्षकों का निर्माण होता है। जिन्हें पथ प्रदर्शक, मार्गदर्शक एवं राष्ट्र निर्माता आदि की संज्ञा दी गई है। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षकों का स्थान ईश्वर से भी उच्चत्तर माना गया है। क्योंकि राष्ट्र की वर्तमान व भावी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का गौरवपूर्ण कार्य शिक्षकों द्वारा ही सम्पन्न कराया जाता है।

प्लेटो के अनुसार– ''अज्ञानता समस्त विपत्तियों का मूल कारण है। अज्ञानी रहने की अपेक्षा जन्म न लेना ही अच्छा है।''

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में किसी भी राष्ट्र का विकास उसके माननीय संसाधनों के बहुमुखी विकास पर निर्भर करता है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी

लोगों को अवसरों की समानता प्राप्त हो तथा उन अवसरों में इतनी समानता हो कि उनका हस्तान्तरण एक पीढी से दूसरी पीढी तक आसानी से हो सके। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने लाल किले से दिये गये अपने सम्बोधन में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विषय में अपने हृद्य सागर में उत्पन्न हो रहे भावों को व्यक्त किया है। प्रधानमंत्री जी ने कहा है कि समय और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालिक मान्यताओं में कुछ परिवर्तन की सदैव आवश्यकता रहती है। जैसे भारत को अब एक मजबूत शक्तिशाली एवं आत्मनिर्भर राष्ट्र बनने की आवश्यकता है। किसी भी राष्ट्र का यह सपना शिक्षा में नवीन व्यवस्थाओं को जोडकर ही सम्भव है। आत्मनिर्भर, आधुनिक नए और समृद्ध भारत के निर्माण में शिक्षा की अहम भूमिका है। इसलिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में नया आत्मविश्वास पैदा होने की सम्भवना है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2030 तक नीतिगत पहलूओं को प्राप्त करने के उदेश्य से नई राष्ट्रीय नीति 2020 तैयार की गई है। इसमें विद्यार्थियों को नवीन प्राद्योगिकी, व्यवसायिक शिक्षा, कला संगीत एवं मातृभाषा में शिक्षण प्राप्त करने के अवसर प्राप्त होगें। जिससे विद्यार्थियों में नवीन कला कौशल का निर्माण होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा नई राष्ट्रीय शिक्षा 2020 के दिशा निर्देशों के अनुसार है। यह सी0बी0एस0ई0 के तहत ग्रेड 3 से 12 तक नई पाठ्य पुस्तकें तैयार करने हेतु आवश्यक रूपरेखा प्रदान करती है। इस नीति का उदेश्य कक्षा 3 से 12 तक के लिये पाठ्य पुस्तकों को 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना है। दूरदर्शिता और वर्तमान संदर्भ में समन्वय सुनिश्चित करने पर ध्यान देना है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने नेताजी सुभाष चंद्र बोस के उस कथन को याद करते हुए कहा है कि हमारे पास एक लक्ष्य और शक्ति होनी चाहिए जो हमें निडरतापूर्वक वीरता के साथ शासन करने के लिए प्रेरित कर सके। आत्मनिर्भर भारत में आज हमारे पास एक ऐसी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति उभर कर सामने आयी है। जो राष्ट्र को पथ प्रदर्शक करने कार्य करेगी तथा सा विद्या या विमुक्तये के लक्ष्य को प्राप्त करने का भी काम करेगी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 29 जौलाई 2020 दिन बुधवार को मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा जारी की गई। शिक्षा नीति में यह बदलाव कुल 34 वर्षो के बाद हुआ है। इससे पहले जो राष्ट्र में शिक्षा नीति चल रही थी। वह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में बनी थी। वर्ष 1992 में इस नीति में कुछ संसोधन किये गये थे। परन्तु नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 राष्ट्र के युवाओं को व्यवसाय एवं कला कौशलों से जोडने का काम करेगी। 'सा विद्या या विमुक्तये' के उद्देश्य को यह शिक्षा नीति हासिल करने का काम करेगी। यथा–

''विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम।
पात्रत्वात् धनमा प्रोति, धनात धर्म ततः सुखम्।।''

अर्थात

''विद्या यानि ज्ञान हमें विनम्रता प्रदान करता है, विनम्रता से योग्यता आती है और योग्यता से हमें धन प्राप्त होता है, जिससे हम धर्म के कार्य करते है और हमें सुख मिलता है।''

उपर्युक्त श्लोक हमारे धार्मिक ग्रंथ विष्णु पुराण से लिया गया है। इसके सुप्रसिद्ध लेखक श्री नारायण पंडित जी ने न केवल किसी धर्म विशेष को अपितु सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान (विद्या) के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य किया है तथा 'सा विद्या या विमुक्तये' को चरितार्थ किया है। विष्णुपुराण के प्रथम स्कन्ध के 19वें अध्याय के 41वें श्लोक के अनुसार कर्म वह है जो बन्धन में डाले तथा विद्या वह है जो मुक्त कर दे।

जगद्गुरू भांकराचार्य के मतानुसार– 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात ''विद्या वही है जो मुक्ति दे।''

वास्तविक शिक्षा वही होती है जो किसी भी व्यक्ति को पूर्ण जीवन जीने की कला सिखाती है। जो हमें मोक्ष/मुक्ति का मार्ग प्रदान करे। इसके अतिरिक्त जिसके पास विद्या(शिक्षा/ज्ञान) है, उसी को मुक्ति मिलती है। जबकि हिन्दू धर्म के अनुयायी सम्पूर्ण विश्व में अपने ज्ञान और दर्शन के लिए युगों–युगों से प्रसिद्धि पा रहे है। ज्ञान भारतीय परम्परा एवं विश्व कल्याण का पवित्र विषय रहा है। इस राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति सम्पूर्ण विश्व जगत में विख्यात है। विश्व में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उदाहरण दिये जाते है। विश्व इसकी नकल कर संतोष प्राप्त कर रहे है। भारतीय ज्ञान एक कल्प वृक्ष है। ज्ञान के द्वारा ही समस्त गूढ रहस्यों का प्रस्फटन होता है। ज्ञान के द्वारा धर्म को साधा जाता है तथा इसी से काम, क्रोध, मोह, मद्, लोभ आदि को नियंत्रण में रखा जाता है। इसका ज्ञान हमारे धार्मिक ग्रन्थों एवं गुरूजनों की असीम अनुकम्पा द्वारा संभव है। गुरू की हमेशा यह अभिलाषा रहती है कि उसका ज्ञान, कौशल, कला उसके विद्यार्थियों में समा जाये। गुरू का गुरूत्व शिष्य में आ जाये। ज्ञानवान, कलाकार और बुद्धिमान बनकर अपने ज्ञान के प्रकाश से जगत की अज्ञानता को दूर कर सके। इसी तथ्य को गणदास वकुलावालिका परिचायिका से कहता है कि–

पाल विशेशे न्यस्तं गुणान्तरं ब्रजति शिल्पमाध्तुः
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ता पफलता पयोदस्यः।।

गुरू की कला विशिष्ठ शिष्य में पकड कर और सुन्दर हो जाती है। जैसे मेघ का जल सागर की सीपी में पहुॅचकर मोती बन जाता है।

भारत में वेदों की रचना काल के पूर्व से ही लोकमंगल हितैषी ज्ञान परम्परा है। अतः मैं निष्कर्षतः कहना चाहता हूॅ कि इस अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी को तभी सफल बनाया जा सकता

है, जब राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को 'सा विद्या या विमुक्तये' एवं नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य प्रत्येक भारतीय की समझ में आ जाये। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की सम्पूर्ण रूपरेखा से प्रत्येक नागरिक परिचित होकर भारत के भविष्य के प्रति अपने दायित्वों एवं जिम्मेदारियों को ध्यान में रखें। हम सब साथ मिलकर भारत को एक ऐसा राष्ट्र बना सके, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्कषक एवं उत्कृष्ट हो और जो शेष विश्व को प्रेरित करता रहे। यही आजादी के अमृतकाल स्वतन्त्रता दिवस पर अपनी आजादी का जश्न सिद्ध होगा तथा भारतीय ज्ञान परम्परा से विश्व कल्याण का सपना, भारतीय स्वतन्त्रता दिवस की 75वीं वर्षगांठ या आजादी का अमृतमहोत्सव मनाने का सपना पूर्ण होगा। भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत आधुनिक विषयों को पढाने की संस्तुति की गई है। जिसमें प्राचीन बीजगणित, ज्योतिष, भारतीय वाद्य यन्त्र, भाषा विज्ञान, धातु शास्त्र, मूर्ति विज्ञान और प्राचीन भारत में भारतीय धार्मिक ग्रन्थों आदि की शिक्षा से भारतीय परम्परा एवं विश्व का कल्याण होगा।

22.

भारतीय जीवन मूल्यों में वैश्विक शांति व सुरक्षा हेतु वसुधैव कुटुंबकम की प्रासगिकता व शिक्षकों की भूमिका: एक दृष्टिकोण

डॉ कविता गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
महालक्ष्मी कॉलेज फॉर गर्ल्स, गाजियाबाद

"सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद दुःखभाग भवेत"

अर्थात सभी सुखी हों, सभी निरोगी रहें, सभी कल्याण देखें, किसी को भी दुख का भागी न होना पड़े।

मानव एक सामाजिक प्राणी है वह सामाजिक विकास व शांति स्थापित करने में मनुष्य की भूमिका प्राचीन काल से ही अत्यंत अहम् रही है। वर्तमान समय में मनुष्य जीवन की व्यवस्तता के कारण व मनुष्य जीवन में मूल्य हास के कारण आज वैश्विक शांति व सुरक्षा पर अनेकों सवाल उठाए जा रहे हैं। आज के तकनीकी युग में शिक्षा प्रणाली में नवीन विधाओं को प्रयुक्त कर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तो आवश्यक हुआ है परंतु फिर भी मनुष्य के जीवन में मूल्यों का पतन हुआ है। इन मूल्य हास को ही विश्व में फैली अहिंसा, अराजकता व अशांति के घटकों के रूप में जाना जाता है। आज हमें एक ऐसे दर्शन व सकारात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसके द्वारा हम अपने नजरिए में परिवर्तन कर संपूर्ण विश्व में शांति व सुरक्षा की स्थिति को पुनः प्राप्त कर सके व सर्व भवंतु सुखिनः सर्व संतु निरामया की महत्ता को पहचान सके अर्थात यदि हर व्यक्ति सुखी रहेगा तभी प्रत्येक व्यक्ति निरोगी रहेगा क्योंकि प्रसन्नचित मन ही व्यक्ति की निरोगी होने का मूल मंत्र है। हर व्यक्ति के सुख को केवल विश्रांति व सुरक्षा से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः आवश्यकता है कि शैक्षिक स्तर पर

शांति शिक्षा जैसे विषयों को प्राथमिक स्तर से ही पाठयक्रम का एक आवश्यक अंग बनकर विश्व में अंतरराष्ट्रीय सद्भावना व सुरक्षा की भावना को बढ़ावा दिया जाए ताकि व्यक्ति में नैतिक मूल्य व आदर्शवादी मूल्यों को स्थापित कर समाज में फैली अराजकता की स्थिति को पाटा जा सके।

वसुधैव कुटुंबकम का अर्थ एवं आवश्यकता

अर्थ वसुधैव कुटुंबकम संस्कृत भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ है संपूर्ण विश्व एक परिवार है व प्रत्येक व्यक्ति इस परिवार का ही सदस्य है। वसुधैव कुटुंबकम एक नवीन सिद्धांत न होकर कालातीत सिद्धांत के रूप में जाना जाता है।यह सदियों से ही भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक विरासत की धारा के रूप में जाना जाता है। वसुधैव कुटुंबकम तीन शब्दों का संग्रह है– वसुधा, ईद तथा कुटुंबकम जिनके अर्थ क्रमशः पृथ्वी, जोर देना तथा परिवार है। वसुधैव कुटुंब की उत्पत्ति हितोपदेश से मानी जाती हैं। हितोपदेश का तात्पर्य है– किसी का हित या उपकार करने के उद्देश्य से किया जाने वाला कार्य,उपदेश व नसीहत। हितोपदेश के समान ही वसुधैव कुटुंबकम प्राणियों की इस अवधारणा को की यह मेरा परिवार, यह तेरा परिवार, यह अजनबी और यह रिश्ततेदार जैसी संकीर्ण सोच में परिवर्तन कर संपूर्ण विश्व को परिवार व सभी प्राणियों को इस परिवार का सदस्य मानकर सभी के समान हितो के लिए व्यक्तियों में विश्व बंधुत्व, भाईचारे, प्रेम, सुरक्षा व शांति जैसे गुणो का विकास करता है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् द्य उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

'संकीर्ण सोच वाले लोग पूछना पसंद करते हैं, श्यह व्यक्ति हम में से एक है, या वह अजनबी है?' लेकिन महान चरित्र वालों के लिए पूरा विश्व एक परिवार है।'

आवश्यकता

मानव इतिहास सदैव से ही संघर्षों और युद्धों से जुड़ा रहा है और आज वर्तमान में भी इन संघर्षो और युद्ध का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से प्रतीत होता है। आज विज्ञान प्रौद्योगिकी व तकनीकी के विकास के बाबजूद भी सम्पूर्ण विश्व संघर्षो के प्रभाव से अछूता नही है। आज पूरा विश्व एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में इतना खोया हुआ है कि निष्पक्षता ईमानदारी, सत्यता व न्याय जैसे मूल्यों को तिलांजलि दिए हुए हैं। आज इन मूल्य हास के कारण पूरा विश्व एक ऐसे चौराहे पर आकर खड़ा हो गया है जहां उसे सर्वनाश, अशांति, अराजकता आतंकवाद जैसे उप द्रव्यों का सामना करना पड़ रहा है।आज जहां व्यक्ति भौतिकता की चरम सीमाओं व आसमान की ऊंचाइयों पर पहुंच चुका है वहीं दूसरी ओर वह इस बात से पूर्ण रूप से अज्ञान है कि वह महाविनाश की सुरंगों के ऊपर अपना महल तैयार कर रहा है। राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय संघर्ष, सामाजिक विषमता, सांप्रदायिक संघर्ष व वैयक्तिक अलगाव ऐसे कारण है जिन्हें अगर व्यक्ति के जीवन से विस्थापित नहीं किया गया तो विश्व

बंधुत्व, विश्व शांति व वसुधैव कुटुंबकम जैसे सकारात्मक दृष्टिकोण को प्राप्त करना तो दूर इसकी कल्पना करना भी संभव नहीं होगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं एवं वैश्विक संकट

आज संपूर्ण विश्व वैश्विक संकटकी दौड़ से गुजर रहा है। आज के इस दौर में जहां हम वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन), एकीकरण व आपसी समन्वय की बात करते हैं यह वैश्वीकरण विश्व में तो क्या हमारे अपने परिवार व समाज में भी धूमिल हो रहा है। आज परिवार में लोग अपने हितों व लालच के कारण अपने परिवार के सदस्यों को नुकसान पहुंचाने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। लोगों में मूल्यों व संवेदनाओं के पतन के कारण मनुष्य केवल अपने हितों के बारे में ही सोचता है। अपने हितों के लिए व्यक्ति को चाहे किसी भी हद तक क्यों ही न जाना पड़े व इसमें तनिक भी संकोच नहीं करते। मनुष्य की यह प्रवृत्ति केवल कुछ व्यक्तियों के लिए ही घातक सिद्ध नहीं हो रही बल्कि यह एक ऐसी महामारी के रूप में पूर्ण विश्व में व्याप्त हो चुकी है अगर इसके प्रति उचित कदम उठाकर लोगों को सचेत व उनकी सोच में परिवर्तन नहीं किया गया तो मनुष्यों की यह प्रतिक्रिया वैश्विक संकट का रूप धारण कर एक प्रलप की स्थिति उत्पन्न कर सकती है।

वसुधैव कुटुंबकम का महत्व व प्रभाव

वसुधैव कुटुंबकम एक नवीन प्रत्यय न होकर ऋषि व मुनियों के द्वारा दी गई एक प्राचीन अवधारणा है। जिसका उद्देश्य पूरे विश्व को एक परिवार व परिवार के सदस्यों के रूप में रख सभी का कल्याण करना था ताकि सभी प्राणियो के मन में मानवता फल फूल सके वह विश्व में शांति सुरक्षा न्याय को स्थापित किया जा सके।

हमारे देश में अनेको जाति व धर्मो के लोग समाहित होने के कारण इसे अनेकता में एकता वाला देश कहा जाता है। शांति संपन्नता और समद्धता से परिपूर्ण इस देश को सोने की चिड़िया कहा जाता था परंतु 16 वी व 17 वी शताब्दी में यूरोपीय देशों के उपनिवेशवाद के कारण देश में पनपने वाली सुख व शांति ने धीरे–धीरे अपना रूप परिवर्तन कर युद्ध का रुप धारण कर लिया था। जिससे शनैः–शनैः प्राचीन काल से चली आ रही वसुदेव कुटुंबकम की भावना कम होती चली गई और उसका प्रभाव सिर्फ भारत देश पर न पड़कर पूरे विश्व पर पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान में विश्व की शांति, सुरक्षा तथा आपसी प्रेम ने अशांति, असुरक्षा नरसंहार व भयंकर विनाश का रूप धारण कर लिया है। विनाश की यह स्थिति विश्व के लिए एक चेतावनी है। अतः आज आवश्यकता है कि इस भीषण विनाश की स्थिति से विश्व को बचाया जाए तथा इस धरा को स्वर्ग से सुंदर बनाया जाए और यह है तभी संभव हो सकता है जब सभी के मन में एक दूसरे के प्रति प्रेम आदर सम्मान सद्भावना व शांति आदि के भावों को पैदा किया जाए ताकि नष्ट हो रही सौहार्द की भावना को पुनः जीवित

किया जा सके तथा संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखा जा सके।

वसुधैव कुटुंबकमः एक परिवार, एक सदस्य व उज्जवल भविष्य

वैसे तो आज हमारा विश्व वैश्विक गांव में तब्दील हो चुका है परंतु फिर भी गिरते हुए मूल्य हास ने समाज राष्ट्र संस्कृति व लोगों क के बीच एक धुंधली सी रेखा खींच दी है जिसके कारण सदियों से चली आ रही वसुधैव कुटुंबकम की तस्वीर धूमिल सी हो गई है।

आज इस दिशा में हमे अनेको प्रयास किए जाने की आवश्यकता है ताकि धूमिल वसुधैव कुटुंबकम की परिकल्पना एक परिवार, एक सदस्य व उज्जवल भविष्य को सत्य सिद्ध किया जा सके। इस आवश्यक परिवर्तन के लिए संपूर्ण सृष्टि की अंतर्निहित एकता और संपूर्ण विश्व की अनयोन्यश्रायता अनिवार्य है। इस अन्योन्यश्रापता का एक जीवांत उदाहरण कोविड महामारी के काल मे देखने को मिला। यह ऐसा काल था जिसने न केवल किसी एक देश को प्रभावित किया वरन बल्कि इसका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा। जिसका सभी राष्ट्र राष्ट्रों ने मिलकर सामना किया। भारत ने अन्य देशों व राष्ट्रीय को चिकित्सा व अन्य सहायता प्रदान कर न केवल कठिन परिस्थितियों से उबरने में मदद की बल्कि इन विपरीत परिस्थितियों में वसुदेव कुटुंबकम की परिकल्पना को भी सत्य कर दिखाया।

इसके अतिरिक्त हमारे देश के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी जी द्वारा विश्व भर में शुरू किया गया अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस पूरे ब्रह्मांड और प्राणियों के बीच एकता की भावना को परीक्षित करता है।यही नही प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता व नेतृत्व में सफल हुए जी–20 शिखर सम्मेलन जिसका उद्देश्य संपूर्ण विश्व का आर्थिक विकास, सतत विकास व पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देना था की सफलता सटीक रूप से वसुधैव कुटुंबकम एक पृथ्वी, एक परिवार व उज्जवल भविष्य को यथार्थ करती है।

वसुधैव कुटुंबकम के संदर्भ में शिक्षकों की भूमिका

इतिहास गवाह है कि प्राचीन काल से ही भारतीय परंपरा में गुरु को एक सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। आज इस भौतिकवादी युग में चाहे कितनी भी तकनीकी व विकास क्यों न हो जाए परंतु शिक्षकों की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। भारतीय मनीषियों ने गुरु की महत्ता को वर्णित करते हुए कहा है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः

किसी भी राष्ट्र के निर्माण व विकास में शिक्षकों की भूमिका अहम होती है। शिक्षा का सफल संचालन न केवल अच्छी शिक्षा नीतियो और न केवल अच्छे शिक्षण संस्थानों पर निर्भर करता है अपितु इस सफलता का मुख्य केंद्र बिंदु शिक्षक होता है। शिक्षक का स्थान इस

शिक्षण व्यवस्था में सर्वोपरि होता है। ऐसा माना जाता है कि इस शिक्षण व्यवस्था में जैसे शिक्षक होंगे वैसे ही शिक्षा वह अपने छात्रों को प्रदान करेंगे। इसलिएअनिवार्य है कि शिक्षक उत्तम गुणों से युक्त हो ताकि वह छात्रों में अच्छे संस्कारों का विकास कर सके।

शिक्षक एक आईने के समान होता है व छात्र उसके प्रतिबिंब की तरह। जिस प्रकार साफ आईने से बनने वाला प्रतिबिंब बिल्कुल स्पष्ट होता है,ठीक उसी प्रकार मूल्य युक्त शिक्षकों से ओत प्रोत छात्र भी मूल्यों से परिपूर्ण होते हैं।

अतः सुरक्षित व समृद्ध समाज का दावेदार जहां छात्रों के हाथ में होता है वहीं इसकी डोर शिक्षकों के हाथ में होती है क्योंकि अगर समाज में शिक्षक गण अच्छे होंगे तो हमारी शिक्षा अच्छी होगी और अच्छी शिक्षा ही अच्छे नागरिकों को जन्म देगी व अच्छे नागरिक ही देश में सुख सुख, शांति, समृद्धि, आपसी प्रेम, भाईचारे,सही सहिष्णुता आदि की भावना को समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचा कर पूरे विश्व में विश्व बंधुत्व की भावना को उत्पन्न करेंगे।इसलिए आवश्यक है कि शिक्षकों में उदारता, सहिष्णुता, दया, स्नेह, क्षमा व विनम्रता जैसे गुणों का समावेश हो ताकि शिक्षक अपने इन गुणों को अपने छात्रों में प्रवाहित कर न केवल छात्रों को अच्छा नागरिक बनाने मे सहयोग करे बल्कि संपूर्ण राष्ट्र के निर्माण में सहयोग कर अपनी भूमिका का उचित निर्वहन कर सके।

वर्तमान में पूर्ण होती हुई वसुधैव कुटुंबकम की परिकल्पना

आज वर्तमान में वसुधैव कुटुंबकम की परिकल्पना सत्य सिद्ध हो रही है। भाग–दौड़ से भरे इस विकासशील विश्व में वसुधैव कुटुंबकम की महत्वपूर्णता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। वसुधैव कुटुंबकम सन्देश का पालन आज विश्व स्तर पर किया जा रहा है। हम जिस समाज में रहते हैं वहां बहुत ही तेजी से राष्ट्र, जात–पात, संस्कृति की बाधाएं खत्म होती नजर आ रही हैं। आज हमारा समाज वसुधैव कुटुंबकम सन्देश का पालन करके एक ऐसी दुनिया का निर्माण करने को तैयार है जहाँ सभी के साथ समान रूप से और गरिमापूर्ण व्यवहार किया जाता हो।

वसुधैव कुटुंबकम के प्रभाव से एक बेहतर भविष्य का निर्माण हो सकता है। भाईचारा, एकता और एक–दूसरे के प्रति सम्मान को बढ़ावा देकर हम असमानताओं को कम कर सकते हैं तथा मानवता के मूल्य को समझ सकते हैं। विश्व में वसुधैव कुटुंबकम की भावना शांतिपूर्ण, सामंजस्यपूर्ण और समावेशी से भरे विश्व का निर्माण करेगी।

निष्कर्ष

वर्षों से चली आ रही इस वासुधैव कुटुंबकम को लोगों के दिलों में जीवित रखने हेतु आज नवयुवको तथा प्रत्येक नागरिक को इस दिशा में जागरूक होने की आवश्यकता है।

इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी संकीर्ण सोच कि यह मेरा और यह तेरा जैसी मानसिकता में परिवर्तन कर यह हमारा है जैसी भावनाओं में तब्दील कर संपूर्ण विश्व को अपना परिवार मानकर एक उदार चरित्र का परिचय दें।

उदार चरितानां तु वस कुटुंबकम

उदार चरित्र वालों के लिए पूरा विश्व एक समुदाय है और इसी भावना से ओत–प्रोत होकर पूरे विश्व को एकजुट होकर चलने की आवश्यकता है तभी इस वसुदेव कुटुंबकम की इस प्रासंगिकता को चरित्रार्थ किया जा सकता है।

संदर्भ सूचीः–

- Akashi H. Ishizuka A, Lee S, Irie M, Oketani H, Akashi R. The role of the G20 economies in global health. Glob Health Med. 2019:1(1):11- 5.
- Gajender jain & Neelam Jain (2023): Vasudhaiva Kutumbakam and one health approach towards sustainable healthcare to combat global AMR
- Puri, B. N., & Verma, S. (Eds.). (2015): Vasudhaiva Kutumbakam: Cultural Dimensions of Environment and Ecology. Springer: Cultural Dimensions of Environment and Ecology. Springer
- Raina SK. Kumar R. Vasudaiva kutumbakam-one earth, one family, one future- India's mantra for a healthy and prosperous earth as the G20 leader. J Family Med Prim Care. 2023; 12(2):191-3. 2. India's philosophy of Vasudhaiva Kutumbakam

23.

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति, जल, पर्यावरण सरक्षण

कु0 सरिता
प्रवक्ता
बाबू कामता प्रसाद जैन महाविद्यालय, बड़ौत, उ0प्र0

भारतीय ज्ञान परम्परा में पर्यावरण का अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। पर्यावरण संरक्षण में हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने प्रकृति की समग्र शक्तियों को जीवनदायिनी मानते हुए उन्हें देवत्व का स्थान प्रदान किया हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में धरती को माता के सामान मानकर जल, हवा नदियों, पहाड़, पर्वत जलाशय आदि को पूजनीय मानकर उनकी सुरक्षा एवं संरक्षण का दायित्व मनुष्य को प्रदान किया हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने प्रकृति को जीवन से जोड़ते हुए इसके संरक्षण की शिक्षा अपने आश्रमों में दी हैं। प्रकृति और मानव का अटूट सम्बन्ध सृष्टि के निर्माण के साथ से ही चला आ रहा हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पच्च रचित अति अधम सरीरा ''इन पंच तत्वों से हमारे शरीर का निर्माण हुआ हैं अतः बिना प्रकृति के तो हम अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं।

आज समाज का एक प्रबुध वर्ग यह मानकर चलता हैं कि हम उस संस्कृति में विश्वास नहीं रखतें हैं जो दकियानूसाी या देवी देवता वाले धर्म को मानत हो, अर्थात आज एक बड़ा वर्ग आस्तिकता को बिल्कुल नहीं मानता हैं। उनके जीवन का लक्ष्य केवल भौतिक सुख सुविध ाा प्राप्त कर एवं उनका भोग करना हैं। वे ऐसी संस्कृति में नहीं लौटना चाहते हैं जो किसी भी सजीव या निर्जीव वस्तु को किसी न किसी रूप में पूजती और स्वीकार करती हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपना धर्म, संस्कृति, विचार आदि को चुनने एवं मानने का अधिकार हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता हैं कि कौन आस्तिक हैं कौन नास्तिक, कौन धार्मिक हैं कौन अधार्मिक ? लेकिन पर्यावरण सबके लिए समान हैं, पेड़ पौधों, जीव जंतु, पानी हवा का महत्व सबके लिए समान है। जब पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता है, या प्रकृतिक विपदा आती हैं तो वो सब पर समान रूप से कहर ढ़ाती हैं। अतः पर्यावरण संरक्षण हम सबका दायित्व हैं। पर्यावरण एवं मानव के संबंधों की व्याख्या हमारे वेदों में की गयी हैं जिससे यह पता चलता हैं कि हमारे वेद प्रकृति

विज्ञान के मुख्या ग्रन्थ हैं। ऋग्वेद में अग्नि की व्याख्या के गयी है। हमारे सभी ऋषि मुनियों ने इन तत्वों को देव स्वरूप माना हैं और इसीलिए प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप की उपासना की जाती हैं।

प्रत्येक युग में मानव व प्रकृति की अटुट सम्बन्ध रहा हैं। तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में भी प्रकृति एंव मानव के सम्बन्ध का जीवन उदाहरण देखने को मिलता हैं। रामचरितमानस के उत्तकाण्ड में वर्णन मिलता हैं कि मनुष्य जीव जन्तु वन उपवन मे किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते है। ऐतराय ब्राहमण में भी पृथ्वी को एश्वैर्य और सौभाग्य दात्री कहा हैं। त्रेता युग में भी प्रकृति एंव मानव के मध्य अट्ट सम्बन्ध देखने को मिलता हैं। त्रेता युग में महाभारत में वृक्षों की पूजा का प्रचलन था। वृक्षों को काटना महापाप समझा जाता था। रामायण में भगवान राम ने अपने जीवन के चौदह वर्ष एवं पांडवों को जब वनवास दिया गया तो इन्होंने अपना जीवन व्यतीत करने के लिए वृक्ष की पत्तियों एवं छल का प्रयोग किया।

हमारे ऋषि मुनियों ने दुर्लभ वृक्षों के संरक्षण हेतु उनका संबंध किसी न किसी देवता से स्थापित किया हैं। गीता में स्वंय भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं स्वंय पीपल का वृक्ष हूँ, तुलसी का पौधा स्वंय विष्णुप्रिया के रूप में पूजनीय हैं। संतान प्राप्ति के लिए बरगद की पूजा की जाती हैं। हमारी संस्कृति पर्यावरण संरक्षण प्रधान रही हैं जो प्रदूषण पर विराम लगती हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में मानव तथा प्रकृति के बीच अटृट रिश्ता कायम किया है। हमारी ज्ञान परम्परा मे पेड़ पौधों शास्त्रों झरने पशु पक्षी यहाँ तक कि पहाड़ पर्वत को भी पूज्य बताया हैं तथा उनके प्रति सम्मान प्रकट किया हैं। हमारे दूरदर्शी ऋषि मुनियों ने पर्यावरण से मुक्त रखने के लिए अनेको उपाय बताये हैं। हमारी प्रत्येक ज्ञान परम्परा के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक तथ्य छुपा हुआ हैं। जैसे हमारे पूर्वजों ने हर घर तुलसी की बात कही हैं, आज वैज्ञानिकों ने भी ये सिद्ध कर दिया हैं कि तुलसी सबसे ज्यादा आक्सीजन देने वाला, एवं सबसे ज्यादा गुणकारी पौधा हैं। तुलसी के पत्तों के सेवन से अनेक रोगों से बचाव होता हैं। शायद यही कारण हैं कि इसके लाभ को देखतें हुए हमारे पूर्वजों ने इसे विष्णुप्रिया की संज्ञा दी हैं जिससे कि हम सभी अपने घर में तुलसी लगाये और उसका संरक्षण करें।

भारतीय संस्कृति तथा विज्ञान का आपस में अविच्छेद सम्बन्ध हैं अर्थात हमारी भारतीय संस्कृति और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। आमतौर पर गृहिणी अपने बच्चों को रात में पेड़ पौधों को छूने से मना करती है, वे सो जाते है और रात में उनकों परेशान नहीं करना चाहिए। लेकिन इसके पीछे भी वैज्ञानिक तथ्य हैं कि रात में अधिकतर पेड़ कार्बन डाई आक्साइड छोड़ते हैं। अतः रात में आमतौर में लोग पेड पौधों के नीचे विश्राम नहीं करते हैं। वेदों में वृक्षों की महता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि वृक्षों के मूल में ब्रहमा, मध्य भगवान विष्णु और शिरोभाग में भागवान शिव का वास होता हैं। प्राचीन चिकित्सा पद्धति की अगर बात की जाये तो शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध मिट्टी के द्वारा ही उपचार किया जाता था। वृक्षों को जल

से सींचना भगवान शिव को जल चढ़ाने के समान ही माना जाता हैं। वृक्ष को नीलकंठ भगवान की उपमा दी जाती हैं क्योंकि जिस प्रकार भगवान शिव ने विषपान करके अमृत सबमें वितरित किया था ठीक उसी प्रकार वृक्ष विषरूपी गैस को पीकर अमृतरूपी आक्सीजन गैस को बाहर निकालते हैं। वेदों में इस बात का संकेत हैं कि पीपल के नीच बैठना स्वस्थ्यप्रद हैं, पलाश के पेड़ दिन रात सुगंध और प्राणवायु छोड़ते हैं। वृक्ष हमारी संस्कृति की धरोहर हैं इसलिए अनेक पेड़ पूजे जाते है। पीपल और बरगद के पेड़ को तो ब्राहमण माना गया है। प्राचीन काल में ऋषि मुनि आश्रमों में शिक्षा के साथ–साथ वृक्षारोपण भी कराते थें।

हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा में जल के महत्व को भी दर्शाया गया हैं। वेदों में जल की महता बताते हुए कहा गया हैं कि जल जीवन के लिए अति आवश्यक हैं। जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ''हे जल देवता मुझसे जो भी पाप हुआ हो उसे दूर बहा दो अथवा मुझसे जो भी द्रोह हुआ हो, मेरे किसी कृत्य से किसी भी कष्ट हुआ हो अथवा मैनें किसी अपशब्द कहे अथवा असत्य वचन बोले हो तो वह सब भी दूर बहा दो। जल के संरक्षण के लिए ही हमारी ज्ञान परम्परा में नदियों को माँ की संज्ञा दी गयी हैं। हमारी संस्कृति में नदियों की पूजा की जाती हैं, कुओं की पूजा की जाती हैं। वेदों में जलस्त्रोंतों को गन्दा करने पर प्रतिबंध रहता है। लोग शिवरात्रि पर हजारों मील की कावंड यात्रा के बाद पवित्र गंगा नदी से गंगाजल लेकर आते हैं नदिया भूमिगत जल का स्तर बढ़ाती है एवं प्राकृतिक सौन्दर्य को भी बढ़ाती है। हमारी संस्कृति में जलस्त्रोतों को गन्दा करने पर दंड का विधान था। कुए, तालाब, नाहर, झील आदि के निर्माण को धार्मिक कृत्य माना जाता है। हमारी संस्कृति में ऐंसा माना जाता था कि यदि कोई निसंतान है तो कुए और बावडी बनवाने से उसको मुक्ति मिलने की मान्यता थी। धर्मपरायण व्यक्ति जालशय बनवाकर वृक्षारोपण कर, देवालय बनवाकर, धर्म में संवर्धन करते थे।

हमारी संस्कृति परम्परा में वन्य जीव जन्तु को भी हमारे पर्यावरण अंग माना गया हैं। गायों की रक्षा के लिए गोपाष्टमी बछबरस आदि त्यौहार मानये जाते है। हमारी संस्कृति में गाय को माता माना गया है। गाय किसानों की जीवन धारा हैं। अतः गाय सर्वदा ही पूजनीय हैं। हमारी संस्कृति में जीव जन्तु, कीडे मकोड़ों आदि को भी पूजनीय मन गया हैं जिससे कि पारिस्थितिकी संतुलन बना रहें। यहाँ तक कि विषधर सांप को भी हमारी संस्कृति में पूजा जाता हैं। चीटियों को आटा डालने का विधान केवल भारतीय ज्ञान परम्परा में ही देखने को मिलता है। भारतीय ज्ञान परमपरा में घर के छत की मुंडेर पर दाना पानी की व्यवस्था की जाती हैं। मछलियों को आटा डाला जाता है। शनिवार के दिन कीड़ी नगर को सींचने का विधान हैं क्योंकि चीटी नयी मिट्टी बाहर निकलती हैं। श्राद्ध पक्ष में कोऔं को भी भोजन खिलाने की परम्परा हैं क्योकि ऐसा कौओं मरे हुऐ जानवरों की गन्दगी को दूर करते हैं। हमारे

देश में आज भी भोजन से पहले चीटी, गाय, कुत्ते के लिए रोटी निकली जाती हैं ताकि इनको जीवित की व्यवस्था बनाई जा सकें।

हम उस महान ज्ञान परम्परा के वाहक हैं जिसमें प्रकृति के साथ संतुलन जीवन व्यतीत किया जाता हैं। हमारी संस्कृति पेड़ पौधों जीव जन्तु कीड़े मकोड़े तो क्या पहाड़ और पर्वतों को भी पूजने का विधान हैं। हमारे देश में हिमालय पर्वत को देवों के देव महादेव की भूमि के नाम से जाना जाता हैं। विन्ध्याचल पर्वत को देवी की भूमि कहा जाता हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत को अपनी उंगली पर उठाकर पूजा का विधान प्रारम्भ किया था क्योंकि गोवर्धन पर्वत पर अनेक दुर्लभ औषधि एवं दुर्लभ पेड़ पाये जाते थे। इसके साथ ही गोकुलवासियों के पशुओं का पालन पोषण भी गोवर्धन पर्वत पर ही निर्भर था। तभी से सम्पूर्ण भारत में दीपावली के बाद गोवर्धन को धूमधाम से मनाया जाता हैं। हमारे ऋषि मुनि उच्च कोटि के वैज्ञानिक होने के साथ ही दूरदर्शी भी थे, वे जानते थे कि अगर वे प्राकृतिक संसाधनों को धर्म एवं पूजा से सम्बन्धित नहीं करेंगें तो मनुष्य अपने लालच में इन सबका दोहन करके प्रकृति को बहुत बड़ी हानि पहुँचा सकता हैं।

आज भौतिकता के इस युग मे हम अपनों संस्कृति को पीछे छोड़कर कृत्रिम दुनिया के पीछे दौड रहे हैं और अनेकों समस्याओं का सामना कर रहे हैं। आज दुनिया भर में स्वस्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु भारतीय ज्ञान परम्परा को अपनाने पर चर्चा चल रही हैं क्योकि आज जहाँ पूरा विश्व पर्यावरण संबंधी गंभीर समस्याओं से जुझ रहा हैं वहीं भारत में अभी भी बहुत से लोग अपनी पुरानी परम्परा को अपनाये हुए हैं जिससे बहरत में अब भी पर्यावरण संरक्षण की एक आशा की किरण बाकी हैं। पर्यावरण सरंक्षण की शिक्षा बचपन से ही बालक को दी जानी चाहिए। बचपन से ही उसे उसकी संस्कृति से जोड़ा जाना चाहिए। पर्यावरण असंतुलन की समस्या आज इतनी बड़ी हो चुकी हैं कि हम सबकों साथ मिलकर इस समस्या के समाधान को ढूंढना चाहिए। पर्यावरण दिवस, जल दिवस, वानिकी दिवस एवं पृथ्वी दिवस मनाकर लोगों को जागरूक करने का प्रयास कर रहे हैं जिससे कि हम अपनी वाली पीढ़ी के लिए एक स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

- http://hindi.webduniya.com
- http//bhartiyabasti.com
- रामायण
- महाभारत

24.

योग और स्वास्थ्य : विरासत से विकास

श्रीमती नीति शर्मा
शोघार्थी, डॉ0 भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
आगरा, उ0प्र0

'योग' की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'युज' से हुई है, जिसका अर्थ है जुड़ना या एकजुट होना। योग हमारे मन और तन को कार्य में जोड़कर शान्ति से एक साथ कार्य करने में मदद करता है। योग का उद्देश्य अत्यधिक कठिन कार्यो, मुसीबतों का सामना करने पर भी आत्मविश्वास और शान्ति को बनाये रखना है, तभी हमें सही अर्थों में कैवल्य की प्राप्ति हो सकेंगी। योग मनुष्य को आनंद, शान्ति और कृतज्ञता पूर्ण एक सफल एवं स्थायी जीवन शैली की ओर प्रेरित करता है।

योग : विरासत

योग विश्व का सबसे पुराना विज्ञान है, इसकी उत्पत्ति भारत से हुई है, योग का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के साथ–साथ आध्यात्मिक विकास को भी महत्वपूर्ण स्थान है। योग उतना ही प्राचीन है, जितना सभ्यता का आरंभ। इसमें भगवान शिव को प्रथम योगी या आदियोगी कहा गया है। पूर्व वैदिककाल में योग साधकों की मुहरें और जीवाश्म पाए गए हैं। वैदिक काल में ऋग्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में योग का उल्लेख मिलता है, अथर्ववेद में साँस को नियंत्रित करने के महत्व पर जोर दिया गया। पूर्व–शास्त्रीय काल के वैदिक साहित्य में शरीर और मन कैसे काम करते हैं, इसके अलावा आध्यात्मिक शिक्षा की बात भी कही गई है। 108 लिखित दस्तावेजों में से 20 योग उपनिषद थे। प्राणायाम, प्रत्याहार, श्वास के नियमन आदि का भी उपयोग किया जाता था। शास्त्रीय काल में योग के परिणामस्वरूप शान्तिपूर्ण मन के महत्व को काफी महत्व दिया गया। इसी काल में योग ने बौद्ध और जैन धर्म में प्रवेश किया। बौद्ध साहित्य में ध्यान और योग मुद्राओं पर जोर दिया गया, जिससे आत्मज्ञान प्राप्त करने में मदद मिली। जैन धर्म ने मुक्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिए

ध्यान के महत्व पर जोर दिया। वेद व्यास जी द्वारा पहली टिप्पणी योग सूत्र पर शास्त्रीय काल में लिखी गई थी।

उत्तर शास्त्रीय काल के कई योग शिक्षकों–शंकराचार्य, माधवाचार्य, रामानुजाचार्य, पुरंदर दास आदि ने योग कला के विकास की दिशा में काफी कार्य किया। तुलसीदास जी और पुरंदर दास जैसे योगियों का शारीरिक मुद्राओं और श्वास तकनीकों का योग या हठ योग काफी लोकप्रिय हुआ। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है ''योगःकर्मसु कौशलम्'' अर्थात् योग से कर्मों में कुशलता आती है। योग शरीर मन और भावनाओं में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करने का एक साधन है।

आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद को योग का प्रसार करने वाले प्रथम योगियों में से एक माना जाता है। यह काल शारीरिक मजबूतों के तरीकों के लिए योग पर केन्द्रित है। इस अवधि में भी योग का सार आत्मा, मन, शरीर और प्रकृति के साथ एकता की भावना में निहित है। वर्तमान में योग को पूरी तरह अपनाया जा रहा है, अब यह हमारे जीवन का महत्वपूर्ण भाग है। यह मनुष्य के व्यक्तित्व पर भी प्रभाव डालता है। साथ ही यह भौतिक और मानसिक संतुलन द्वारा शांत मन और संतुलित शरीर की प्राप्ति कराता है, यह शरीर में लचीलापन, मॉसपेशियों को मजबूती करने और शरीरिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाता है। इससे शरीर बलवान होता है तथा प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार होता है, इस प्रकार योग हमें निरोग रखता है, बशर्त हम इसे अपनी दिनचर्या का हिस्सा बना लें।

योग : स्वास्थ्य

योग का मुख्य उद्देश्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास करना है, योग एक और स्नायु संस्थान की कार्यप्रणली को अति कार्यत्मक बनाता है तथा दूसरी ओर भौतिक शरीर को रोग मुक्त रखता है, यह तनाव से मुक्ति द्वारा जीवनशैली में सुधार करता है, योग के कारण मानव को शरीरिक रोगों से मुक्ति मिलती है तथा उत्तम शारीरिक क्षमता का विकास होता है। प्राचीन काल से ही योग का हमारे जीवन में विशेष महत्व है, भारतीय धर्म और दर्शन ने योग को विशेष महत्व दिया है, आध्यात्मिक उन्नति या शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग की आवश्यकता एवं महत्व को प्रायः सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक संप्रदायों द्वारा एकमत से स्वीकार किया गया है।

योग : वर्तमान विकास

योग करुणा, धैर्य, सहनशीलता के मूल्यों को अपने भीतर आत्मसात करने पर काम करता है। यह मन को साफ रखने के साथ–साथ आज की तेज–तर्रार जिन्दगी को उत्तेजना और तनाव को भी कम करता है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत स्तर पर आत्म–साक्षात्मकार प्राप्त करना है। योग को शिक्षा क्षेत्र में भी अब विशेष स्थान प्राप्त है। योग दुनिया की नजरों में समृद्ध हुआ

है, यह पश्चिमी में भी फैल रहा है, संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया गया है, योग के प्रसार की दिशा में यह एक सुनहरा कदम है। इस प्राचीन अनुशासन को विशेष मान्यता और महत्व दिया गया है, क्योंकि यह प्रेम, शन्ति और सार्वभौमिक एकीकरण जैसी भावनाओं के साथ अरबों लोगों को प्रबुद्ध करने का मार्ग प्रशस्त करता है। आज की बदलती जीवनशैली में योग चेतना बनकर हमें होने वाले परिवर्तनों से निपटने में मदद कर सकता है। योग को अपनाना जीवन के प्रत्येक पहलू से हमारे लिए विकास का मार्ग है। दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक संतुलन को बनाये रखने के लिए योग को अवश्य अपनाना चाहिए।

आज के समय में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसे चिंता, तनाव ना हो। इसीलिए मनुष्य शारीरिक व मानसिक रोगों से ग्रस्त रहता है, योग ही मनुष्य को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान कर, तनावमुक्त कर सकता है, आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में इंसान के मन की शान्ति खो गई है, कोई ऐसी औषधि नहीं बनी है, जो मन को शान्ति प्रदान करें। योग ही एक ऐसा साधन है, जो यह सिखाता है कि कि प्रकार मन को शान्ति प्राप्त हो सकती है। योगासन मानसिक शान्ति के साथ शारीरिक शक्ति को भी बढ़ाता है, योग में सूर्य नमस्कार, शारीरिक अभ्यास तथा विभिन्न प्रकार के आसनों द्वारा शारीरिक शाक्ति को बढ़ाया जा सकता है, योगाभ्यास से सामान्य रोग जैसे–कब्ज, सिर दर्द, शरीर दर्द, आदि आसानी से दूर हो जाते हैं, इसके अतिरिक्त मधुमेह, उच्च रक्तचाप, गठिया के रोग, चर्म रोग, किडनी संबंधनी रोग हृदय रोग, नींद संबंधी विकार, अवसाद, तनाव और चिंता, पुराना दर्द आदि में भी योग, रामवाण के समान कार्य करता है।

उपसंहार

परिवार, समाज व राष्ट्र के निर्माण में योग का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, रोग मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक आदि विकास हेतु अत्यंत उपयोगी है। प्राचीन काल से ही साधु, ऋषि, महात्माओं ने योग का काफी प्रसार किया है, वर्तमान समय में स्वामी रामदेव जी ने योग का प्रचार–प्रसार कर जनता को इसके लाभ से परिचित करवाया है। योग को शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से और अधिक प्रचलित करना चाहिए, ताकि प्रत्येक व्यक्ति इससे लाभान्वित हो सके और समाज व एवं राष्ट्र के उत्थान में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। योग द्वारा हमारा राष्ट्र स्वस्थ एवं निरोगी राष्ट्र बने।

25.

जनपद हापुड़ की मलिन बस्तियों में स्वच्छ जल: एक चुनौती

प्रो० अर्चना गुप्ता
अर्थशास्त्र विभाग, एस० एस० वी० कॉलिज, हापुड

अनुज कुमार
शोधार्थी

"जल" (पानी) प्रकृति द्वारा मानव को दिया गया एक अमूल्य उपहार है। हमारे वेदों, शास्त्रों और पुराणों में भी जल के महत्व का वर्णन मिलता है। प्राचीनतम वेद (ऋग्वेद) में अप् शब्द जल के अर्थ में प्रयुक्त कर जल को देवता बताया गया है।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा
उत वा याः स्वयञजाः।
समुद्रार्था याः शच्यः पावकास्ता आपो
देवीरिह मामवन्तु।।

अर्थात जो दिव्य जल आकाश से "वृष्टि के द्वारा" प्राप्त होते है, जो नदियों में सदा गमनशील है, खोदकर जो कुएं आदि से निकाले जाते है और जो स्वयं स्रोतों के द्वारा होकर पवित्रता बिखेरते हुए समुद्र की और जाते है, वे दिव्यतायुक्त पवित्र जल हमारी रक्षा करे।

किंतु विडंबना देखिए कि एक तरफ हम चांद पर पहुँच गये है वही दूसरी ओर मलिन जनसंख्या आज भी सुरक्षित पीने के पानी से वंचित है।

स्वच्छ जल का अर्थ :– साधारण शब्दों में स्वच्छ जल वह है जो अशुद्वियों व हानिकारक सूक्ष्म जीवों से रहित तथा मानव उपभोग के लिए उपयुक्त हो।

जल का महत्व व वितरण :– जल के बिना जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती क्योकि प्रथ्वी पर जीवन का आरम्भ लगभग 3.5 अरब साल पहले जल से ही शुरू हुआ

था। पृथ्वी का लगभग 3ध्4 भाग जल से घिरा है इसलिए इसे जल ग्रह भी कहा जाता है किंतु मानव उपभोग हेतु केवल 2.7 प्रतिशत जल ही अलवणीय है जिसका 70 प्रतिशत भाग बर्फ के रूप में (अंटार्कटिका, ग्रीनलैड़, व पर्वतीय क्षेत्रों में) है। केवल 1 प्रतिशत जल (भूमिगत, नदियों, झीलों) मानव पहुँच में है। वर्ष 2017–2018 में भारतीय जल निकायों की प्रथम गणना, जल शक्ति मंत्रालय द्वारा कराई गयी। इस गणना अनुसार, सम्पूर्ण भारत में 24,24,540 जल स्रोत है जिनमें से 97.1 प्रतिशत (23,55,055) ग्रामीण क्षेत्रों में तथा मात्र 2.9 प्रतिशत (69,485) शहरी क्षेत्रों में है। जल स्रोत 5 शीर्ष राज्यों में पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, ओडिशा व असम है, जहां देश के कुल जल संसाधनों का लगभग 63 प्रतिशत जल है।

मलिन बस्ती का अर्थ व परिभाशा :– मलिन बस्तियां सामान्यतः जर्जर आवासीय क्षैत्र, प्रदूषण युक्त पर्यावरण तथा बिमारियों से ग्रसित स्थान है।

डॉ राधा कृश्णन मुखर्जी :– "झोपडियों में प्रकाश का अभाव रहता है और उनमें भीड़ बहुत रहती है तथा उनमें स्वच्छता तथा पानी की पूर्ति की सुविधाएं अपर्याप्त होती है"

ए०आर० देसाई :– "मलिन बस्तियां नगर व उपनगर का वह भाग है जिसमे बहुत कम स्थान में अत्यधिक निम्न आर्थिक स्तर के सामान्य श्रम करने वाले लोग बहुत घने रूप से बसे होते है। अर्द्व–मानवता, निर्धनता और अस्वच्छता इन बस्तियों की विशेषताएं है।"

मलिन बस्तियों की मुख्य विषेशताएं–

- मलिन बस्तियों में मकानों में भीड़–भाड़ व अनियमित आवास संरचना पायी जाती है।
- मलिन बस्तियों में निवासित परिवारों का जीवन स्तर निम्न होता है। अतः यहां स्वास्थ्य पेय जल, स्वच्छ वातावरण, सुरक्षित खादय पदार्थो जेसी बुनयादी सुविधाओं का अभाव होता है।
- यहां निवासित व्यक्तियों का मुख्य रोजगार मजदूरी या अन्य निम्न स्तरीय व्यवसाय होता है।
- मलिन बस्तियों के निवासी अशिक्षा, रूढ़ीवादिता तथा आपराधिक कृत्यों की प्रवृत्ति में संलग्न होते है।
- जल भराव, दुषित वातावरण, गम्भीर रोगों का यहां प्रसार पाया जाता है।

मलिन बस्तियों के निर्माणकारी घटक – मलिन बस्तियों का निर्माण एक दीर्घकालीन प्रकिया है जिसमे निम्नलिखित घटक वृद्वि करते है।

- नगरीय जनसंख्या में वृद्वि
- गरीबी का दुष्चक्र

- आवासीय मांग का पूर्ति से अत्यधिक होना
- औधोगिक क्रान्ति एवं शहरीकरण का आकर्षण
- ठेकेदारों व मालिकों द्वारा शोषण
- अशिक्षा व रूढ़ीवादिता
- कृषि क्षेत्र का औधोगिक क्षेत्र में स्थानांतरण
- गांवों से शहरों की और निरंतर पलायन
- प्रशासनिक उपेक्षा व अनदेखी (उदासीनता)
- भू–माफियाओं व बिचोलियों की मनमानी

अध्ययन क्षेत्र :–

हमारे लघु शोध का अध्ययन क्षेत्र भारत के उत्तर प्रदेश राज्य का जनपद हापुड़ है जो भारत की राजधानी नई दिल्ली से लगभग 60 कि०मी० दूर ,एन०सी०आर० क्षेत्र में आता है। जिसे पहले हरिपुर के नाम से जाना जाता था। जिसका कुल क्षेत्रफल 660 वर्ग किमी० है।

शोध के उददेष्य :–

- हापुड़ मलिन बस्तियों में पेय योग्य स्वच्छ जल की उपलब्धता का अध्ययन करना।
- हापुड़ मलिन बस्तियों में जल जनित रोगों के स्वरूप का आकलन करना है।
- पेय योग्य जल आपूर्ति समस्या के निवारण हेतु प्रशासन सुविधाओं का मुल्यांकन करना है।
- हापुड़ मलिन बस्ती क्षैत्र में भूमिगत जल स्तर का अवलोकन करना है।

हापुड़ मलिन बस्तियों में स्वच्छ जल का अवलोकन

स्वच्छ जल मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। यूनेस्कों के अनुसार भारत में आज भी 19.33 प्रतिशत जनसंख्या को स्वच्छ जल प्राप्त नही है मलिन बस्तियों में तो स्वच्छ की उपलब्धता और भयानक होती जा रही है। अतः हापुड़ मलिन बस्तियों में भी स्वच्छ जल की आपूर्ति निरंतर घटती जा रही है। अशिक्षा व जागरूकता के अभाव में मलिन बस्तियों में जल व्यर्थ ही बहाया जाता है। हापुड़ मलिन बस्तियां अनुसूचित मलिन बस्तियों के अन्तर्गत आती है जो कि समस्या का प्रथम चरण है। हमने हापुड़ की 5 मलिन बस्तियों में (प्रत्येक से 20 परिवार) स्वच्छ पेय जल उपलब्धता का साक्षात्कार द्वारा जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है। सरकारी टंकी लगने से पूर्व निम्नलिखित मलिन बस्तियों में भूमिगत जल स्तर लगभग 85 फुट पर था साथ ही निजी नलों की संख्या भी अधिक थी परन्तु आज वर्तमान में निजी नल धीरे–धीरे समाप्त हो गये है। कुछ मलिन बस्तियों में निजी नल मिले है किंतु उनका जल पीने योग्य नही है।

निरंक्षण द्वारा पाया गया कि इन मलिन बस्तियों में पेय जल संसाधन निरंतर घटते जा रहे है क्योकि यहां भूमिगत जल पिछले 10 वर्षो मे लगभग 15 फिट नीचे गिरा है। जहां की स्वच्छ जल आपूर्ति का विवरण तालिका द्वारा दिखाया गया है।

5 मलिन बस्तियों में जल उपभोग के साधन तालिका द्वारा

जल उपभोग साधन	सोटावाली	अम्बेडकर नगर	सोहनपुरा– लोदीपुर	भीम नगर	कवि नगर
सरकारी हैड़ पंप	10	07	06	04	02
निजी हैड़ पंप	02	03	05	02	0
सरकारी पानी की टंकी	20	20	20	20	20
सबमर्सिबल पंप	08	03	01	06	16
वाटर प्यूरीफायर (जल शोधक)	04	05	02	07	13
टयूबवेल का जल	0	03	09	02	0
कुएं का जल	0	0	0	0	0

श्रोत– प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा

तालिका स्पष्टीकरण – उपरोक्त तालिका द्वारा स्पष्ट है कि प्रत्येक मलिक बस्ती में जल के उपभोग के लिए कितने व्यक्ति किस जल साधन का प्रयोग करते है। अध्ययन से स्पष्ट है कि मलिन बस्ती के अधिकांश निवासी आज पीने के लिए सरकारी टंकी के पानी का प्रयोंग करते है।

हापुड़ मलिन बस्तियों में जल जनित रोग

जल जनित रोग	सोटावाली	अम्बेडकर नगर	सोहनपुरा– लोदीपुर	भीम नगर	कवि नगर
दस्त	7	9	6	11	4
पेचिश	2	1	0	1	0
पेट दर्द	9	5	5	9	7
पीलिया	2	3	0	5	5

मलेरिया	1	4	3	7	4
हेपटाइटिस	0	0	0	6	0
नेत्र रोग (Trachoma)	15	22	5	6	9
टाईफाड	5	7	4	0	2
हैजा	0	0	0	0	0
चर्म रोग (Skin problem)	4	3	4	7	8

श्रोत– प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा

तालिका स्पश्टीकरण – प्रत्येक मलिन बस्ती के 20 परिवारों का साक्षात्कार करने उपरांत ज्ञात होता है कि अधिकतर परिवारों में जल जनित रोगों में से दस्त, पेट दर्द व नेत्र रोग आदि अधिक पाया गया है।

हापुड़ मलिन बस्तियों में स्वच्छ जल उपलब्धता निम्न होने के कारण

1. **अत्यधिक जनसंख्या वृद्वि का होना** :– मलिन बस्तियों में जनसंख्या वृद्वि एक जटिल समस्यां है जिसके चलते यहां की स्थिति ओर दयनीय होती जाती है। अतः यहां स्वच्छ जल आपूर्ति सुनिश्चित कराना जटिल कार्य होता जा रहा है।

2. **मूलभूत सूविधाओं का अभाव** :– मलिन बस्तियों में स्वच्छ जल, उचित मकान, पक्की सडके, जल निकासी की व्यवस्था, शौचालय, बिजली आदि का अभाव होता है।

3. **निर्धनता एवं बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या** :– मलिन बस्तियों के निवासी गरीबी में अपना जीवनयापन करते है। जनसंख्या वृद्वि के कारण यहां बेरोजगारी दर भी अधि ाक होती है। जिससे स्वास्थ्य पूर्ण वातावरण व स्व्च्छ जल उपलब्धता इनकी पहुँच से बाहर है।

4. **शिक्षा का निम्नस्तीय होना** :–मलिन बस्तियों में शिक्षा का निम्न स्तरीय होना भी इन्हे विकास की मुख्य धारा से पृथक करता है। यहां पर्यावरण स्वच्छता, जल संरक्षण, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव पाया जाता है।

5. **स्वच्छता के प्रति उदासीनता** :– मलिन बस्तियों में साफ–सफाई को लेकर जागरूकता नही होती जिसके कारण यहां के निवासियों को स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं

का सामना करना पड़ता है। स्वच्छता का अभाव व दूषित जल उपभोग के कारण यहां जल जनित बिमारियों का प्रभाव बना रहता है।

6. **जागरूकता का अभाव** :– सरकार व प्रशासन द्वारा मलिन बस्तियों के लिए अनेकों योजनाएं व आर्थिक सहायता समय–समय पर दी जाती रही है। लेकिन जागरूकता के अभाव में इन योजनाओं का लाभ कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रह जाता है।

मलिन बस्तियों हेतु जल आपूर्ति के लिए सरकारी प्रयास –

- **कायाकल्प और भाहरी परिवर्तन के लिऐ अटल मिशन (AMRUT)** :– अमृत मिशन को हर घर में स्वच्छ जल आपूर्ति के लिए जून 2015 को आरम्भ किया गया था।

- **जल कांति अभियान** :– जल संसाधन विकास प्रबंधन के द्वारा जल का संरक्षण करना, जल अपव्यय को कम करना साथ ही राज्यों में सभी जगह जल का समान वितरण करना।

- **अटल भूजल योजना** :– जल बजट, ग्राम पंचायतवार जल सुरक्षा योजनाओं के द्वारा सामुदायिक भागीदारी के साथ भूजल स्तर में वृद्वि करना

- **राष्ट्रीय जल पुरूस्कार** :– यह कार्यक्रम जल शक्ति मंत्रालय, नदी विकास और गंगा संरक्षरण विभाग द्वारा आयोजित किया गया तथा सम्पूर्ण देश में व्यक्तियों व संगठनो द्वारा जल संरक्षण कार्य के लिए उन्हे सम्मानित करना है।

- **जल जीवन मिशन** :– 15 अगस्त 2019 में आरम्भ हुए जल जीवन मिशन के तहत 2024 तक भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 16.12 करोड़ परिवारों को घरेलू नल कनेक्शन द्वारा स्वच्छ जल उपलब्ध कराना है।

मलिन बस्तियों में स्वच्छ जल की उपलब्धता बढाने के लिए सुक्षाव व निष्कर्ष :– हमारे इस लधु शोध के अध्ययन द्वारा ज्ञात हुआ है कि हापुड़ मलिन बस्तियां के निवासी जल संरक्षण, स्वच्छ वातावरण, एवं स्वास्थ्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने में विफल है।

इन बस्तियों में पिछले दशकों से लगातार जनसंख्या वृद्वि देखी जा सकती है। जिसके कारण आगामी समय में स्थिती और अधिक गम्भीर हो जायेगी। अतः सरकार को रोजगार में वृद्वि, उचित शिक्षा, शुद्व पेय जल उपलब्धता, स्वच्छता के प्रति जागरूकता, जल संरक्षण एवं मूलभूत सुविधाओं के प्रति सशक्त कदम उठाने होंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

- https://pib.gov.in/newsite/printrelease.aspx?relid=101803
- https://ignited.in/I/a/305458

- https://www-researchgate-net.translate.goog/publication/6284549_Quality_of_Water_the_Slum_Dwellers_Use_The_Case_of_a_Kenyan_Slum?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=rq
- https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/bharat-tap-initiative/print/manual
- https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1887192
- https://hindicurrentaffairs.adda247.com/26-of-worlds-population-does-not-have-safe-drinking-water-unesco-report/
- सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल जून 2023
- करूक्षेत्र (अप्रैल 2023)
- प्रतियोगिता दर्पण (अप्रैल 2023)

26.

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति, जल एवं पर्यावरण संरक्षण

पवन कुमार
सहायक आचार्य
अमोघा इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल एण्ड टैक्नीकल एजुकेशन
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

सुरेन्द्र कुमार
सहायक आचार्य
विवेकानन्द कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

भारतीय ज्ञान परंपरा की जड़े वेदों उपनिषदों और विभिन्न अन्य पवित्र ग्रंथो से मिलती हैं अपने मूल में यह परंपरा वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा को कायम रखती है।भारतीय ज्ञान परंपरा एक समृद्ध एवं प्राचीन सांस्कृतिक विरासत है जो प्रकृति, जल और पर्यावरण संरक्षण के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। भारतीय दर्शन प्रकृति को मानव अस्तित्व का अभिन्न अंग मानता है और सभी जीवित प्राणियों के परस्पर जुड़ाव पर जोर देता है। प्रकृति के महत्व को उजागर करने वाले दो प्रमुख दर्शन सनातन धर्म और बौद्ध धर्म है।

सनातन धर्म दुनिया के सबसे प्राचीन धर्म में से एक है जो बताता है कि प्रकृति परमात्मा की अभिव्यक्ति है।प्रकृति के प्रति मानव की श्रद्धा विभिन्न प्राकृतिक तत्वों और उनसे जुड़े देवी–देवताओं की पूजा–अराधना से स्पष्ट होती है, जैसे– भगवान शिव को अक्सर उनकी जटाओं से बहती गंगा नदी के साथ चित्रित किया जाता है जो जल की पवित्रता का प्रतीक है।

बौद्ध धर्म में सभी जीवित प्राणियों के लिए करुना पर जोर दिया गया है जो हमें अहिंसा या अहिंसा के बौद्ध सिद्धांत के द्वारा प्रकृति और प्राणियों को नुकसान से बचाने के लिए प्रोत्साहित करता है। बौद्ध भिक्षु प्राकृतिक परिदृश्यों के संरक्षण और जल संसाधनों के संरक्षण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के लिए जाने जाते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार स्तंभ ऋषि–मुनियों ने पृथ्वी का आधार जल और जंगल को माना है इसलिए उन्होंने पृथ्वी की रक्षा के लिए वृक्ष और जल को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है। 'वृक्षाद् वर्षति पर्जन्यः पर्जन्यंदन्न सम्भव'अर्थात वृक्ष जल है जल अन्न है अन्न ही जीवन है। मत्स्य पुराण में जल की महत्वता का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है–

'शरद काले स्थितं यत् स्यात दुक्त फलदायकम।
वाजपेयति राजाभयां हेमन्ते शिशिरे स्थितम।।
अश्वमेघ संयं प्राह वसंत समये स्थित्।
ग्रीष्मअपि तत्स्थित तोपं राज सूयाद विशिस्यते।।'

वेदों में वेदों में जल को जीवन की जननी के रूप में माना गया है–

ओमानायो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शंयो।
यूयं हिष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्री।। (ऋग्वेद 6.50.7)

आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण संरक्षण पर पर्याप्त चिंतन मनन किया गया है। हमारे मनीषियों ने वेदों एवं अन्य पौराणिक ग्रंथों में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया है। आदिकाल से भारतवर्ष की पावन भूमि पर ऋषियों, मुनियों और संतो के वैदिक मंत्रोच्चारण व वेद ऋचाओं के मधुर स्वरों की गूंज धार्मिक शंखनाद, घंटा–घंटियों की आवाज व हवन यज्ञों का आयोजन का संबंध नकारात्मक ऊर्जा को हटाकर वातावरण को शुद्ध बनाए रखना है। पेड़ पौधों के प्रति आस्था श्रद्धा भाव बेटों की तरह उनका पालन पोषण करना प्रकृति पूजन की अनवरत संस्कृति हमें अपने पूर्वजों से विरासत में मिली है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति हमारे पूर्वजों ने अपना वैज्ञानिक दृष्टिकोण हजारों वर्षों पूर्व वहीं स्थापित कर दिया था।

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति प्रेम

भारतीय चिंतन में प्रकृति को पवित्र माना गया है एवं इसके प्रति अटूट श्रद्धा है। इस प्रेम की अविरल धारा पवित्र ग्रंथ वेदों में निहित है। वेद सूर्य–चंद्रमा से लेकर नदियों और पहाड़ों तक प्राकृतिक दुनिया के हर पहलू में दिव्य उपस्थिति का वर्णन करते हैं एवं वैदिक परंपरा से निकले उपनिषद दार्शनिक ग्रंथ भी सभी के अस्तित्व के अतंसंबंध की व्याख्या करते हैं वे सिखाते हैं कि व्यक्तिगत स्व सार्वभौमिक चेतना से अलग नहीं है और यह एहसास सभी जीवन रूपों और पर्यावरण के लिए आंतरिक सम्मान की ओर ले जाता है। योग और ध्यान भारतीय ज्ञान परंपरा के अभिन्न अंग हैं जो व्यक्तियों को उनके आंतरिक स्व और प्रकृति से जोड़ते हैं। योग क्रियाएं अक्सर पर्यावरण के साथ जुडाव को बढ़ावा देती है।

आध्यात्मिक संबंध–भारत में प्रकृति का आध्यात्मिकता के साथ गहरा संबंध है। कई आध्यात्मिक अभ्यास और अनुष्ठान बाहर आयोजित किए जाते हैं, जो व्यक्तियों को प्राकृतिक दुनिया से जोड़ते हैं।

पारिस्थितिक ज्ञान–वेदों और उपनिषदों जैसे प्राचीन भारतीय ग्रंथों में प्रकृति में संतुलन और सामंजस्य के बारे में ज्ञान है। अहिंसा और धार्मिक जीवन जैसी अवधारणाएं सभी जीवन रूपों और पर्यावरण के प्रति सम्मान को बढ़ावा देती हैं।

आयुर्वेद–आयुर्वेद, एक प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली है। यह प्राकृतिक उपचार शक्ति पर जोर देती है। यह समग्र कल्याण पर ध्यान केंद्रित करते हुएरोगों के इलाज के लिए जड़ी–बूटियों और प्राकृतिक उपचारों का उपयोग करता है।

योग और ध्यान–मन और शरीर पर प्रकृति के शांत और कायाकल्प प्रभावों का उपयोग करने के लिए योग और ध्यान सदैव प्राकृतिक परिवेश में किया जाता है।

ब्रह्मांडीय संबंध–भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान अक्सर प्रकृति को ब्रह्मांड के अभिन्न अंग के रूप में शामिल करता है। ब्राह्मण (सार्वभौमिक चेतना) और प्रकृति जैसी अवधारणाएँ आध्यात्मिक और भौतिक क्षेत्रों के बीच ब्रह्मांडीय संतुलन को दर्शाती हैं।

आधुनिक शिक्षा पद्धति मे प्रकृति का समावेशन–

बाहरी शिक्षा–स्कूल को अपने पाठ्यक्रम में बाहरी कक्षाओं,प्रकृति की सैर और क्षेत्र यात्राओं को शामिल करना चाहिए। यह गतिविधियां छात्रों को प्रकृति से जुड़ने के लिए व्यावहारिक अनुभव और अवसर प्रदान करती हैं।

पर्यावरण शिक्षा–जलवायु परिवर्तन, संरक्षण और स्थिरता जैसे विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल करते हुए पर्यावरण अध्ययन को भी पाठ्यक्रम में एकीकृत करना चाहिए।

बागवानी और हरित पहल–स्कूलों मे बगीचों के रखरखाव बागवानी कौशल सिखाने, खाद और पुनर्चक्रण जैसी हरित पल को लागू करने के लिए प्रोत्साहित करें। यह व्यावहारिक अनुभव पर्यावरण से सीधा संबंध बनाते हैं।

प्रौद्योगिकी और प्रकृति–प्रकृति शिक्षा को बढ़ाने के लिए एक उपकरण के रूप में प्रौद्योगिकी का लाभ उठाएं जैसे पौधों और जानवरों की पहचान करने के लिए ऐप्स का उपयोग करना या दूर के पारिस्थितिकी तंत्र का पता लगाने के लिए आभासी वास्तविकता का उपयोग करना।

प्रकृति आधारित साहित्य और कला–प्रकृति से प्रेरित साहित्य कविता और कलां को पाठ्यक्रम में शामिल करें जिससे छात्रों को विभिन्न माध्यमों से प्रकृति के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करने का अवसर मिल सके।

भारतीय ज्ञान परंपराओं में जल का महत्व व संरक्षण

जल जीवन का मूलभूत तत्व है और भारतीय ज्ञान परंपरा में इसका महत्व देश की संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में गहराई से निहित है। नदियों की भूमि कहे जाने वाले भारत के पास पानी को महत्व देने और उसके महत्व को समझने की एक समृद्ध विरासत है। वैज्ञानिक ज्ञान, पर्यावरण चेतना और सामाजिक प्रथाओं तक फैली भारतीय ज्ञान परंपरा में जल की बहुमुखी भूमिका का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। रहीम दास जी ने अपनेएक दोहे में जल की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है–

रहमान पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊवरे मोती मानुष चून।।

शरीर के निर्माण में दो तिहाई हिस्सा जल का ही है। इसके महत्व को प्राचीन काल से ही मनुष्य ने जाना है इसलिए कालांतर में जल प्रबंधन के कार्य मानव सभ्यता के प्रतीक बन गए जल प्रकृति की अक्षय देंन है परंतु इसका भंडारण अक्षय नहीं है। वैज्ञानिक विश्लेषण से सिर्फ ढाई प्रतिशत ही मीठा पानी पृथ्वी पर है तथा दो तिहाई हिस्सा बर्फ के रूप में जमा हुआ है। हम पौराणिक काल ऐतिहासिक घटनाओं और इतिहास के पन्नों को उलट कर देखें तो पाएंगे के जल संरक्षण कार्यो में समाज व शासक वर्ग का सहयोग सदा ही रहा है। इसके लिए नियम और संस्कार दोनों थे। राजा सागर ने जल के लिए करोड़ों तलाव व कुआं खुदवाये, राजा भगीरथ ने धरती पर गंगा को अवतरित किया, राजा जनक ने राजा होकर भी वर्षा जल के लिए हल चलाया प्राचीन भारतीय संस्कृति में भी जल के संरक्षण को अत्यधिक महत्व दिया गया है जिसमें नदियों के जल को बहुत ही पवित्र माना है तथा सर्वाधिक संरक्षणीय भी बताया है क्योंकि यह कृषि क्षेत्र को भी सींचती है जिससे प्राणीमात्र का जीवन चलता है। नदियों का बहता जल शुद्ध माना गया है। अथर्ववेद में सप्त सेंधव नदी का वर्णन मिलता है जिसमें सिंधु, बिपाशा, शतुद्री, वितस्ता, अश्किनी, सरस्वती ऋग्वेद में इन नदियों को माता के समान सम्मान दिया है।

'ता अस्मश्यं पमसा पिन्वमाना शिवादेवीरशिवद्
भवन्त सर्वा नधरू अशिमिहा भवन्तु' (ऋग्वेद 7.50.4)

जल संरक्षण पर बोल देते हुए ऋग्वेद में कहा गया है जल घृत के समान है जो हमें शक्तिशाली वह उत्तम मानता है इसकी हमें माता की तरह रक्षा करनी चाहिए।

'आपो अस्मन्मातररू शुन्धयन्तु घृतेन ना घृत्प्वरू पुनन्तु' (ऋग्वेद 10.17.10)

जल भारतीय ज्ञान परंपरा के ताने–बाने में गहराई से जुड़ा हुआ है, जो जीवन के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक और व्यावहारिक पहलुओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका मूल्य भौतिक से परे जाकर आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक क्षेत्रों तक फैला हुआ है।

आध्यात्मिक एवं धार्मिक महत्व

भारतीय ज्ञान परंपरा में जल का अत्यधिक आध्यात्मिक और धार्मिक महत्व है। इसे एक पवित्र तत्व माना जाता है और इसका उपयोग विभिन्न अनुष्ठानों और समारोहों में किया जाता है। नदियाँ विशेषकर गंगा, यमुना और सरस्वती, देवी के रूप में पूजनीय हैं, और माना जाता है कि इनमें किसी की आत्मा को शुद्ध करने की शक्ति है। ऐसा माना जाता है कि इन पवित्र नदियों में डुबकी लगाने से पापों से मुक्ति मिलती है और आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है।

आयुर्वेद और पारंपरिक चिकित्सा

स्वास्थ्य देखभाल और पारंपरिक चिकित्सा के क्षेत्र में, भारतीय ज्ञान परंपरा में पानी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। चिकित्सा की प्राचीन प्रणाली, आयुर्वेद, पानी के गुणों और विशेषताओं पर ज़ोर देती है। आयुर्वेद के अनुसार, जल उन पांच तत्वों में से एक है जो पृथ्वी, अग्नि, वायु और अंतरिक्ष के साथ मानव शरीर का निर्माण करते हैं। अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इन तत्वों का संतुलन आवश्यक है।

पर्यावरण प्रबंधन

भारतीय ज्ञान परंपरा भी जिम्मेदार जल प्रबंधन और पर्यावरण प्रबंधन के महत्व को रेखांकित करती है। मनुस्मृति जैसे प्राचीन ग्रंथों में जल संसाधनों के संरक्षण और उचित उपयोग के लिए दिशानिर्देश शामिल हैं। 'जल धरो, जीवन बचाओ' की अवधारणा सदियों से भारतीय ज्ञान का हिस्सा रही है।

पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ जैसे बावड़ियाँ, टैंक और तालाब वर्षा जल को एकत्र करने और संग्रहित करने के लिए बनाये गए थे। ये प्रणालियाँ न केवल सिंचाई और दैनिक उपयोग के लिए जल के स्रोत के रूप में काम करती हैं, बल्कि भूजल को रिचार्ज करने और मिट्टी के कटाव को रोकने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

कृषि पद्धतियाँ – भारतीय कृषि ऐतिहासिक रूप से मानसून की बारिश पर निर्भर रही है, जिससे जल प्रबंधन खेती का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गया है। पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ, जैसे फसल चक्र और जैविक उर्वरकों का उपयोग, फसलों को बनाए रखने में पानी के महत्व की गहरी समझ के साथ विकसित की गईं।

दार्शनिक अंतर्दृष्टि

भारतीय दर्शन, विशेष रूप से संसार (जन्म और मृत्यु का चक्र) की अवधारणा, पानी और जीवन की क्षणिक प्रकृति के बीच समानताएं दर्शाती है। जिस प्रकार पानी लगातार अपना रूप बदलता रहता है, नदियों से महासागरों की ओर बहता है और वाष्प के रूप में वापस आकाश में आता है, उसी प्रकार जीवन को जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के एक चक्र के रूप में

देखा जाता है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण व्यक्तियों को सांसारिक मोह–माया से अलग होने और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

इसके अतिरिक्त आत्मा (व्यक्तिगत आत्मा) की अवधारणा की तुलना अक्सर विशाल महासागर में विलीन होने वाली पानी की एक बूंद से की जाती है, जो व्यक्तिगत स्वयं के परमात्मा के साथ मिलन का प्रतीक है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति के माध्यम से जल का महत्व व संरक्षण

जल संरक्षण पाठ्यक्रम– एक ऐसा पाठ्यक्रम विकसित करें जो छात्रों को जल संरक्षण, सतत जल उपयोग और वैश्विक जल संकट के महत्व के बारे में शिक्षित करे। उन्हें अपने दैनिक जीवन में पानी बचाने के व्यावहारिक सुझाव सिखाएं।

जल गुणवत्ता परीक्षण– जल गुणवत्ता परीक्षण परियोजनाएँ शुरू करें जहाँ छात्र स्थानीय स्रोतों से पानी के नमूने एकत्र और उनका विश्लेषण करे, पारिस्थितिक तंत्र और मानव स्वास्थ्य पर प्रदूषण के प्रभाव के बारे में सीखे।

आभासी जल यात्रा– छात्रों को पानी से संबंधित साइटों, जैसे कि जल उपचार संयंत्र, आर्द्रभूमि या नदियों पर आभासी क्षेत्र यात्रा पर ले जाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करें, जिससे जल प्रबंधन और पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रत्यक्ष नजर डाली जा सके।

जल–थीम वाली (एसटीईएम) परियोजनाएं– छात्रों को जल–संबंधी विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (एसटीईएम) परियोजनाओं का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित करें, जैसे जल निस्पंदन प्रणाली का निर्माण, जल–कुशल उद्यान डिजाइन करना, या जलविद्युत जनरेटर बनाना।

पर्यावरणीय नैतिकता– पानी से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करके नैतिकता और पर्यावरणीय जिम्मेदारी सिखाएं, जिसमें स्वच्छ पानी तक समान पहुंच, जल निजीकरण की नैतिकता और जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव शामिल है।

जल साक्षरता अभियान– पानी से संबंधित मुद्दों के बारे में जागरूकता बढ़ाने और कार्रवाई के लिए प्रेरित करने के लिए स्कूल के भीतर अभियान आयोजित करें। इसमें जल–थीम वाली कला प्रदर्शनियाँ, निबंध प्रतियोगिताएँ या सामुदायिक सफाई कार्यक्रम शामिल होने चाहिये।

विशेषज्ञों का मार्गदर्शन– जल विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों को छात्रों से बात करने या कार्यशालाएँ आयोजित करने के लिए आमंत्रित करें, जिससे जल से संबंधित क्षेत्रों में वास्तविक दुनिया की अंतर्दृष्टि और कैरियर मार्गदर्शन प्रदान किया जा सके।

इंटरएक्टिव ऐप्स और सिमुलेशन– इंटरैक्टिव ऐप्स और सिमुलेशन का उपयोग करें जो छात्रों को जल–संबंधी अवधारणाओं, जैसे जल चक्र, कटाव या बाढ़ प्रबंधन के साथ प्रयोग करने की अनुमति देते हैं।

सतत जल परियोजनाएँ – छात्रों को समुदाय के भीतर स्थायी जल परियोजनाओं को विकसित करने और कार्यान्वित करने के लिए प्रोत्साहित करें, जैसे सफाई अभियान आयोजित करना, सार्वजनिक स्थानों पर जल–बचत उपकरण स्थापित करना, या स्थानीय स्कूलों में जल शिक्षा को बढ़ावा देना।

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण व संरक्षण

पर्यावरण का ध्यान शिक्षा के माध्यम से देना मानव जीवन के बहुमुखी विकास का एक प्रबल साधन है। इसका मुख्य लक्ष्य जन सामान्य के व्यक्तित्व में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिपक्वता लाना होता है। पर्यावरण ज्ञान के बारे में ज्ञानार्जन की परंपरा भारतीय संस्कृति में आरंभ से ही रही है। भारतीय संस्कृति में बट, पीपल, आंवला के वृक्षों को पवित्र बताया गया है तथा पूजनीय भी इसका वैज्ञानिक कारण तो यह है कि यह सबसे अधिक ऑक्सीजन का उत्पादन करते हैं। हिंदू धर्म में हर घर में तुलसी का पौधा लगाया जाता है, इसका भी वैज्ञानिक कारण यही है कि वह दिन और रात दोनों में ऑक्सीजन छोड़ता है तथा इसकी पत्तियां क्रमशः प्रकाश संश्लेषण द्वारा सर्वाधिक मात्रा में सौर ऊर्जा को अवशोषित करते हैं लेकिन ऋषि मुनियों ने इसे लक्ष्मी व विष्णु दोनों का निवास बढ़कर जनमानस में धरना को बल दिया यह पौधा वातावरण में नमी भी बनाए रखता है। वेदों में पर्यावरण के संरक्षण के महत्व को उद्घाटित करते हुए मानव मात्र को उसकी संरक्षण में उदत्त रहने का आवाहन किया है। पर्यावरण संरक्षण के लिए मनुष्य के अंदर सत्य, मृदु, संकल्प, तप, ज्ञान तथा त्याग के गुणों का होना बहुत ही आवश्यक है इन्हीं गुणों से ही पृथ्वी का संरक्षण किया जा सकता है।

(अथर्ववेद 12.1.1)

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण और उसके संरक्षण से संबंधित कुछ पहलू–

पवित्र प्रकृतिवाद– प्राचीन भारत में प्रकृति का सम्मान किया जाता था और उसे पवित्र माना जाता था। पंच महाभूत (पांच महान तत्व – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) की अवधारणा ने मनुष्य और प्रकृति के अंतर्संबंध पर जोर दिया। इस विश्वास ने पर्यावरण के जिम्मेदार प्रबंधन को प्रोत्साहित किया।

अहिंसा– अहिंसा, भारतीय दर्शन का एक मूल सिद्धांत है, जो जानवरों और पौधों सहित सभी जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा सिखाता है। इस दर्शन ने संसाधनों के संरक्षण में योगदान देते हुए स्थायी प्रथाओं और शाकाहार को बढ़ावा दिया।

वन संरक्षण– अर्थशास्त्र और मनुस्मृति जैसे प्राचीन ग्रंथों में वनों और वन्यजीवों की सुरक्षा के प्रावधान थे। राजाओं को वनस्पतियों और जीवों के लिए संरक्षित क्षेत्र स्थापित करने और शिकार को नियंत्रित करने की सलाह दी गई।

कृषि ज्ञान– प्राचीन भारतीयों ने फसल चक्र और जैविक खेती जैसी परिष्कृत कृषि तकनीकों का विकास किया, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद मिली और पर्यावरणीय क्षरण को रोका गया।

जल प्रबंधन– जल संसाधनों को कुशलतापूर्वक संरक्षित और प्रबंधित करने के लिए पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ जैसे बावड़ी (जैसे रानी की वाव) और टैंकों और जलाशयों का निर्माण आम प्रथाएँ थीं।

आयुर्वेद चिकित्सा– आयुर्वेद, प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली, जड़ी–बूटियों और प्राकृतिक उपचारों के उपयोग पर जोर देती थी। इस दृष्टिकोण ने आधुनिक फार्मास्यूटिकल्स की तुलना में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को कम कर दिया।

नवीकरणीय ऊर्जा– पारंपरिक भारतीय वास्तुकला में वास्तु शास्त्र जैसे सिद्धांतों को शामिल किया गया, जिसने प्राकृतिक प्रकाश और वेंटिलेशन को अनुकूलित किया, जिससे कृत्रिम ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता कम हो गई।

समुदाय–आधारित संरक्षण– प्राचीन भारत में कई समुदायों ने वनस्पति तंत्र या वृक्ष पूजा की परंपरा का पालन किया, जिसने वृक्ष संरक्षण और वनीकरण के लिए सामूहिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा दिया।

ये प्राचीन प्रथाएँ और दर्शन पर्यावरण के महत्व की गहरी समझ प्रदर्शित करते हैं, लेकिन आज की दुनिया में पर्यावरण को प्रभावी ढंग से संरक्षित और संरक्षित करने के लिए उन्हें समकालीन चुनौतियों के अनुकूल बनाना आवश्यक है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में पर्यावरण का महत्व व संरक्षण

आधुनिक शिक्षा में पर्यावरण संरक्षण का तात्पर्य वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के उद्देश्य से ज्ञान, मूल्यों और प्रथाओं के एकीकरण से है। इस अवधारणा में कई प्रमुख पहलू शामिल हैं–

पर्यावरण जागरूकता– आधुनिक शिक्षा जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता हानि, प्रदूषण और संसाधनों की कमी सहित पर्यावरणीय मुद्दों की समझ को बढ़ावा देती है। छात्रों को पारिस्थितिक तंत्र और मानवीय गतिविधियों के अंतर्संबंध के बारे में सिखाया जाना चाहिये।

स्थिरता– शिक्षा स्थायी प्रथाओं पर जोर देती है, व्यक्तियों को ऐसे विकल्प चुनने के लिए प्रोत्साहित करती है जो नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों को कम करते हैं। इसमें सतत उपभोग, नवीकरणीय ऊर्जा और जिम्मेदार संसाधन प्रबंधन शामिल हैं।

संरक्षण– छात्र प्राकृतिक आवासों और प्रजातियों के संरक्षण के महत्व के बारे में सीखते हैं। उन्हें संरक्षण रणनीतियों और जैव विविधता की सुरक्षा में संरक्षित क्षेत्रों की भूमिका के बारे में शिक्षित किया जाता है।

पर्यावरणीय नैतिकता– शिक्षा पर्यावरण से संबंधित नैतिक विचारों को बढ़ावा देती है, जैसे प्रकृति का आंतरिक मूल्य और इसकी रक्षा करने की नैतिक जिम्मेदारी। इसमें अक्सर पर्यावरणीय न्याय और समानता के बारे में चर्चा शामिल होती है।

जलवायु परिवर्तन शिक्षा– जलवायु परिवर्तन के गंभीर मुद्दे को देखते हुए, आधुनिक शिक्षा ग्लोबल वार्मिंग से जुड़े कारणों, परिणामों और शमन रणनीतियों के बारे में शिक्षण पर महत्वपूर्ण जोर देती है।

पर्यावरण नीति और वकालत– छात्रों को पर्यावरण नीति और वकालत के साथ जुड़ने, सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने, पर्यावरण संगठनों में भाग लेने और टिकाऊ प्रथाओं की वकालत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य– आधुनिक शिक्षा पर्यावरणीय चुनौतियों की वैश्विक प्रकृति को पहचानती है और अंतरराष्ट्रीय सहयोग और जागरूकता को प्रोत्साहित करती है कि कैसे स्थानीय कार्यों के वैश्विक परिणाम हो सकते हैं।

तकनीकी प्रगति– शिक्षा तकनीकी प्रगति के साथ तालमेल रखती है, छात्रों को पर्यावरण संरक्षण के लिए नवीन समाधानों, जैसे स्वच्छ ऊर्जा प्रौद्योगिकियों और टिकाऊ कृषि प्रथाओं के बारे में सिखाती है।

कुल मिलाकर, आधुनिक शिक्षा में पर्यावरण संरक्षण की तथ्यात्मक अवधारणा महज जागरूकता से परे है और इसका उद्देश्य व्यक्तियों को अधिक टिकाऊ और पर्यावरण के प्रति जागरूक दुनिया में सक्रिय रूप से योगदान करने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और मूल्यों के साथ सशक्त बनाना है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति, जल और पर्यावरण के महत्व को मान्यता दी जाती है और इन्हें संरक्षित रखना महत्वपूर्ण धर्म माना जाता है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों, ग्रंथों और धार्मिक ग्रंथों में प्रकृति का महत्व और उसकी संरक्षण की महत्वपूर्ण सीख दी गई हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति को एक अद्वितीय और अद्वितीय शक्ति के रूप में देखा जाता है। प्राकृतिक तत्वों का आदर करने और उनके साथ हमारे सहयोगी रूप में रहने का धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व है। इस ज्ञान परम्परा में जल को जीवन का स्रोत माना गया है। जल को पवित्र मानकर उसके संरक्षण के लिए नियमों का पालन करने की सलाह दी गई है। पर्यावरण संरक्षण को मानवीय जीवन का एक अभिन्न अंग माना जाता है। धर्मिक ग्रंथों में

प्राकृतिक संसाधनों को व्यवस्थित करने की सलाह दी गई है, ताकि पर्यावरण को कोई हानि ना पहुंचे। प्रकृति के साथ तालमेल और उसके संरक्षण के लिए अनुशासन और उपासना की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति, जल, और पर्यावरण का संरक्षण जीवन के संतुलन का हिस्सा माना गया है, जो समृद्धि और सुख देने वाला है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः–

- राठौर, एस.एम. (2007), पानी परंपरा, तरून भारत संघ प्रकाशन, अलवर, राजस्थान।
- राठौर, एस.एम. (2007), जल संस्कृति, तरून भारत संघ प्रकाशन, अलवर, राजस्थान।
- जैन, डॉ. मुकेश (2022), भारतीय ज्ञान परंपरा व शोध, पी.आर. त्रैमासिक पत्रिका, प्ैछ 2583.2948.
- महेन्द्र, रामचरण जी, (1999), वेद कथांक, वेदों में पर्यावरण रक्षा।
- सुनील, वनकाम, (2008), पर्यावरण मीमांसा, आगरा राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।
- गोयल, एन,के, (1997), पर्यावरण शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- एन.सी.ई.आर.टी. (2009), भारतीय आधुनिक शिक्षा।
- पर्यावरण विकास राष्ट्रीय मासिक पत्रिका, (2012)
- गुप्त, प्रो. राम गोपाल (2019) ''मनुस्मृति और आधुनिक समाज'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- पोखरियाल, रमेश निशंक (2020) ''भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्परा'', अल्फा एजुकेशन।

27.

भारतीय ज्ञान परंपरा: भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का स्रोत

डॉ0 आभा शर्मा
प्रोफेसर
विवेकानन्द कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अलीगढ़, उ0प्र0

प्राचीन काल में ज्ञान को मुनष्य की सर्वोत्तम आँख माना जाता था। भारतीय ज्ञान परम्परा जो वैदिक एवं उपनिषद काल में थी वह बौद्ध व जैन काल में भी रही विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीय सभ्यता का महत्वपूर्ण अंग है, अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है, जो हमारे इतिहास संस्कृति, और साहित्य का मूल आधार है। इस ज्ञान परंपरा ने अनेक शास्त्रों, ग्रंथों और विचारों को पैदा किया है, जो विज्ञान, दर्शन और तकनीक के क्षेत्र में आधार हैं। यह परंपरा धर्म और मानवता के मूल तत्वों का समर्थन करती है और इस प्रकार जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षा देती है। इसके माध्यम से भारतीय समाज को आदर्श, समर्पण और ज्ञान की दिशा में आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त होता है, जो न केवल समाज व राष्ट्रीय विकास में मदद करता है, बल्कि विश्व के लिए भी एक महत्वपूर्ण योगदान है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा

भारतीय ज्ञान परंपरा में वेदों का महत्वपूर्ण स्थान है। संसार के ग्रंथालय में सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद (ज्ञान) नाम से प्रसिद्ध और मान्य है। वेद आदिकाल से मनुष्य जाति को मार्गदर्शन व सत्प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। वेद भारतीय धर्म और दार्शनिक विचार के मूल स्रोत हैं, जिनमें जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन किया गया है। हमारे चारों वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद – विभिन्न विषयों पर ज्ञान का सागर हैं, जैसे ऋग्वेद मंत्रों की वह विशाल राशि है जिसमें अभिष्ट प्राप्ति के लिए अनेक देवताओं की स्तुतियाँ हैं। विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिरूप अग्नि, इन्द्र एवं वरूण की स्तुतियाँ हैं। दार्शनिक विचारधारा से परिपूर्ण पुरूषसूक्त भी वर्णित है जिसमें दार्शनिक तत्त्व के साथ–साथ सृष्टि प्रक्रिया भी संक्षेप में वर्णित है। यजुर्वेद यज्ञ कर्म के लिए उपयोगी ग्रंथ है। सामवेद – ऋग्वेद के गाये जाने वाले

मंत्र साम कहलाते हैं। अथर्ववेद में जीवन को सुखमय बनाने तथा दुखरहित करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है उसके लिए अनेकों प्रयोगों की व्यवस्था इस वेद में है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद व विज्ञान तथा अनेकों शल्य चिकित्साओं का भी ज्ञान यहाँ मिलता है। वेदों के मंत्र और उपनिषदों के दार्शनिक विचार ने ध्यान तत्त्वज्ञान और मानव जीवन की उद्देश्य के सन्दर्भ में अमूल्य ज्ञान प्रदान किया है जो आज भी महत्वपूर्ण है। वेदों का महत्व भारतीयों के साथ ही विश्व के लिए भी है, क्योंकि इन्होंने मानव जीवन के आधारभूत मूल्यों को साझा किया है और धार्मिक एकता को सवंर्द्धित किया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा यहाँ के दर्शन में समाहित है। 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात वह प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत देखा जाये अर्थात विश्लेषण, चिन्तन या मनन किया जाये दर्शन कहलाती है। चिन्तन को 'मीमान्सा' भी कहते है जिसका अर्थ है गहन विचार, परीक्षण एवं अनुसंधान आदि। इस दृष्टि से ज्ञान परंपरा या दार्शनिक चिन्तन तीन भागों में वर्गीकृत है– तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं नीति मीमांसा इनके क्रमशः सत्, प्रकाश एवं अमरत्व– ये तीन लक्ष्य के रूप में रखे गये हैं। सत् या तत्त्व सृष्टि का मूल कारण, ज्ञान या प्रकाश उस सत् को जानने की प्रक्रिया तथा अमरत्व या परमशुभ हेतु निर्धारित आचरण, नियम या नीति ये तीनों ही भारतीय ज्ञान परम्परा का सार हैं। इस प्रकार उपनिषदों का यह ज्ञान आत्मिक शांति की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इस आवश्यकता का प्रतिपादन उपनिषद साहित्य में एक प्रार्थना के माध्यम से किया गया है जिसमें कहा गया है कि– हे परमात्मा हमें असत से सत की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो एवं मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो। प्राचीन भारतीय दर्शन चित् या चेतना को उच्चतम स्तर तक ले जाने का समर्थक रहा है। कहा भी है– 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे वहीं विद्या या ज्ञान है। हमारे एक उपनिषद मुण्डक में मनुष्य जीवन के समस्त ज्ञान को विद्या कहा गया है।

मध्यकालीन भारतीय ज्ञान परंपरा

मध्यकालीन भारतीय ज्ञान परंपरा में, भारतीय गणराज्यों ने संस्कृति और ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया। गुप्त, पल्लव, चोल, राजपूत, गुजराट, विजयनगर, और मुघल गणराज्यों ने विभिन्न क्षेत्रों में संस्कृति, कला, विज्ञान, और शिक्षा के विकास को प्रोत्साहित किया। इन गणराज्यों ने महाकाव्य, ग्रंथ, और काव्य लेखन को बढ़ावा दिया, जिससे भारतीय साहित्य की समृद्धि हुई। यहां के राजा और महान धर्मिक आचार्यों ने विज्ञान और धार्मिक धारणाओं का प्रचार किया और भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाया।

मध्यकालीन भारतीय ज्ञान परंपरा में भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान किया। आदिकवि वाल्मीकि की रामायण और महर्षि व्यास की महाभारत जैसी महाकाव्य ग्रंथों ने भारतीय साहित्य को श्रेष्ठता की ऊंचाइयों तक पहुंचाया। संत तुलसीदास

की रामचरितमानस ने रामकथा को लोकप्रियता से भर दिया और भक्ति आंदोलन को प्रोत्साहित किया। कलिदास के काव्य ग्रंथों ने सौंदर्यशास्त्र, कला और प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ावा दिया। इन लेखकों ने भारतीय साहित्य को न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में मान्यता दिलाने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया और भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध किया।

आधुनिक युग में भारतीय ज्ञान परंपरा

भारतीय ज्ञान का महत्व विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक युग में अत्यधिक है। भारत ने अपने प्राचीन ग्रंथों में विज्ञान और तकनीक के अनगिनत सिद्धांतों को उन्नत किया है, जैसे कि अर्यभट्ट के गणित शास्त्र और सुश्रुत के आयुर्वेदिक ग्रंथ। भारतीय योगदान ने अंतरिक्ष अनुसंधान में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है, जैसे कि मंगलयान मिशन जैसे सफल प्रोजेक्ट्स। शिक्षा क्षेत्र में, भारत ने अपने विशेषज्ञों के माध्यम से गुणवत्ता और उन्नति की दिशा में योगदान किया है और विश्वभर के विद्यार्थियों को शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय ज्ञान प्रदान किया है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और शिक्षा के क्षेत्र में गहरा प्रभाव डाला है और आधुनिक युग में तकनीकी और ज्ञान के क्षेत्र में नई दिशाएं दिखाई है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख तत्व

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

- **वेद**– भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्रोत वेद है, जिन्हें धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ के रूप में माना जाता है। वेदों में ज्ञान, धर्म और आदर्शों का महत्वपूर्ण स्रोत है।
- **उपनिषद**– उपनिषदों में आध्यात्मिक ज्ञान का मूल विकास हुआ और अद्वैत वेदांत के महत्वपूर्ण सिद्धांत उपस्थित हैं।
- **पुराण**– पुराणों में हिन्दू धर्म, इतिहास, और महत्वपूर्ण कथाएं वर्णित हैं, जो जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करती हैं।
- **संस्कृत भाषा**– संस्कृत भाषा ने भारतीय ज्ञान परंपरा को संजीवनी शक्ति प्रदान की है, क्योंकि इसके माध्यम से प्राचीन ग्रंथों का संरक्षण और प्रसार किया गया है।
- **धर्म और तात्त्विकता**– धर्म और तत्त्वज्ञानी गुरुओं के उपदेशों ने मानवता के प्रमुख मूल्यों को सवंद्धित किया है और जीवन का मार्गदर्शन किया है।
- **योग और आयुर्वेद**– योग और आयुर्वेद जैसे शास्त्रों ने स्वास्थ्य, विज्ञान और जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- **कला और संस्कृति**– प्राचीन भारतीय शिक्षा में चौंसठ कलाओं– रत्नविज्ञान, वैमानिक कला (विमानशास्त्र), मूर्तिकला, नौका निर्माण कला, भारतीय गान्धर्व विद्या

(संगीत आदि), अस्त्र–शस्त्र की विद्या, नाट्य कला आदि को सुन्दर रूप में प्रकट किया है।

- **क्रीड़ाएँ**– प्राचीन भारत के अनेकों खेलों (क्रिड़ाओं) को चित्रण स्पष्ट रूप से किया गया है।
- **प्राचीन ग्रंथों का संरक्षण**– प्राचीन ग्रंथों का संरक्षण और प्रसार भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में रहा है और आज भी इनका महत्व विद्यमान है।

इन प्रमुख तत्वों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को रूपांतरित किया और उसे एक समृद्ध, धार्मिक, और सांस्कृतिक परंपरा के रूप में जीवित रखा है।

संस्कृति और साहित्य

भारतीय ज्ञान परंपरा संस्कृति और साहित्य का अद्वितीय स्रोत है। जिसमें वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत और अन्य अनेक प्राचीन ग्रंथ शामिल हैं। यह स्रोत हमारे समृद्ध धार्मिक और दार्शनिक विचारों का केंद्र है, जो मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रकट करते हैं। संस्कृत साहित्य अद्वितीय है जो आध्यात्मिकता, कला, विज्ञान और सामाजिक दृष्टिकोण से समृद्ध है। यह साहित्य भारतीय जीवन–शैली, मूल्यों और जीवन की गहराइयों को प्रकट करने में मदद करता है।

संस्कृत साहित्य प्राचीन ऐतिहासिक काव्य और ग्रंथों से भरपूर है, जो भारतीय साहित्य की गौरवशाली धारा को प्रतिष्ठित करते हैं। महाभारत और रामायण, जिन्हें महाकाव्य के रूप में जाना जाता है, भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण अंग हैं, जो मानवता, नैतिकता और धार्मिकता के महत्वपूर्ण संदेशों को प्रस्तुत करते हैं। उपनिषदों के दर्शनिक ग्रंथों ने आध्यात्मिक ज्ञान को व्यक्त किया है और संसार के रहस्यों का पर्दाफाश किया है। भगवद गीता, जो महाभारत का एक अद्वितीय भाग है, धार्मिक और आदर्श जीवन के मार्गदर्शन के रूप में प्रसिद्ध है। अनुभवशास्त्र, कामसूत्र और अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथ साहित्य की विविध धाराओं में अमूल्य योगदान करते हैं। इन प्रमुख काव्य और ग्रंथों के माध्यम से संस्कृत साहित्य ने मानव समझ, भावना और ज्ञान को विश्व के साथ साझा किया है और उसका महत्वपूर्ण योगदान किया है।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के संरक्षण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। युवा पीढ़ियों को अपनी संस्कृति और साहित्य के प्रति जागरूक करना चाहिए, जिसके लिए स्कूल और कॉलेजों में इन विषयों की पढ़ाई को अनिवार्य किया जाना चाहिए। साहित्यिक संस्थाओं को साहित्य के प्रसार के लिए सहायता करनी चाहिए, जैसे कि पुस्तकों के प्रकाशन, साहित्य सम्मेलनों का आयोजन और साहित्यकारों के साथ संवाद का संचालन। साहित्यिक धारा के महत्वपूर्ण ग्रंथों का संरक्षण और पुनर्मुद्रण किया जाना चाहिए। इसके अलावा, संस्कृति और

साहित्य के महत्व को जनसामान्य के साथ साझा करने के उपाय अपनाए जाने चाहिए, जैसे कि संस्कृति के महत्वपूर्ण त्योहारों और मेलों का आयोजन। इसके रूप में, सांस्कृतिक और साहित्यिक धरोहर के संरक्षण के लिए सबको मिलकर काम करना होगा, ताकि हमारी संस्कृति और साहित्य सुरक्षित रहे।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा हमारे समृद्ध धर्म, संस्कृति, और साहित्य का मूल स्रोत है। इसका महत्व हमारे समाज की परंपरागत भौगोलिक, भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को समझने में होता है और हमारे दायित्व का हिस्सा बनता है। इस परंपरा के अमूल्य संस्कृत स्रोतों का सहर्ष संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है, क्योंकि ये ग्रंथ हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ये स्रोत न केवल हमारी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें, बल्कि उन्हें आगे बढ़ाने का भी काम करें, ताकि हमारा संस्कृति और साहित्य सदैव जीवंत रहे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः–

- धर्मवीर (1996) ''वेद और समाज'' परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, भारत।
- गुप्ता, एस. एल. व शर्मा, डी. डी. (1999) ''सामाजिक मानवशास्त्र समाजिक संरचना परिवार'', साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
- गुप्ता, एम. एल. व शर्मा डी. डी. (2003) ''भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिंह, जे. पी. (2005) ''आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं परिवार का उद्विकास'', पब्लिकेशन्स हाल ऑफ़ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- मिश्र, विद्या निवास (2009) ''भारतीय संस्कृति के आधार'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- गुप्त, प्रो. राम गोपाल (2019) ''मनुस्मृति और आधुनिक समाज'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- पोखरियाल, रमेश निशंक (2020) ''भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्परा'', अल्फा एजुकेशन।
- कल्याण–शिक्षा विशेषांक, गीताप्रेस, गोरखपुर।

28.

भारतीय परिवार प्रणाली–सभ्यता, मूल्य एवं संस्कार

डॉ. विनीता
निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश

रेनूका राय
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है और यही से बच्चे की प्रथम पाठशाला का आरंभ होता है पारिवारिक इतिहास की बात करें तो परिवार प्राचीन काल में पितृसत आत्मक हुआ करते थे परिवारों का मुखिया एक वृद्धि तथा नातेदारी संबंधों में प्रमुख पुरुष होता था जिसके आदेशों का पालन करना सभी सदस्य अपना नैतिक दायित्व समझते थे परिवार की संपत्ति पर पिता अथवा करता का ही अधिकार होता था फिर एक समय बाद मातृ सत्तात्मक परिवार प्रणाली का उदय हुआ जिसमें परिवार का मुख्य घर की वृद्ध स्त्री होती थी और उसी के आदेशों का पालन पूरा परिवार किया करता था परिवार सभ्य हुआ करते थे बड़े लोग की बातों को मानते थे और मूल्य संस्कारों की कोई कभी कमी नजर नहीं आती थी परंतु समय के साथ और भी परिवर्तन देखे गए शहरीकरण औद्योगिकरण आधुनिकीकरण भारत में पारंपरिक परिवार प्रणाली की संरचना में परिवर्तन करने वाले महत्वपूर्ण कार्य कारक हैं प्राचीन समय में परिवार बहुत बड़े हुआ करते थे सभी लोग मिलजुल कर प्यार से आपस में रहा करते थे दादा–दादी चाचा चाचा उनके बच्चे बच्चों के बच्चे यह सभी एक परिवार में रहा करते थे परंतु आज के समय में परिवारों का विघटन हुआ और संयुक्त परिवार एकल परिवार प्रणाली में बदल गए।

देसाई ने (1955) में शहरी परिवारों (गुजरात के महुआ में) का अध्ययन किया और पाया कि परमाणुता बढ़ रही है और संयुक्त ता कम हो रही है ।व्यक्तिवाद की भावना नहीं बढ़ रही है क्योंकि लगभग आधे घर अन्य घरों के साथ संयुक्त हैं संयुक्त सत्ता के दायरे में

रिश्तेदारी संबंधों का दायरा छोटा होता जा रहा है कपाड़िया ने (1955) में (गुजरात के नवसारी शहर और इसके आसपास के 15 गांव में) ग्रामीण और शहरी परिवारों का जिसमें (18: शहरी बेटी 82: ग्रामीण)लोगों का अध्ययन किया और पाया कि ग्रामीण समुदाय में संयुक्त परिवारों का अनुपात लगभग एकल परिवारों के समान ही है जातियों के संदर्भ में पाया कि गांव में उच्च जातियों में मुख्य रूप से संयुक्त परिवार होते हैं जबकि निचली जातियों में एकल परिवार का प्रचलन अधिक होता है।

क्रॉस ने (1957)में शहरी परिवेश (कर्नाटक राज्य में बेंगलुरु) में केवल हिंदू परिवारों का अध्ययन किया और पाया कि परिवार स्वरूप की प्रवृत्ति पारंपरिक संयुक्त परिवार से अलग होकर एकल परिवार इकाइयों की ओर है अब बढ़ती संख्या में लोग अपने जीवन का कम से कम एक हिस्सा एकल परिवार इकाइयों में बिताते हैं।सच्चिदानंद(1977)में बिहार के एक जिले (शाहाबाद)के 30 गांव में परिवारो का अध्ययन किया और पाया कि एक चौथाई परिवार एकल और तीन चौथाई परिवार संयुक्त थे जो पारंपरिक परिवारों की प्रधानता को दर्शाता है।

परिवार

परिवार एक ऐसा स्थान या जगह जिसमें रहकर मनुष्य अपने आप को हर प्रकार से सुरक्षित महसूस करता है परिवार में अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति बिना किसी स्वार्थ भाव से की जाती है व्यक्ति के शारीरिक आर्थिक बौद्धिक नैतिक विकास की जिम्मेदारी उसके परिवार की होती है और और व्यक्ति के अच्छे बुरे कर्मों के लिए समाज सदैव परिवार की सराहना या आवेला करता है सभी समाजों में बच्चे का जन्म और पालन पोषण परिवार में होता है बच्चों को संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार में होता है व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत हद तक परिवार से ही निर्धारित होती है मूल रूप से एक परिवार विशेष रूप से एक प्राथमिक परिवार को एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें माता–पिता और उनके बच्चे शामिल होते हैं बोहनन (1963) के अनुसार, 'एक परिवार में वे लोग शामिल होते हैं जो यो और आत्मीय संबंधों से जुड़े होते हैं'

परिवार के प्रकारः–

संख्या के आधार पर – प्राथमिक परिवार ,संयुक्त परिवार

विवाह के आधार पर– एक विवाही परिवार एवं , बहु विवाही परिवार

संबंध के आधार पर– रक्त संबंधी, विवाह संबंधी

सत्ता के आधार पर– पितृसत्तात्मक परिवार, मातृ सत्तात्मक परिवार

प्राथमिक परिवारः जिस परिवार में सिर्फ माता तथा उनके अविवाहित बच्चे होते हैं उसे प्राथमिक परिवार कहते हैं

विस्तृत या संयुक्त परिवारः जिस परिवार में एक वंश के समस्त भाई, उनकी पत्नियों, लड़के, बच्चे उनकी बहनें तथा माता–पिता आदि रहते हैं जिस घर का एक बुजुर्ग व्यक्ति मुखिया होता है उसे विस्तृत परिवार कहते हैं

एक विवाही परिवारः वह परिवार जिसमें एक समय में एक पुरुष तथा स्त्री वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं एक विवाही परिवार कहलाता है ।

बहु विवाही परिवारः वह परिवार जिसमें एक पुरुष या स्त्री कई पुरुषों या स्त्रियों के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं इस प्रकार इन्हें दो भागों में बांटा जाता है बहू पत्नी विवाह ,बहू पति विवाह ।

रक्त संबंधी परिवार : रक्त संबंधी परिवार रक्त संबंधियों का एक केंद्र है जो पति–पत्नी के जाल से घिरा होता है ।

विवाह संबंधी परिवारः विवाह संबंधी परिवार पति–पत्नी का केंद्र है जो की संबंधियों के जाल से घिरा होता है इस तरह इस परिवार में पति–पत्नी तथा उनके बच्चे तो प्राथमिक रूप से होते ही है साथ ही साथ विवाह के कारण दोनों परिवार के संबंधी भी सहयोगी के रूप में ऐसे परिवार में आते हैं।

पितृसत्तात्मक परिवारः ऐसा परिवार जिसमें पिता को प्रधान माना जाता है।

मातृ सत्तात्मक परिवारः ऐसे परिवार जिसमें पिता के स्थान पर माता को प्रधानता दी जाती है पितृवंशी परिवार रूजिन परिवारों में वंश परंपरा पिता के नाम से चलती है एक पुरुष को एक पूर्वज माना जाता है पित्रवंशी परिवार कहलाते हैं।

मात्र वंशीय परिवारः ऐसे परिवार जिन परिवारों में वंश परंपरा पिता के स्थान पर माता के नाम से चलती है और किसी स्त्री को पूर्वज माना जाता है।

पितृ स्थानीय परिवारः पितृ स्थानीय परिवार उन परिवारों को कहते हैं जिनमें विवाह उपरान्त स्त्री पुरुष के घर जाकर रहती है ।मात्र स्थानीय परिवार रूवे परिवार जिनमें पुरुष स्त्री के घर जाकर रहता है मात्र स्थानी परिवार कहलाता है ।

पितृ नामी परिवारः वे परिवार जिनमें परिवार का नाम पिता के नाम पर चलता है पितृनामी परिवार कहलाते हैं।

मात्र नामी परिवारः जिन परिवार का नाम पिता के बजाय माता के नाम पर चलता है मात्रनामी परिवार कहे जाते हैं ।

एक पक्षीय परिवारः वे परिवार जिनमें वंश परंपरा स्त्री या पुरुष किसी एक की तरफ से चलती है एक पक्षीय परिवार कहा जाता है उभय पक्षी परिवाररू इस परिवार में वंश परंपरा स्त्री और पुरुष दोनों की तरफ से चलती है वह उभयपक्षी परिवार कहे जाते हैं।

एकल परिवारः औद्योगीकरण के योग में एकल परिवार आधुनिक समाज की एक मुख्य विशेषता है आधुनिक सभ्यता संस्कृति के प्रसार तथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण एकल परिवार को बढ़ावा मिला है एकल परिवार का मतलब ऐसी पारिवारिक संरचना से है जिसमें केवल पति पत्नी और उनके बच्चे शामिल होते हैं इसके साथ मुखया केवल इन्हीं लोगों के प्रति उत्तरदाई होता है भारतीय समाज में जहां परिवार की पहचान संयुक्त परिवार के रूप में हुआ करती थी बढ़ाते हुए औद्योगिकरण नगरीकरण और व्यक्तिगत हितों ने इसे एकल परिवार में परिवर्तित कर दिया है एकल परिवार का सबसे बड़ा लाभ अपनी काबिलियत को सिद्ध करने के रूप में देखा जा सकता है परंतु इसके साथ ही अकेलेपन का खामियां सभी भुगतना पड़ता है हालांकि एकल परिवार में लोग अकेले ही सीमित होकर रह गए हैं किंतु उनका प्रेम, प्यार ,सद्भाव, एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना को आज भी काम नहीं आंका जा सकता है शारीरिक रूप से वह अपने बुजुर्ग लोगों के लिए उपस्थित नहीं हो पाते हैं परंतु आर्थिक रूप से वह उनका उनके लिए आज भी उपस्थित रहते हैं और एकल परिवार में मानसिक तनाव की स्थिति को कम आंका गया है।

संयुक्त परिवार : संयुक्त यानी जुड़ा हुआ संयुक्त परिवार में दो या दो से अधिक पीढ़ी एक साथ निवास करती हैं ऐसे परिवार में दादा–दादी चाचा चाचा मां–बाप बच्चे सभी सामूहिक रूप से एक साथ निवास करते हैं और सामूहिक कार्यक्रमों में सभी एक साथ भाग लेते हैं संयुक्त परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति अधिकारों और दायित्वों का निर्वाह एक साथ मिलजुल कर करते हैं ऐसे परिवार भारतीय समाज की मुख्य परंपरागत व्यवस्था का दर्पण कहे जा सकते हैं संयुक्त परिवार के मूल में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि परिवार के सदस्य एक ही छत के नीचे रहे और आपसी समझ और सहयोग से एक दूसरे की मदद करें संयुक्त परिवार में सभी लोगों में आपसी सहयोग में समझ देखने को मिलती है सबसे अच्छी बात इन परिवार में बड़े बुजुर्गों का साया साथ में होता है जिससे बच्चों पर उनका आशीर्वाद और प्यार हमेशा बना रहता है और यदि स्त्री पुरुष दोनों बाहर काम पर भी जाते हैं तो घर के देखभाल की चिंता नहीं रहती और ऐसे परिवारों में बच्चे नैतिक मूल्यों का विकास कर पाते हैं जो आज के समय की बहुत बड़ी जरूरत है हालांकि इन परिवारों में समस्याएं भी देखने को मिलती हैं जैसे ज्यादा सदस्य हैं तो विचार भी ज्यादा होंगे और अलग होंगे तो एक साथ मिलकर रहना कई बार मुश्किल हो जाता है लड़ाई झगड़ा भी काफी होते हैं परंतु समस्या का समाधान भी जल्दी कर लिया जाता है क्योंकि बुजुर्ग आपसी बातचीत के जरिए समस्या का समाधान करा देते हैं संयुक्त परिवार के बिखराव का कारण नवीनीकरण, तकनिकीकरण के कारण हो रहा है इन बिखरावो के बावजूद भी वर्तमान दौर में संयुक्त परिवारों का महत्व कम नहीं हुआ है।

मूल्यः

मूल्य शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द वैल्यू का हिंदी रूपांतरण है वैल्यू शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा की वैल्यू शब्द से हुई है जिसका अर्थ योग्यता उपयोगिता और महत्व इस प्रकार किसी वस्तु या व्यक्ति का वह गुण जिसके कारण उसका उपयोग या महत्व प्रकट होता है मूल्य कहलाता है मानव जीवन पर्यंत सीखता रहता है और अनुभव में वृद्धि होती रहती है और ऐसे अनुबंध प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं यह निर्देश जीवन को दिशा प्रदान करते हैं इन्हें मूल्य कहा जा सकता है

नैतिक मूल्य शब्द नैतिकता प्राचीन ग्रीक शब्द एथॉस से बना है जिसका अर्थ है आदत कस्टम या चरित्र वृहत हिंदी कोश के अनुसार नैतिक शब्द का अर्थ नीति संबंधी अथवा नीति का से है साधारण शब्दों में वैल्यू का अर्थ मूल्य से लिया जाता है और मूल्य शब्द दो अर्थों को इंगित करता है विनिमय मूल्य और उपयोगिता मूल्य

सभ्यता

सभ्यता शब्द का प्रयोग मानव समाज के एक सकारात्मक प्रगतिशील और समावेशी विकास को इंगित करने के लिए किया जाता है सभ्यता की खोज कर जॉन हरबर्ट मार्शल ने मार्शल के तहत एक खुदाई अभियान के दौरान की गई थीसभ्यता मानव की सामाजिक व्यवस्था की सबसे बड़ी इकाई है जिसमें कई देश भी आ जाते हैं जैसे पश्चिमी सभ्यता में पूरा यूरोप और अमेरिका आ जाता है एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 80 से ज्यादा प्राचीन सभ्यता को सूचीबद्ध किया गया है भारत की प्रथम सभ्यता सिंधु घाटी सभ्यता है जिसे हड़प्पा सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है प्राचीन भारत के इतिहास में वैदिक सभ्यता सबसे प्रारंभिक सभ्यता है जिसका संबंध आर्यों के आगमन से है इसका नामकरण आर्यों के प्रारंभिक साहित्य वेदों के नाम पर किया गया है आर्यों की भाषा संस्कृत थी और यदि विश्व की बात की जाए तो सुमेरी सभ्यता विश्व में सबसे पुरानी सभ्यता है इसका समय ईसा से 3500 वर्ष पूर्व माना जाता है।

संस्कृति

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है जो उसे समाज की सोचने विचारने कार्य करने के स्वरूप में अंतर निहित होता है संस्कृत दो प्रकार की होती है भौतिक जैसे घर ,मकान, अचल संपत्ति भौतिक होती है और एभौतिक में आचार, विचार कला ,विश्वास जैसी वस्तुएं आती हैं संस्कृति में धर्म, कला, साहित्य आदि सामाजिक गुणों का समावेश होता है संस्कृत शब्द संस्कार का रूपांतर माना जाता है

सभ्यता और संस्कृति मे अन्तर सभ्यता का रूप वाह्य है जबकि संस्कृति का रूप आंतरिक है संस्कृत का संबंध आत्मा से है और सभ्यता का संबंध शरीर से है सभ्यता में फल प्राप्ति का उद्देश्य होता है पर संस्कृत में क्रिया ही साध्य होता है कुशलता के आधार पर सभ्यता को मापा जा सकता है लेकिन संस्कृति को नहीं सभ्यता को पूरी तरह से हस्तांतरण किया जा सकता है लेकिन संस्कृति को नही।

भारतीय परिवार प्रणाली को प्रभावित करने वाले कारकः

भारतीय परिवार प्रणाली को मुख्य रूप से प्रभावित करने वाले कारकों में औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण, आर्थिक कठिनाइयां, लाभकारी शिक्षा हेतु गांव से शहरों में पलायन, परिवार की संरचना में बदलाव, जनसंख्या वृद्धि, सुविधाओं की अनुचित उपलब्धता आदि हैं। आर्थिक शक्ति रखने वाले मूल दंपत्ति की मृत्यु भी इसका बड़ा कारण है भाइयों की अलग–अलग कमाई तनाव पैदा कर रही है जिस कारण से उनमें आपस में मतभेद की स्थिति पैदा हो जाती है एक दूसरे से आगे बढ़ाने की चाहत भी एक कारण है और युवा पीढ़ी अधिक व्यक्तिकता का दावा करती है। सजातीय संबंध को दांपत्य संबंध पर प्रधानता नहीं दी जा रही है ,सांस्कृतिक और वैचारिक कारक के साथ–साथ संसाधन कारक भी संबंधों को प्रभावित करते हैं निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि यह सब कारण परिवार विघटन का कारण बन रहे हैं या फिर परिवार प्रणाली में परिवर्तन का कारण बनते जा रहे हैं।

निष्कर्षः

संरचनात्मक परिवर्तन के फल स्वरुप पुरानी परिवार प्रणाली से नई परिवार प्रणाली में परिवर्तित होने पर कई सवाल खड़े किए हैं। इस परिवर्तन ने परिवार के सदस्यों के बीच आपसी सम्मान, प्यार के महत्व को कम कर दिया है इस परिवर्तन ने भावनात्मक बंधन को कमजोर किया है कई सदस्यों को परिवार में पहचान संकट की भावना महसूस होती है परंतु समय के साथ बदलाव होना भी जरूरी है और इसी को ध्यान में रखते हुए लोग आज अपने घरों से अपने परिवारों से दूर तो जरूर हुए हैं परंतु वह अपनी जिम्मेदारियां को बखूबी जानते हैं और उन्हें निभाने का भरपूर प्रयास भी करते हैं भारत मूल्यों और संस्कारों का देश है और इन संस्कारों को बनाए रखना नितांत ही आवश्यक है।

संदर्भः–

- https://hiquora.com
- https://www.Livehindustan.com
- "hindi gyankosh.com November 15, 2021
- https://sstmaster-com>moralvalues

- https://www.kailasheducation.com
- Kai Nielsen,"why should I be moral\"in problems of moral philosophy, 2nd edn-,ed- Paul W.Taylor ¼Belmont, CA:Dickenson,1972),539&58
- अग्रवाल एच. ओ. (2011) इंटरनेशनल लॉ एंड ह्यूमन राइट्स 18 वा संस्करण सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस, इलाहाबाद
- बरुआ पी.पी. (1999) book हैंडबुक ओन चाइल्ड विथ हिस्टोरिकल बैकग्राउंड कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली

29.

मुद्राराक्षस नाटक में प्रदर्शित कूटनीति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

डॉ० मुकेश कुमार गुप्ता
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
आदर्श कृष्ण महाविद्यालय, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, उ०प्र०

कवि विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस, संस्कृत साहित्य का एक प्रसिद्ध नाटक है। ऐतिहासिक घटना पर आधारित यह रूपक सात अंको में निबद्ध है। इस कृति का रचनाकाल चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर पंचम शताब्दी के पूर्वार्द्ध के मध्य माना जाता है। इसका वर्ण्य–विषय मगध राज्य के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त मौर्य के आरूढ़ होने के पश्चात् की परिस्थितियों पर केन्द्रित है। इस नाटक के नायक आचार्य चाणक्य हैं। जो कि अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करते हुये नन्दवंश का समूल नाश करने में सफल हो जाते हैं। राजा नन्द का एक अत्यन्त गुणी एवं विश्वासपात्र ''राक्षस'' नामक अमात्य भूमिगत होकर अभी भी चाणक्यादि का प्रतिकार करने के उद्देश्य से प्रयत्नशील है। वहीं आचार्य चाणक्य उसे पकड़कर चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री अथवा अमात्य नियुक्त करने के लिए उद्यत हैं। अपने–अपने उद्देश्य प्राप्ति हेतु इन दोनों के द्वारा किये गये प्रयासों का अद्भुत चित्रण, कवि द्वारा इस रूपक में प्रस्तुत किया गया है। इन राजनैतिक प्रयासों में एक उच्चस्तरीय कूटनीति का प्रयोग दिखलायी पड़ता है। इन प्रयासों का समुच्चय ही इस नाटक की कथावस्तु है।

साम दानादि नीति का प्रयोग– इस रूपक में एक ओर आचार्य चाणक्य नेतृत्त्वकारी भूमिका में हैं तो वहीं दूसरी ओर अमात्य राक्षस नेतृत्त्वकारी भूमिका में है। दोनों ही अत्यन्त विवेकवान् एवं प्रखर बुद्धि के धनी हैं। दोनों ही पूर्ण मनोयोग से अपने साध्य के प्रति उद्यत दिखलायी पड़ते हैं।

यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हो चुका है तथापि आचार्य चाणक्य किचिंत मात्र भी विश्राम की अवस्था में दिखलायी नहीं पड़ते। क्योंकि राजा नन्द का अति

विश्वासपात्र मन्त्री ''राक्षस'' शत्रु पक्ष को एकत्रित करके चन्द्रगुप्त को अपदस्थ करने के लिये अभी भी प्रयासरत् है। चाणक्य स्वयं कहते हैं–

अथवा अग्रहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्थस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः।1

अर्थात् राक्षस के पकड़े बिना क्या बिगाड़ा है मैंने नन्दवंश का ? क्या उसके रहते मैंने चन्द्रगुप्त की राज्यश्री सचमुच स्थिर कर दी है ? अर्थात् नहीं।

इससे इंगित हो रहा है कि जब तक आचार्य चाणक्य अमात्य राक्षस को पकड़कर अपने पक्ष में नहीं कर लेते तब तक वह अपने कार्य की इतिश्री नहीं मानेंगे। अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति भी एक मनस्वी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का वैशिष्टय हुआ करता है। इसी प्रकार व्यक्ति का विवेकसम्मत बुद्धिमान होना कितना आवश्यक है ? इसका अवबोधन चाणक्य के इस कथन से होता है–

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते ।2
ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।।
एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।।

अर्थात् जो मन में कुछ सोचकर चले गये हैं वे तो गये ही। जो यहां हैं वे भी निस्सन्देह चले जाएं किन्तु सब काम को साधने में अनेक सेनाओं से भी अधिक शक्ति रखने वाली और अपनी महिमा से नन्द का विनाश करने वाली मेरी बुद्धि मुझे न छोड़े।

हमारे लिये जितना महत्त्व शारीरिक बल का होता है उससे कहीं अधिक मानसिक बल का होता है। विवेक एवं नीति से पोषित सद्बुद्धि सेनाओं से भी बढकर होती है। कोई भी कार्य अच्छी योजनाओं के सम्यक् क्रियान्वयन् से ही पूर्णता को प्राप्त करता है और अच्छी योजनाएं नीतिनिपुण कुशाग्र मस्तिष्कों में ही जन्म लेती हैं। आचार्य चाणक्य अपनी बुद्धि के बल पर ही दण्ड और भेद नीति का अनुगमन करते हुये अब तक अपने कार्यों में सफल हुये हैं। राक्षस चन्द्रगुप्त द्वारा अर्जित राज्य को चाणक्य के बौद्धिक बल से ही सुरक्षित मानते हुये कहता है–

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्तिं मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।3

चाणक्य की बुद्धिरूपी रस्सी से बंधी होकर निश्चल चन्द्रगुप्त की राज्यश्री को राक्षस अपनी बुद्धि तथा नीति–कौशल के आधार पर (स्वयं की ओर) खींची जाती हुयी भी देख रहै हैं–

उपायहस्तैरपि राक्षसेन निकृष्यमाणामिव लक्षयामि।।4

आगे चलकर राक्षस अपने नीतिकौशल और बुद्धि के सामर्थ्य को प्रदर्शित करते हुये कहता है–

तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्मि मर्म 5
वर्मीभवेद्यदि न दैवमदृश्यमानम्।।

अर्थात् उस (चन्द्रगुप्त) के ही मर्म स्थान को बुद्धिरूपी बाणों से भेदन करुंगा, यदि दिखलायी न पड़ने वाला भाग्य ही उसका कवच न बन जाये।

इस नाटक में सर्वत्र बुद्धिकौशल का ही खेल है। तीव्र बुद्धि द्वारा नीतियों का अनुप्रयोग ही क्रियान्वित होता हुआ दिखलायी पड़ता है। परिस्थितियों के कारण सैन्यबल का प्रयोग उचित प्रतीत नहीं होता। राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में नीति भी यही कहती है–

सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेत्। भेददण्डाभ्यां बलवतः।6

अर्थात् दुर्बल राजाओं को साम–दान से ही अपने अधीन कर लेना चाहिये तथा बलवान् राजाओं को भेद और दण्ड के द्वारा अधीन करें।

जब शत्रु पक्ष संगठित एवं शक्तिशाली हो तब साम–दानादि को छोड़कर दण्ड एवं भेद नीति ही सहायक सिद्ध होती है–

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः। संघा हि संहतत्वादधृष्याः परेषाम्। ताननुगुणान्भुंजीत सामदानाभ्याम्। विगुणान्भेददण्डाभ्याम्।7

अर्थात् संघलाभ, सेनालाभ और मित्रलाभ इन सभी लाभों में संघलाभ उत्तम होता है क्योंकि एकत्रित रहने से संघों को शत्रु दबा नहीं सकते। यदि वे संघ अपने अनुकूल हो तो विजिगीषु साम और दान के द्वारा उनका उपयोग करें और यदि प्रतिकूल हो तब भेद और दण्ड के द्वारा व्यवहार करें।

अचार्य चाणक्य के शत्रुपक्ष में राक्षस एवं मलयकेतु आदि का संगठित एवं अत्यन्त शक्तिशाली समूह है तो वहीं अमात्य राक्षस के लिये शत्रुपक्ष में आचार्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य का एक उदीयमान समूह है। अतः दोनों ही वस्तुस्थिति को भांपते हुये कूटनीति का परिचय देते हैं। साम, दान, दण्ड एवं भेदनीति का आलम्बन लेकर धैर्यपूर्वक योजनाएं बनाते हैं। इस सन्दर्भ में भेद नीति के महत्त्व को इंगित करता हुआ अमात्य राक्षस कहता भी है–

काले भेदबीजमुप्तमवश्यं फलमुपदर्शयति।8

अर्थात् समय पर बोया हुआ भेदरूपी बीज अवश्य ही फल दिखलाता है।

चाणक्य ने सैन्यबल से सम्पन्न होते हुये भी राक्षस को विफल करने के लिये सैन्य–कार्यवाही की अपेक्षा भेदनीति का अनुसरण करना ही उचित समझा। चन्द्रगुप्त द्वारा आक्रमण करके पकड़ने का विचार रखने पर चाणक्य कहते हैं–

स हि भृशमभियुक्तो यद्युपेयाद्विनाशं 9
ननु वृषल वियुक्तस्तादृशेनापि पुंसा।
अथ तव बलमुख्यान्घातयेत्यापि पीडा
वनगज इव तस्मात्सोऽभ्युपायैर्विनेयः।।

अर्थात् यदि वह राक्षस अत्यधिक प्रचण्डता के साथ आक्रान्ता होता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो हे वृषल! इस प्रकार के व्यक्ति से विरहित हो जाते और (यदि वह) तुम्हारे सेनापतियों को मार डालता (तो) वह भी दुःख था। अतः उसको जंगली हाथी के समान साम, दानादि विविध उपायों से वश में करना उचित है।

इसी कारण से वह अपनी कूटनीति का जाल फैलाते हैं। निपुणक नामक गुप्तचर द्वारा लायी गयी राक्षस की मुद्रा से गुप्त लेख को मुद्रित करते हैं। उस लेख को सिद्धार्थक को सौंपकर शकटदास को उसके द्वारा बचाने का कार्य कराते हैं। उन्हीं की योजनानुसार सिद्धार्थक शकटदास के सहयोग से राक्षस का प्रिय बन जाता है। राक्षस द्वारा पारितोषिक के रूप में दिये गये आभूषण और वह गुप्त लेख चाणक्य की नीति को फलान्वित करते हुये तब दिखलायी पड़ते है जब नाटक के पंचम अंक में मलयकेतु के मन में उत्पन्न हुआ राक्षसविषयक सन्देह यथार्थ मे परिणित हो जाता है। परिणामस्वरूप चाणक्य का विपक्षीदल टूट जाता है और राक्षस तथा मलयकेतु अलग हो जाते हैं।

गुप्तचर–प्रयोगः– कूटनैतिक योजनाओं में गुप्तचरों की एक विशिष्ट भूमिका रहती है। इस दृष्टिकोण से भी दोनों ही पक्ष सशक्त दिखलायी पड़ते हैं। आचार्य चाणक्य की ओर से सिद्धार्थक, सुसिद्धार्थक, जीवसिद्धि नामक क्षपणक, निपुणक तथा भागुरायणादि प्रच्छन्न वेष में गुप्तचर की भूमिका में हैं तो वहीं अमात्य राक्षस की ओर से करभक तथा विराधगुप्तादि गुप्तचर देखने को मिलते हैं। गुप्तचरों के प्रयोग की उत्कृष्टता देखने को तब मिलती है जब राक्षस को ज्ञात होता है कि उसका कृपापात्र सिद्धार्थक तथा क्षपणक जीवसिद्धि भी आचार्य चाणक्य द्वारा प्रयुक्त भेदी ही हैं–

कथं जीवसिद्धिरपि चाणक्यप्रणिधिः। हन्त, रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम्।10

अर्थात् क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है? दुःख है कि शत्रुओं के द्वारा मेरा हृदय भी अपने अधिकार में कर लिया गया है।

भात्रु की भाक्ति का बोधः– कूटनीति के अनुगामी जन शत्रु को कभी भी कम या निर्बल समझने की त्रुटि नहीं करते। जब निपुणक आचार्य चाणक्य को अमात्य से सम्बन्धित गोपनीय सूचनाएं देता है तब वह राक्षस के मित्र शकटदास की भी चर्चा करता है। आचार्य चाणक्य उसका नाम सुनकर उसे लघु प्रभाव वाला मान बैठते हैं किन्तु तत्क्षण ही इस विचार को बदलते हुये गाम्भीर्य भाव में कहते हैं–

कायस्थ इति लघ्वी मात्रा। तथापि न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्।11

अर्थात् कायस्थ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

दूरदर्शिता – जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दूरदर्शी होना अति आवश्यक है। इसी शक्ति के बल पर व्यक्ति परिस्थितियों को समझकर अपनी सामर्थ्य एवं योग्यता के आधार पर योजना बनाता है। निर्मित योजना के अनुसार ही आगे कदम बढ़ाता है। राजनैतिक परिदृश्य में इस प्रकार वह शत्रुओं के षडयन्त्र से स्वयं की रक्षा करता है। इस रूपक में आचार्य चाणक्य तथा राक्षस– दोनों ही राजनीति में पारंगत हैं। किन्तु आचार्य चाणक्य राक्षस की अपेक्षा कहीं अधिक दूरदर्शी दिखलाई पड़ते हैं। कवि विशाखदत्त की इस कृति में इसके अनेक उदाहरण प्रमाणस्वरूप प्राप्त होते हैं। चन्द्रगुप्त को लक्ष्य बनाकर भेजी गयी विषकन्या आचार्य चाणक्य की दूरदर्शिता के कारण ही राजा पर्वतेश्वर को प्राप्त हो जाती है। चन्द्रगुप्त बच जाता है और पर्वतेश्वर की मुत्यु हो जाती है। इसी प्रकार राजभवन में प्रवेश के समय चन्द्रगुप्त की मृत्यु करने के लिये राक्षस द्वारा नियुक्त दारूवर्मा तथा महावत बर्बरक आदि भी आचार्य चाणक्य की दूरदर्शिता के कारण ही अपने लक्ष्य से चूक जाते हैं। यहां चन्द्रगुप्त के स्थान पर वैरोचक मारा जाता है। राक्षस का अभयदत्त नामक वैद्य चन्द्रगुप्त को सेवनार्थ विषयुक्त औषधि देता है। चाणक्य उस औषधि को स्वर्णपात्र में रखकर उसका परीक्षण करते हैं। विष के प्रभाव के कारण पात्र का रंग परिवर्तित होता देख आचार्य चन्द्रगुप्त को उसके सेवन से बचा लेते हैं। दण्डस्वरूप वह औषधि उसी वैद्य को खिला दी जाती है। जिसके कारण वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। आचार्य की दूरदृष्टि का अन्यतम उदाहरण चन्द्रगुप्त के शयनकक्ष के सन्दर्भ में देखने को मिलता है। राजप्रासाद में शयन के समय चन्द्रगुप्त को क्षति पहुचाने के उद्देश्य से अमात्य राक्षस द्वारा भवन की सुरंग में छिपाये गये बीभत्सकादि को भी आचार्य चाणक्य अपनी दूरदर्शिता के बल पर जानकर, समाप्त कर देते हैं। इस सन्दर्भ में विराधगुप्त राक्षस को वृतान्त सुनाता हुआ कहता है–

प्राक् चन्द्रगुप्तप्रवेशाच्छयनगृहं प्रविष्टमात्रेणैव निपुणमवलोकतया दुरात्मना चाणक्यहतकेन कस्माच्चिद्भित्तिच्छिद्राद्गृहीतभाक्तावयवां निष्क्रामन्तीं पिपीलिकापंक्तिमवलोक्य पुरूषगर्भमेतद्गृहमिति गृहीतार्थेन दाहितं तच्छयनगृहम्।12

अर्थात् चन्द्रगुप्त से पहले चाणक्य ने शयनकक्ष में प्रवेश करते हुये चारों ओर देखा। वहां दीवारों के छिद्रों में से मुंह में भात के टुकड़े लिये चीटियां निकल रहीं थीं। इसके नीचे पका चावल है तो यह भवन अवश्य ही छिपे पुरूषों से युक्त है– ऐसा सोचकर चाणक्य ने उस कक्ष को ही जलवा दिया।

और इस तरह उस कक्ष में भूमिगत बीभत्सकादि भी धुआं आदि के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये। इस प्रकार आचार्य चाणक्य की यह दूरदृष्टि उनके नेतृत्त्वकौशल को ही परिलक्षित कर रही है जो कि राजनैतिक परिदृश्य में इससे जुड़े हुये प्रत्येक व्यक्ति के लिये अत्यन्त उपादेय है।

प्रभावकारी व्यकित्त्वः– इस रूपक में आचार्य चाणक्य की सरलता एवं साधारण जीवन शैली ने उनके व्यकित्त्व को गाम्भीर्य से परिपूर्ण अत्यन्त प्रभावशाली दिखाया है। कंचुकी उनके निवास स्थान का वर्णन करता है जिसमें उनकी सरलता का परिचय स्पष्टरूप से प्राप्त हो रहा है –

उपलशकलमेतद्भेदकं गोमयानां, बटुभिरूपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।13
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्, विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।।

अर्थात् यह आचार्य चाणक्य का घर है। अरे राजाओं के राजा (चन्द्रगुप्त) के मन्त्री के घर का ऐश्वर्य, क्योंकि एक और तो उपलों को तो तोड़ने के पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, दूसरी और ब्रह्मचारियों द्वारा लाये गये कुशों का ढ़ेर है और इन सूखती हुयी समिधाओं के द्वारा जिसके छप्पर का किनारा झुका दिया गया है। ऐसा पुरानी दिवालों वाला घर भी दिखायी दे रहा है।

आचार्य चाणक्य के रहन–सहन के विषय में कंचुकी का यह कथन स्पष्ट संकेत कर रहा है कि नेतृत्त्वकर्ता का जीवन यदि सरल, सहज, सुलभ एवं पारदर्शिता से परिपूर्ण है तो उसका व्यक्तित्व और अधिक प्रभावी होगा। किसी भी प्रकार के लोभ–मोहादि से विरक्त होकर, त्यागपूर्ण जीवन जीने वाला व्यक्ति ही निर्भीक होकर न्यायानुगामी हो सकता है। लोकैषणा तथा वित्तैषणा के प्रति निःस्पृह व्यक्ति को किसका भय एवं किसका दबाव ? अर्थात् किसी का नहीं। तृष्णा के आकर्षण से पूर्णरूपेण दूर रहने वाले व्यक्ति किसी अयोग्य का स्तुति में व्यस्त भी नहीं रहा करते। चाणक्य किसी भी प्रकार की इच्छा, तृष्णा, लोभ, मोहादि से रहित व्यक्ति हैं। सत्य, न्याय एवं राजधर्म का पालन करने से और करवाने से उन्हें भला कौंन रोक सकता है? तभी तो कंचुकी उनके विषय में कहता है–

स्तुवन्ति श्रान्तास्याः क्षितिपतिमभूतैरपि गुणैः14
प्रवाचः कार्पण्याद्यदवितथवाचोऽपि पुरुषाः।
प्रभावस्तृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा
निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः।।

सत्य भाषण करने वाले विद्वान भी दीनतावश निरन्तर अश्रान्त रहकर निर्गुण राजा का स्तवन करते हैं, वह निश्चय ही सम्पूर्ण तृष्णा का ही प्रभाव है। नहीं तो निःस्पृह व्यक्तियों के लिये राजा तिनके के समान अनादर का पात्र होता है।

इस प्रकार यहां चाणक्य का असाधारण व्यक्तित्व बतलाया गया है।

राजनैतिक सम्बन्ध– राजनैतिक सम्बन्ध कभी स्थायी नहीं रहते। अपना मित्र कब शत्रु हो जाये? और कौन पराया अपना मित्र बन जाये? यह सब परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आचार्य चाणक्य के कूटनैतिक प्रयासों के परिणामस्वरूप जब अमात्य राक्षस एवं मलयकेतु में मतभेद हो जाता है तब भागुरायण मलयकेतु से कहता है–

कुमार, इह खल्वर्थशास्त्र व्यवहारिणामर्थवशादरिमित्रोदासीनव्यवस्था न लौकिकानामिव स्वेच्छावशात्।15

अर्थात् राजनीतिज्ञों में शत्रुता, मित्रता एवं उदासीनता प्रयोजनवश होती है। लौकिक लोगों की तरह इच्छावश नहीं। यहीं भागुरायण आगे कहता है कि–

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।16

अर्थात् राजनीति प्रयोजन के कारण मित्र को शत्रु भाव एवं शत्रु को मित्र भाव को प्राप्त कराती है।

अतः राजनैतिक सन्दर्भ में इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि लक्ष्योन्मुखी हित कहां अधिक सुरक्षित हैं। हमारा कोई अनुकूल व्यक्ति कब प्रतिकूल व्यवहार करने लगे– इसके प्रति भी सजग तथा सक्रिय रहना चाहिये।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकताः– मुद्राराक्षस में परिलक्षित उपर्युक्त राजनैतिक कौशल तथा कूटनीति की उपादेयता उस समय उसके साफल्य परिणयन से स्पष्ट हो रही है। वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य में भी इन नीतियों की उपयोगिता कम नहीं है। केवल वर्तमान में ही नहीं अपितु प्रत्येक कालखण्ड में यह नीतियां प्रासंगिक रहेंगी। परिस्थितियां भले ही बदल जायें किन्तु चुनौतियां प्रायः वही रहती हैं। जिस प्रकार उस समय चाणक्य के लिये चन्द्रगुप्त के राज्य को राक्षसादि प्रतिपक्षियों से सुरक्षित रखना एक चुनौती था, उसी प्राकर देश को साम्राज्यवादी शक्तियों से सुरक्षित रखना आज भी एक चुनौती है। हो सकता है आगे भी रहे। जिस प्रकार युद्ध किये बिना ही अपने शत्रु पक्ष को पराजित करना, उस समय चाणक्य के लिये एक बड़ी बात थी वैसे ही बड़े स्तर पर जान–माल की हानि का कारण बनने वाले युद्धादि से बचते हुये स्वयं की अखण्डता को सुरक्षित रखना एक देश के लिये आज भी चुनौती है। जिस प्रकार मगध साम्राज्य के साथ–साथ भारतवर्ष के हितों की रक्षा तथा उन्हें पूरा करना आचार्य कौटिल्य के लिये प्राथमिक कार्य था वैसे ही आज के अत्यन्त प्रतिस्पर्धा भरे समय में किसी भी संप्रभु राष्ट्र के लिये अपने हितों की अन्ताराष्ट्रिय स्तर पर रक्षा तथा पूर्ती करना, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इन सभी कार्यों की सिद्धि में मुद्राराक्षस में दिखलायी गयी नीतियाँ एवं कूटनैतिक कौशल अत्यन्त सहायक प्रतीत हो सकते हैं।

उपसंहारः– इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस राजनैतिक वातावरण से परिपूर्ण रचना है। इसमें राजनैतिक तथा कूटनैतिक क्रियाकलापों का सघन प्रयोग देखने को मिलता है। नेतृत्त्वकारी भूमिका में आचार्य चाणक्य ने कूटनैतिक प्रयासों के उच्च प्रतिमान स्थापित किये हैं। उन्होंने अत्यन्त कुशलता का परिचय देते हुये अपनी नीतियों को मूर्तरूप प्रदान किया है।

आचार्य चाणक्य की कूटनीति विशेषकर भेद नीति तब सफल हो जाती है जब मलयकेतु बिना सोचे–बिचारे चाणक्य की योजनानुसार भ्रमित होकर अपने पक्ष के कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिप सिहंनाद, कश्मीर–नरेश पुष्कराक्ष, सिन्धुराज सुषेण तथा पारसीकाधीश मेघाक्ष को मारने का आदेश देता है और राक्षस पूर्णतः संगठन रहित होकर अकेला पड़ जाता है। सप्तम् अंक में आचार्य चाणक्य चन्दनदास के वधस्थल पर पहुचे राक्षस को पकड़ने में सफल हो जाते हैं। राक्षस के पकड़े जाने का समाचार सुनकर आचार्य कहते भी हैं– केनोत्तुंगशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी– ।17

अर्थात् कहो किसने अग्नि को कपड़े से बांध लिया है ?

आचार्य चाणक्य के इस कथन से स्पष्ट हो रहा है कि अमात्य राक्षस को पकड़ना कोई सहज कार्य नहीं था। अग्नि को कपड़े से बांध लेने के समान ही लगभग असम्भव था। किन्तु अचार्य चाणक्य ने वह सम्भव कर दिखाया। राक्षस भी चाणक्य के मनोरथ को पूरा करते हुये चन्द्रगुप्त के मन्त्री पद को स्वीकार कर लेता है। यह सब आचार्य चाणक्य की महती कूटनैतिक सफलता ही है और यह नीतियाँ आज की परिस्थितियों में भी व्यक्ति को बल प्रदान कर सकती हैं।

सन्दर्भ–सूचीः–

1: मुद्राराक्षस, प्रथम अंक, पृष्ठ–66

2: वहीं, 1/26

3: वहीं, 2/2

4: वही

5: वहीं, 2/8

6: अर्थशास्त्र, 7/121/3, 4

7: वहीं, 11/160/1–4

8: मुद्राराक्षस, चतुर्थ अंक, पृष्ठ–249

9: वहीं, 3/25

10: वहीं, प्रथम अंक, पृष्ठ–318

11: वहीं, प्रथम अंक, पृष्ठ–80

12: वहीं, द्वितीय अंक, पृष्ठ–148

13: वहीं, 3/15

14: वहीं, 3/16

15: वहीं, पंचम अंक, पृष्ठ–289

16: वहीं, 5/8

17: वहीं, 7/6

30.

वर्तमान सामाजिक प्ररिप्रेक्ष्य में वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा की प्रासंगिकता

डॉ0 शिखा
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग
श्रीमती बी0डी0 जैन गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, आगरा।

मैकाइबर एवं पेज के अनुसार – समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में सफल जीवन व्यतीत करने के लिए दूसरे व्यक्तियों से अनुकूलन करना पड़ता है, साथ ही उसे समाज के मूल्यों और मान्यताओं के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करना पड़ता है। वैश्वीकरण के कारण आज मनुष्य दिन प्रतिदिन व्यावहारिक बनता चला जा रहा है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की ओर प्रेम, स्नेह आदर सहिष्णुता से देखने की बजाय उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देख रहा है। वह त्याग, उदारता, सद्भाव, परोपकार, प्रेम आदि मानवीय जीवन मूल्यों को नष्ट कर पूरी तरह से अर्थ केन्द्रित मानसिकता का शिकार बनता जा रहा है, उसके आचरण में आई व्यावहारिकता के कारण वह शनैः शनैः मूल्यहीन और संवेदनहीन बनता जा रहा है।

आज वैश्वीकरण और निजीकरण के कारण व्यावसायिक विस्तार का प्रभाव विश्व की सभी इकाईयों पर पड़ रहा है। व्यावसायिक विस्तार के उद्देश्य से निर्मित यह परिकल्पना सम्पूर्ण राष्ट्र, समाज और पारिवारिक व्यवस्था को प्रभावित करने लगी है। आज आवश्यकता है इसे पुर्नजीवित कर वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उसके महत्व समझने की।

''अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।''

(महोपनिषद अध्याय 4, श्लोक 71 से उदधृत)

'वसुधैव कुटुम्बकम' शब्द दो शब्दों से वसुधैव और कुटुम्बक से मिलकर बना है। जिसमें वसुधा का अर्थ है पृथ्वी और कुटुम्बकम् का अर्थ है परिवार अर्थात् पृथ्वी ही परिवार है या एक पृथ्वी एक परिवार, एक भविष्य वर्तमान समाज को दृष्टिगत रखते हुए ही भारत द्वारा इसे 18वें जी–20 शिखर सम्मेलन 2023 का आधार वाक्य चुना गया।

वैदिक से उपनिषद और आधुनिक काल तक विश्वबंधुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को कई विद्वानों ने अपनी पद्धति से इसे समझाने का प्रयास किया है। उपनिषद

कहता है कि हमें विश्वात्मा बनना है, हमें अपनी आत्मा को विश्वरूप में देखना चाहिए। क्योंकि समस्त अस्तित्व ब्रहम ही है।

विश्वबंधुत्व की भावना से विश्व में समरसता उत्पन्न होती है। संकीर्णता का विनाश होता है। इस तरह विश्व शांति स्थापना में विश्वबंधुत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

डॉ0 धर्मपाल सैनी जी के अनुसार – स्व से ऊपर उठकर परार्थ चिन्तन से ही विश्वबंधुत्व का विकास संभव हो सकता है। जो उदार हृदय, जिनका हृदय विशाल है, जो संकीर्णता से परे उदार विचार रखते हैं, उनके प्रचार–प्रसार में दत्तचित रहते हैं। उनके मनों में यह मंत्र गूंजता रहता है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।

विश्व बन्धुत्व सम्पूर्ण समाज में समानता स्थापित करने का प्रयास है। प्रायः इसमें विविधता, जातीय विभिन्नता, साम्प्रदायिकता, धार्मिक भेद, वांशिक भेद, आदि तत्व अवरोध बनते हैं। ऐसी स्थिति में वसुधैव कुटुम्बकम् की विचारधारा ही विश्व में शांति स्थापित कर विश्वबंधुत्व की भावना स्थापित कर सकता है।

वसुधैव कुटुम्बकम और समाजः–

- **वसुधैव कुटम्बकम् और सामाजिक समरसता** – वसुधैव कुटुम्बकम् का दर्शन लोगों को सामाजिक न्याय और समानता की ओर अग्रसर करती है। यह असमानता और भेदभाव को खत्म कर एक ऐसी प्रणाली बनाने को महत्व देती है ,जो समाज में निष्पक्षता और न्याय को बढ़ावा देती है।
- **वसुधैव कुटुम्बकम और विश्व शांति** – वसुधैव कुटुम्बकम एक सामाजिक दर्शन है, जो समाज में करूणा, सहयोग, विविधता, में समावेशिता, संघर्ष समाधान, पर्यावरणीय प्रबंधन, सामाजिक न्याय, प्रेम, दया और सम्मान की भावना को बढ़ावा देता है।
- **धर्म और संस्कृति पर प्रभाव** – वसुधैव कुटुम्बकम विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं की समृद्धि और संरक्षण को बढ़ावा देता है। साथ ही सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देने में लोगों की सहायता करता है।
- **सार्वभौमिक भाईचारा** – वसुधैव कुटुम्बकम की विचारधारा सार्वभौमिक भाईचारे के विचार को बढ़ावा देती है जो सम्पूर्ण मानवता के अंर्तसम्बन्ध को बल देती है। परिणाम स्वरूप समाज एकीकृत पद्धति की ओर अग्रसर होता है।
- **सद्भाव और सह–अस्तित्व** – वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा विविधता को महत्व देते हुये समाज में सद्भाव और सह–अस्तित्व में रहने के लिए प्रोत्साहित करती है।
- **एक मार्गदर्शक सिद्धान्त** – वर्तमान संदर्भ में वसुधैव कुटुम्बकम की विचारधारा को अपनाने से एक अधिक समावेशी और संतुलित वैश्विक समाज का निर्माण हो सकता है। जो बेहतर भविष्य के लिए सामूहिक प्रयासों को प्रेरित करेगा।

- **रचनात्मकता को बढ़ावा**– वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना व्यक्तियों और समुदायों को रचनात्मक रूप से सोचने और चुनौतियों का नवीन समाधान खोजने के लिए प्रोत्साहित करती है और यह मानती है कि विविधिता और समावेशिता रचनात्मकता के महत्वपूर्ण स्त्रोत है जो विविध दृष्टिकोण सफलताओं और नवाचारों को जन्म देती है, जो नवीन समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करेगा।
- **नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास** – वसुधैव कुटुम्बकम का दर्शन समाज में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का संचार करता है। जिसके परिणामस्वरूप समाज अपने पराये का भेद न करके, न्याय विवेक, सत्यम् शिवम् सुन्दरम् एवं मैं से हम की ओर अग्रसर होगा।
- **अंतर्राष्ट्रीय संबंध**– वसुधैव कुटुम्बकम की विचारधारा राष्ट्रों के बीच कूटनीति सहयोग, शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, सबका साथ सबका विकास, प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण, भ्रातृत्व भाव विकसित करने में महत्वर्ण भूमिका निभाती है।
- **मानवाधिकार और सामाजिक न्याय** – वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा समाज में सभी व्यक्तियों को समान व्यवहार और अवसरों की वकालत करके कि उनकी पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना मानवाधिकार और सामाजिक न्याय को स्थापित करने में अग्रणी भूमिका प्रदान करती है।
- **निष्कर्षतः** हम कह सकते हैं कि आज की परस्पर जुड़ी दुनिया में जहां वैश्वीकरण ने विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के लिए आदान–प्रदान सुगम कर दिया है। तेजी से बदलती और परस्पर जुड़ी दुनिया में वसुधैव कुटुम्बकम् का ज्ञान पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है। हमारा विश्व एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो गया है। जहाँ राष्ट्रीय संस्कृतियों और लोगों के बीच की रेखाएं धुंधली हो गई है। वसुधैव कुटुम्बकम के दर्शन को अपनाना और एक ऐसी दुनिया बनाने की आकांक्षा करना आवश्यक हो गया है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के साथ एकता, निष्पक्षता, गरिमा और अखण्डता के साथ व्यवहार करने के लिए वसुधैव कुटुम्बकम की विचारधारा प्रासंगिक है ।

सन्दर्भ सूचीः–

- https://school.careers360.com
- https://en.wikipedia.org
- एन श्रीधर एवं गायत्री : वसुधैव कुटुम्बकमम् : कल्याण का एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य समाजशास्त्र में ; ग्लोबल जनरल वॉ0 10, अगस्त – 2001, पृ0सं0 54–55.
- डहाले डॉ0 सुनील ; वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संतो की वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा ; साहित्य वीथिका, जून – 2019, पृ0सं0 38–40
- त्यागी गुरुसरनदास, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, जनवरी–2020.

ISO 9001-2015 certified

978-93-84165-98-7

कु.मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ0प्र0)

College Recognized under section 2 (f) & 12 (b) of UGC

Published by:
Mithila Press, Lakshmi Nagar, New Delhi

Printed by :
K. S. Enterprises, New Delhi